ISSN: 3107-8869

श्रुतिप्रभा

Śrutiprabhā

A Peer-reviewed Biannual National Research Journal of Vedic Knowledge

Vol. 3, Issue 1 June 2025

सम्पादक

प्रो॰ रमेशकुमार पाण्डेय

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

श्रुतिप्रभा
Śrutiprabhā

Organizing Committee

Chief Patron

- Shri Dinesh Chandra

Advisors

- Shri Kulbhushan Ahuja
- Shri Mahesh Bhagchandka
- Professor B.K. Kuthiyala

Research Fellows

- Dr Ritika
- Dr Shashikant Mishra
- Shri Mantu Kumar Jana
- Shri Shivam Sharma
- Shri Khokan Maity
- Shri Biswanath Mahata

Board of Peer Reviewers

- Professor Ganesh Dutt Bhardwaj, Himachal Pradesh
- Professor Somdev Shatanshu, Jaipur
- Professor K.K. Geeta Kumari, Kaladi, Kerala
- Professor Shrikishor Mishra, Varanasi
- Professor Ram Murti Chaturvedi, Varanasi
- Professor Vijay Shankar Shukla, Varanasi
- Professor Gopal Sharma, Delhi
- Dr R.V.S.S. Avadhanulu, Hyderabad
- Professor Ravindra Muley, Pune
- Dr Arun Kumar Mishra, Delhi

Chief Editor

- Professor Ramesh Kumar Pandey

Executive Editor

- Shri Venkat Koteshwar Rao

Editorial Board

- Professor Devi Prasad Tripathi (Chairman), Dean, Faculty of Veda-Vedanga, Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University, New Delhi. *Email*: dpt@slbsrsv.ac.in
- Professor Ramanuj Upadhyaya (Member), Professor, Dept. of Veda, Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University, New Delhi. *Email*: ramanuj@slbsrsv.ac.in
- Professor Sadashiv Kumar Dwivedi (Member), Professor, Head of the Dept. of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi. *Email*: skdskt@bhu.ac.in
- Professor Madhukeshwar Bhatt (Member), Director of Schemes, Central Sanskrit University, New Delhi. *Email*: dr.madhumbhat@csu.co.in
- Professor Ranjit Behera (Member), Professor, Dept. of Sanskrit, University of Delhi, Delhi. *Email*: rbehera@sanskrit.du.ac.in

ISSN: 3107-8869

श्रुतिप्रभा
Śrutiprabhā

A Peer-reviewed Biannual
National Research Journal of Vedic Knowledge

Vol. 3, Issue 1 June 2025

सम्पादक

प्रो॰ रमेशकुमार पाण्डेय

ASHOK SINGHAL VEDIC RESEARCH INSTITUTE
(Sponsored by Badri Bhagat Jhandewala Temple Society, New Delhi)
GURUGRAM-122011

Volume 3, Issue 1 (June 2025)
तृतीय वर्ष, प्रथमाङ्क, (जून 2025)
ISSN: 3107-8869

© Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram

प्रकाशितेषु शोधलेखेषु अभिव्यक्ताः अभिप्रायाः लेखकानामेव सन्ति।
प्रकाशित शोधलेखों में अभिव्यक्त अभिप्राय लेखकों के हैं।
The views expressed in the articles are of the authors.

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted, except brief quotations, in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording, or any information storage or retrieval system, without prior written permission of the copyright holder.

सर्वाधिकार सुरक्षित। कॉपीराइट धारक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना, इस प्रकाशन के किसी भी भाग का पुनः प्रकाशन या प्रसारण (संक्षिप्त उद्धरणों को छोड़कर) किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से – जैसे कि इलेक्ट्रॉनिक, यान्त्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग अथवा किसी भी तथ्यसंग्रहण या पुनरुत्पादन के रूप में नहीं किया जा सकता।

Published by:
Ashok Singhal Vedic Research Institute
Huda Market Road, Block-B, Sector 56
Gurugram - 122011, Haryana (Bharat)
Ph.: +91-9311847118
email:info@ashoksinghalvedicresearchinstitute.org.in
web: www.ashoksinghalvedicuniversity.org.in

Printed by:
Shailee Creations LLP, New Delhi
Phone: 98713 94811; e-mail: creations.shailee@gmail.com

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान एवं 'श्रुतिप्रभा' शोध-पत्रिका — एक परिचय

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान, हरियाणा राज्य स्थित गुरुग्राम के सेक्टर 56 में अवस्थित बद्री भगत झण्डेवाला टेम्पल सोसाइटी द्वारा प्रायोजित एक वैदिक अनुसन्धान केन्द्र है। यह संस्थान हिन्दू हृदय सम्राट्, राष्ट्रनिष्ठ सेवक स्वर्गीय श्री अशोक सिंहल जी के महान् स्वप्न की साकार अभिव्यक्ति है। उनका स्वप्न था कि भारत में एक ऐसा वैदिक विश्वविद्यालय स्थापित हो, जो वेदों के सार्वकालिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार कर सके। उनका विश्वास था कि वेद केवल देवताओं की स्तुतियों तक सीमित नहीं हैं, अपितु वे मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पक्षों के सर्वाङ्गीण विकास में समर्थ हैं। वेदों में विश्व-कल्याण की जो दिव्य ध्वनि सुनाई देती है, वह आज भी सर्वथा प्रासङ्गिक है। अतः उन्होंने वेद विश्वविद्यालय की स्थापना को राष्ट्र के कल्याण हेतु अनिवार्य मानते हुए इसके लिए प्रयास किया। उनके देहावसान के उपरान्त विश्व हिन्दू परिषद् के वर्तमान संरक्षक माननीय श्री दिनेश चन्द्र-जी इस पावन सङ्कल्प को मूर्त रूप देने में सतत संलग्न हैं।

"अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान" इसी सङ्कल्प का प्रथम सोपान है। इसकी स्थापना युगाब्द 5124, विक्रम सम्वत् 2079 की ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी तिथि, दिनाङ्क 21 मई 2022, शनिवार के पावन दिवस पर की गई। इस शुभ अवसर पर संस्थान का उद्घाटन हरियाणा सरकार के माननीय शिक्षामन्त्री श्री कँवर पाल गुर्जर-जी के पुण्य कर-कमलों द्वारा तथा विश्व हिन्दू परिषद् के वर्तमान संरक्षक माननीय दिनेश चन्द्र-जी, श्री कुलभूषण आहूजा-जी, श्री महेश भागचन्दका-जी एवं श्री वेङ्कट कोटेश्वर-जी की गौरवमयी उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान का मूल उद्देश्य समाजोपयोगी वैदिक ज्ञान की गवेषणा, विद्वत्संवाद-सङ्गोष्ठी एवं विचार-विमर्श के माध्यम से वेद की भावना को जन-जन तक पहुँचाना है। इसी योजना से प्रेरित होकर संस्थान की प्रबन्ध समिति ने वर्ष 2023 में *श्रुतिप्रभा* नामक षाण्मासिक शोध-पत्रिका के प्रकाशन का निर्णय किया।

इस पत्रिका में वेद-वेदाङ्ग विषयक लेख संस्कृत, हिन्दी, तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। इसका उद्देश्य समाज के विविध वर्गों तक प्रामाणिक वैदिक दृष्टिकोण को पहुँचाना है। यह शोध-पत्रिका वैदिक विचार के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त माध्यम बनकर वैश्विक स्तर पर वैदिक जीवन-पद्धति को प्रतिष्ठित करने में सहायक होगी — यही अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान की दूरदृष्टि है।

यह शोध-पत्रिका वर्ष 2023 से निरन्तर प्रकाशित हो रही है। यह एक षाण्मासिक पत्रिका है, अर्थात् इसका प्रकाशन प्रति वर्ष दो बार किया जाता है। वर्तमान में इसका प्रकाशन मुद्रित संस्करण (प्रिण्ट संस्करण) के रूप में सम्पन्न हो रहा है। यह एक राष्ट्रीय शोध-पत्रिका है, जो वैदिक अध्ययन में रुचि रखने वाले विद्वानों एवं शोधकर्ताओं के लिए एक मानकीकृत मञ्च प्रदान करती है।

सम्पादकीय

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।
– *ऋग्वेद* 1.164.45

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी – ये वाणी के चार रूप हैं। इनमें परा वाणी का स्थान मूलाधार है। वहाँ से यह प्रकट होकर हृदय में पहुँचती है, उस हृदयस्थानीय वाणी को पश्यन्ती कहते हैं, वहाँ से निकलती हुई वाणी बुद्धि में पहुँचती है, उस बुद्धिस्थानीय वाणी का नाम मध्यमा है। बुद्धि से निकलकर वाणी कण्ठ और मुख में प्रकट होती है। यही वैखरी वाणी है। इनमें मूलाधारस्थानीया परा, हृदयस्थानीया पश्यन्ती और बुद्धिस्थानीया मध्यमा, इन तीन प्रकार की वाणी को गुहा अर्थात् गुप्त स्थानों में छिपी हुई होने के कारण केवल योगीजन ही जान सकते हैं और कण्ठस्थानीया वैखरी चौथी वाणी है, इसे सभी मनुष्य बोलते हैं और सभी जानते हैं।

भारतवर्ष में वाङ्मय का आविर्भाव वेदवाणी से ही हुआ, यह सर्वविदित तथ्य है। अतः सनातन चिन्तनधारा के कोष वेद हैं। वेद की ऋचाओं में न केवल देवताओं के लिए प्रार्थना के उत्कृष्ट भाव दिखाई देते हैं अपितु, मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों के निरूपण के साथ-साथ विश्व-कल्याण की कामना के अद्वितीय स्वर भी सुनाई देते हैं। "ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः"[1] ऋचाओं के साक्षात्कार करने वाले तपोमूर्ति ऋषियों ने मानव जीवन के सभी पक्षों की गहन समीक्षा की है, जो स्वदेश-भक्ति एवं स्वराष्ट्र-प्रेम के दिव्य भावों को प्रकाशित करती है। उन्हें यह तथ्य पूर्णरूप से विदित था कि अपनी सम्मानपूर्ण सामूहिक सत्ता बनाए रखने के लिए अपनी धरती, अपना आकाश और अपना देश पूर्णतः सुरक्षित होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब हम अपने देश, अपनी धरती, अपनी राष्ट्रभूमि की तन-मन-धन से रक्षा करें, इसके प्रति श्रद्धा का भाव रखें, इसकी सतत प्रोन्नति हेतु सक्रिय रहें और इसके सम्मान के लिए निरन्तर सङ्गठित तथा जागरूक रहें।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।।
– *ऋग्वेद* 5.44.14

सङ्गठन के इस भाव को *ऋग्वेद* स्पष्ट रूप से उद्घोषित करता है –

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
– 10.191.2

राष्ट्र-प्रेम की इस पवित्र भावना का यह सुपरिणाम है कि उनके द्वारा दृष्ट अनेक मन्त्रों में राष्ट्र-प्रेम के उदात्त भाव दिखाई देते हैं। उन्होंने मुक्त कण्ठ से मातृभूमि की प्रशंसा की है – "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"[2]। ये ऋचाएँ वेद के पाठकों के हृदय

---

[1] *शुक्लयजुर्वेद* 27.01 (उवट, *महीधर भाष्य*)।

[2] *अथर्ववेद* 12.1.12

में राष्ट्र के प्रति गौरव का उदात्त भाव भरती हैं और उन्हें प्रेरित करती हैं कि वे सच्चे राष्ट्रभक्त बनकर देश की सेवा करें। राष्ट्र की एकता और सामाजिक समरसता तभी स्थायित्व प्राप्त कर सकती है जब हम प्रत्येक प्राणी के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा का दर्शन करें और उनके साथ मैत्री, श्रद्धा तथा सह-अस्तित्व का व्यवहार करें।

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।
– *यजुर्वेद* 36.18

ऐसी समदृष्टि ही राष्ट्र की शान्ति और अखण्डता का वास्तविक आधार है। इसके अभाव में बहुविध वैभव सम्पन्न, धन-धान्य समृद्ध, अन्न-जल से परिपूर्ण, फल-फूल से परिव्याप्त, सम्पूर्ण विश्व में अपने ज्ञान-विज्ञान से प्रख्यात भारतवर्ष को विदेशी आक्रान्ता नष्ट-भ्रष्ट करने और लूटने का प्रयत्न करते रहेंगे। किन्तु देशभक्त नागरिक की जागरूकता से देश सुरक्षित और अखण्ड रहेगा – “वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः”[3]।

वेद भारतीय ज्ञान परम्परा का अक्षय्य स्रोत हैं। परवर्ती काल में विकसित ज्ञान परम्परा, वैदिक ज्ञान परम्परा का ही अविच्छिन्न प्रवाह है और यही सनातन होने का अर्थ है। यह ज्ञान सार्वभौमिक, सार्वजनीन तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए परम उपादेय है और विश्व-बन्धुत्व एवं विश्व-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। वर्तमान समय में जब समाज विविध मत, पन्थ, भाषा और भाव के अनेक झञ्झावातों में उलझा है, तब वेद हमें स्मरण कराते हैं कि राष्ट्र की स्थिरता और समृद्धि का आधार एकता, समानता और सहकारिता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम्।।
– *अथर्ववेद* 6.64.2

अद्यतन समस्या के उन्मूलन हेतु सनातन ज्ञान से समाधान करने के पवित्र उद्देश्य से *श्रुतिप्रभा* पत्रिका के प्रकाशन का पवित्र सङ्कल्प अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान की प्रबन्ध समिति ने किया है, उसी क्रम में यह अङ्क (तृतीय खण्ड, प्रथम भाग) आप के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस अङ्क में विभिन्न विषयों पर विश्रुत विद्वानों एवं शोधकर्ताओं के शोध लेख हैं। इसके साथ गत वर्ष (2024 ई०) में आयोजित “कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा” विषय पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गोष्ठी तथा इस वर्ष “कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए वेदाधारित आचार संहिता” विषय पर आयोजित एकदिवसीय सङ्गोष्ठी में उपस्थित विद्वज्जनों के उत्कृष्ट विचार भी प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत हैं, जो आपको वेद विहित जीवन-पद्धति की विशेषताओं का बोध कराने के साथ-साथ वैदिक ज्ञान-विज्ञान को गहराई से समझने के लिए अवश्य प्रेरित करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष माननीय दिनेश चन्द्र-जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पत्रिका के सम्पादन में जिनका सतत संरक्षण एवं प्रभावपूर्ण मार्गदर्शन सहज रूप से प्राप्त होता रहता है। इस पत्रिका में प्रकाशित शोध लेखों के लेखकों, समीक्षकों, सम्पादकों एवं प्रकाशन से सम्पृक्त तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान करने वाले सभी सहयोगियों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। शैली क्रिएशन्स के अधिष्ठाता श्रीमान् सुशील मित्तल को सुरुचिपूर्ण पत्रिका मुद्रण हेतु सादर साधुवाद देता हूँ।

प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय
सम्पादक

3 *यजुर्वेद* 36.18

पुरोवाक्

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
– *यजुर्वेद* 40.1

इस जगत् में जङ्गम तथा स्थावर जो कुछ भी है, उसमें इस विश्व के नियन्ता परमेश्वर निवास करते हैं। इसलिए किसी दूसरे के धन के प्रति लिप्सा मत करो। अपने धन का भी त्यागपूर्वक उपभोग करो। वेद का यह उपदेश आज के सन्दर्भ में अत्यन्त उपादेय है। सहस्रों वर्ष पूर्व प्रदत्त उक्त निर्देश वर्तमान में अधिक प्रासङ्गिक इसलिए भी हो गया है कि मानव का लोभ अपनी पराकाष्ठा का भी अतिक्रमण करके, न केवल प्रकृति के सौन्दर्य को नष्ट कर रहा है, अपितु उसमें विकृति उत्पन्न करके अज्ञानतावश जीवन को ही संशयग्रस्त कर रहा है। अत्यधिक सुख-सुविधा भोगने की लालसा में जडान्ध मानव ने जलवायु को प्रदूषित करके भविष्य को ही सङ्कट में ला खड़ा कर दिया है। अतिसुन्दर भवन बनाने की कामना में पहाड़ों को काट डाला, जिन्हें महीधर कहा जाता है। संसार में बढ़ते भूकम्प की त्रासदी, इसका दुष्परिणाम है। अपने भवनों में इमारती लकड़ी से भव्यता एवं चकाचौंध पैदा करने की अभीप्सा से नैमिषारण्य और विन्ध्यारण्य जैसे गहन वनसमूह का विनाश करके वर्षा का कालचक्र नष्ट ही कर दिया है, जिससे सम्पूर्ण जलवायु में प्रदूषण की भीषण समस्या उत्पन्न हो गई है, जो महानगरों से होकर नगरों एवं ग्रामों की ओर तीव्र गति से बढ़ती जा रही है, जिससे वर्षा का चक्र बाधित होता है। फलस्वरूप अन्न, जल, और प्राणवायु — तीनों सङ्कटग्रस्त हैं, जो वर्तमान समस्या का मूल है। जलवायु के प्रदूषण से प्रदूषित अन्न खाकर मानव स्वस्थ कैसे रह सकता है?

स्वस्थ जीवन का मूल मन्त्र है स्वास्थ्यप्रद भोजन, जोकि शुद्ध शाक, अन्न, दुग्ध, घृत, आदि के अभाव में सम्भव नहीं है। सात्त्विक जीवन में शुद्धाहार सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै।।
– *छान्दोग्योपनिषद्* 7.26.2

अर्थात् जब आहार शुद्ध होता है, तब चित्त शुद्ध होता है। चित्त की शुद्धता से स्मृति दृढ़ होती है और स्मृति के जागरण से समस्त शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का उद्घाटन होता है, जो मोक्षप्राप्ति का प्रशस्त मार्ग है। अतः आवश्यकता है कि हम पुनः वैदिक जीवन-पद्धति की ओर लौटें। त्याग, शुद्धता और संयम से ही स्थायी सुख और मोक्ष सम्भव है, यही वेद का उद्घोष है।

इस प्रकार वेद में प्रतिपादित समाजोपयोगी विचारों को समाज के प्रत्येक सदस्य तक पहुँचाने और उन्हें वेदविहित जीवन पद्धति के द्वारा जीने की प्रेरणा प्रदान करने के पावन उद्देश्य से *श्रुतिप्रभा* नामक षाण्मासिक पत्रिका के नियमित प्रकाशन की योजना अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान द्वारा तैयार की गई है।

श्रुतिप्रभा के प्रथम एवं द्वितीय भाग सफलतापूर्वक प्रकाशित हो चुके हैं। हमें प्रसन्नता है कि *श्रुतिप्रभा* के तृतीय खण्ड का प्रथम अङ्क आपके समक्ष प्रस्तुत है। वर्तमान अङ्क में देश के प्रतिष्ठित लेखकों एवं विचारकों के अनेक विषयों पर शोधलेख एवं विचार संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हैं, जो जिज्ञासुओं के लिए परम उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान से जुड़े सभी शोध-सहायक, अधिकारी, कर्मचारी एवं सहयोग प्रदान करने वाले विद्वज्जन अतीव सक्रियता एवं निष्ठा से कार्य सम्पन्न करते हुए *श्रुतिप्रभा* के प्रकाशन में अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं। इस पत्रिका के मुद्रक, शैली क्रिएशन्स के अधिकारी श्री सुशील मित्तल-जी ने बड़े मनोयोग से गुणवत्तापूर्ण मुद्रण कार्य सम्पन्न कराया है। इस पत्रिका के विभिन्न दायित्वों को तत्परता से सम्पन्न करने वाले सभी महानुभावों को मैं हृदय से साधुवाद देता हूँ।

श्री दिनेश चन्द्र
संरक्षक एवं अध्यक्ष, प्रबन्ध समिति

विनम्र-निवेदन

॥ श्रीः ॥

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।।[1]

हिन्दू हृदय सम्राट् श्रद्धेय अशोक जी सिंहल के दिव्य सङ्कल्प को पूर्ण करने के उद्देश्य से माननीय दिनेश चन्द्र-जी के अथक प्रयत्न, कुशल नेतृत्व एवं प्रेरणादायी उद्बोधन का सुपरिणाम है अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान की स्थापना। यह संस्थान वैदिक ज्ञानधारा को पुनः जागृत करने, उसके प्रचार-प्रसार और गहन अनुसन्धान के माध्यम से समाज में उसकी पुनःस्थापना के लिए निरन्तर संलग्न है। अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु यह शोध संस्थान अनेक प्रकल्पों का आयोजन करता है, जिनमें वेद के विशेषज्ञों का व्याख्यान, सङ्गोष्ठी एवं सम्मेलन का आयोजन, वेद पाठशाला में जिज्ञासुओं को निःशुल्क वेद की सामान्य शिक्षा देना आदि प्रमुख हैं। शोध संस्थान में नियुक्त शोध-सहायक अनेक वैदिक विषयों को आधार बनाकर शोध-लेखों के माध्यम से अपना योगदान करते हैं। इन प्रकल्पों द्वारा उपलब्ध शोध सामग्री का प्रकाशन करने हेतु *श्रुतिप्रभा* नामक षाण्मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी यह संस्था करती है। इस पत्रिका में संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी भाषा में निबद्ध निबन्धों को प्रकाशित किया जाता है। इसी क्रम में तृतीय भाग वर्ष 2025 के प्रथमाङ्क को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। संस्थान द्वारा आयोजित वर्ष 2024, दिसम्बर में "कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा" विषयक द्विदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गोष्ठी तथा "कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए वेद-आधारित आचार-संहिता" विषयक एकदिवसीय सङ्गोष्ठी का प्रतिवेदन भी इस अङ्क में सङ्कलित है।

यह पत्रिका संस्थान की वेबसाइट पर भी डिजिटल रूप में उपलब्ध है, जिससे देश-विदेश के जिज्ञासु पाठकगण इसका लाभ उठा सकते हैं। पत्रिका के सभी सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन है कि पत्रिका का अवलोकन करके नीचे दिए गए ई-मेल से अपने शुभाशीष एवं सत्परामर्श से हमें अनुगृहीत करने की कृपा करें। Email-asvrishruti@gmail.com

श्री वेङ्कट कोटेश्वर राव
प्रबन्ध सम्पादक

[1] *महाभारत*, आदिपर्व 1.1.204 (BORI Edition).

विषय-सूची

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान एवं 'श्रुतिप्रभा' शोध-पत्रिका — एक परिचय v

सम्पादकीय vii

पुरोवाक् ix

विनम्र-निवेदन xi

1. गरुड़ पुराण में वर्णित शरीर-क्रिया-विज्ञान 1
   — *शालिनी मल्होत्रा*

2. ऋग्वेद में वर्णित मरुद्गणों का विश्लेषण : विद्युत चुम्बकीय तरंगों के विशेष सन्दर्भ में 9
   — *वेदप्रकाश गौतम*

3. कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित विषविद्या 32
   — *खोकन माइति*

4. वैदिक साहित्य में कृषि का स्वरूप : एक विवेचनात्मक अध्ययन 48
   — *ऋतिका*

5. Kṛmi-3 (कृमिभञ्जनम्) 60
   — *S. Sudarsana Sarma*

6. अग्नितत्त्व 64
   — *सुमन्त कुमार सिंह*

7. जल प्रदूषण समस्या के वैदिक उपाय 73
   — *बृहस्पति पाण्डेय*

8. आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में वैदिक शिक्षा-पद्धति का प्रभाव 83
   — *विश्वनाथ माहात*

9. Environmental Conservation in Ancient India: A Historical Study Based on Dharmaśāstric Sources 91

सम्मेलन/व्याख्यान

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा 112

2. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए वेदाधारित आचार संहिता 170

गरुड़ पुराण में वर्णित शरीर-क्रिया-विज्ञान

*शालिनी मल्होत्रा**

शोध सार (Abstract) – आयुर्वेद में शरीर क्रिया विज्ञान के विषय में विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया है; परन्तु न केवल आयुर्वेद के ग्रन्थो में अपितु इसके साथ-साथ अनेक संस्कृत ग्रन्थो में भी शरीर-क्रिया-विज्ञान का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमे से गरुड़ पुराण भी एक है। इस शोध लेख में गरुड़ पुराण में वर्णित शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) की अवधारणाओं का विश्लेषण किया गया है। गरुड़ पुराण एक महत्वपूर्ण धर्मग्रन्थ है जिसमें जीवन के रहस्यों के साथ-साथ शरीर की उत्पत्ति, रचना और कार्यप्रणाली का गहन वर्णन प्राप्त होता है। इसमें जीवों की उत्पत्ति के चार प्रकार (स्वेदज, उद्भिज, अण्डज, जरायुज) के साथ, शरीर में स्थित पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) की अभिव्यक्तियाँ, नाड़ी-विज्ञान, पाचन प्रक्रिया, प्राणवायु के प्रकार, तथा रक्त, मांस, मज्जा, मेद आदि धातुओं की मात्रा का उल्लेख वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि गरुड़ पुराण में प्रतिपादित शरीर-क्रिया सम्बन्धी ज्ञान आधुनिक शरीर-विज्ञान से साम्य रखता है, विशेषतः नाड़ी-ज्ञान, पञ्चवायु, तथा पाचन तन्त्र के संचालन में। साथ ही इसमें प्राचीन भारत में शरीरविज्ञान की उन्नत समझ को दर्शाया गया है, जो वैदिक चिकित्सा-पद्धतियों के आधार को दृढ़ करता है।

बीज शब्द (Keywords) – पञ्चमहाभूत, नाड़ी विज्ञान, प्राणवायु, पाचन तन्त्र, स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज

भूमिका

हमारे जीवन से सम्बन्धित अनेक रहस्य *गरुड़ पुराण* में समाहित हैं। यह हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थों तथा अठारह महापुराणों में से एक है। इन पुराणों में ज्ञान, विज्ञान, नीति, नियम, तथा धर्म की बातें समाहित हैं। इनमें जीवन से सम्बन्धित रहस्य भी प्रतिपादित हैं। *गरुड़ पुराण* में चार प्रकार से जीव उत्पत्ति – स्वेदज, उद्भिज, अण्डज, जरायुज – का वर्णन प्राप्त होता है[1]। जो जीव पसीने/ऊष्म से उत्पन्न होते हैं जैसे जू, खटमल, आदि उन्हें "स्वेदज" कहते हैं। जो भूमि से निकलते हैं जैसे वृक्ष आदि उन्हें "उद्भिज" कहते हैं। तीसरे वह हैं जो अण्डे के रूप में उत्पन्न होते हैं, उसके बाद शरीर प्राप्त करते हैं; उन्हें "अण्डज" कहते हैं जैसे पक्षी, आदि। चतुर्थ प्रकार के जीव वे हैं जो माता के उदर से शरीर-रूप में उत्पन्न होते हैं, वे "जरायुज" कहे जाते हैं जैसे मनुष्य, आदि।

शोध पद्धति

प्रकृत शोध लेख मुख्यत: **तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति** पर आधारित है। इसमें मुख्य रूप से **गरुड़ पुराण के मूल श्लोकों** के आधार पर **शारीरिक विज्ञान के तत्त्वों का विवरण** प्रस्तुत किया गया है, साथ ही **आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों से तुलनात्मक विवेचन** भी किया गया है।

शरीर में पञ्चतत्त्वों की विद्यमानता

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश यह पाँच स्थिर तत्त्व हैं। इनके संयोग से ही पञ्च-भौतिक शरीर का निर्माण हुआ है।

* Former Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <miglanishalini@gmail.com>

[1] स्वेदजा उद्भिज्जाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ।। – *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 21.41

मनुष्य शरीर में यह पञ्चतत्त्व किस रूप में विद्यमान रहते हैं, इसका प्रतिपादन *गरुड़ पुराण* में किया गया है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, और आकाश यह पञ्चमहाभूत हैं, शरीर इनसे पीड़ित तथा स्नायुओं[2] से बँधा हुआ है। मनुष्य शरीर में विद्यमान त्वचा, अस्थि, नाड़ियां, रोम, तथा मांस, ये पाँच पृथ्वी के गुण विद्यमान हैं। अतः पृथ्वी इस रूप में मनुष्य के शरीर में समाहित है। इसी प्रकार लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा, तथा रक्त, ये जल के गुण हैं। क्षुधा, निद्रा, तृष्णा, आलस्य, तथा कान्ति, ये तेज के गुण हैं। धावन (दौड़ना), श्वास लेना, आकुञ्चन (सिकुड़ना), प्रसारण (फैलना) तथा निरोध, ये पाँच वायु के गुण हैं। राग, द्वेष, लज्जा, भय, तथा मोह ये पाँच गुण भी वायु से ही उत्पन्न होते हैं। ध्वनि करना, छिद्र होना, गम्भीरता, सुनना, तथा सभी का संश्रय[3] ये पाँच आकाश के गुण हैं। अत: पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश यह पञ्चमहाभूत इस रूप में सभी जीवों के शरीर में विद्यमान हैं[4]।

नाड़ी विज्ञान

शरीर के भीतर अनेक संवेदनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली वाहिकाओं को नाड़ी कहते हैं। नाड़ी वह मार्ग है जिससे होकर शरीर में ऊर्जा प्रवाहित होती है। प्राचीन काल में वैद्य नाड़ी देखकर गम्भीर से गम्भीर रोगों का पता लगा लेते थे। *गरुड़ पुराण* के अनुसार मनुष्य के शरीर में दस प्रमुख नाड़ियां हैं – इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुह, तथा शङ्खिनी, जो मनुष्य के शरीर के मध्य स्थित हैं[5]। इसी प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका), तथा पाँच कर्मेन्द्रियां (हाथ, पैर, गुदा, वाक्, तथा उपस्थ) हैं।[6]

शरीर में प्रमुख नाड़ियों का स्थान

इडा – यह शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान प्रकाश वाली है। यह नासिका के वाम भाग में स्थित है। इसी प्रकार *उत्तरगीता* में भी कहा गया है कि –

---

[2] स्नायुः (स्नाति शुध्यति दोषोऽनया स्ना + उण्), कण्डरा, पेशी, नस – *संस्कृत हिन्दी कोश*, वामन शिवराम आप्टे, पृ॰ 1146

[3] संश्रय – सम्+श्रि+अच्, विश्रामस्थल, आवास-स्थान, निवास-स्थान – *संस्कृत हिन्दी कोश*, वामन शिवराम आप्टे, पृ॰ 1049

[4] क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च।।
एभिर्भूतैः पीडितस्तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः। त्वचास्थिनाड्यो रोमाणि मांसञ्चैवात्र पञ्चमम्।।
एते पञ्च गुणाः प्रोक्ताः मया भूमेः खगेश्वर। यथा पञ्च गुणा आपस्तथा शृणु च काश्यप।।
लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तञ्च पञ्चमम्। अपां पञ्च गुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः।।
क्षुधा निद्रा च तृष्णा च आलस्यं कान्तिरेव च। तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः।।
धावनं श्वसनञ्चैव आकुञ्चनप्रसारणम्। निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः।।
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च। इत्येतत्कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुण पञ्चकम्।।
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवण सर्वसंश्रयः। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्तार्क्ष्य यत्नतः।।
– *गरुड़ पुराण,* प्रेतकल्प 22.30-36

[5] इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका। गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यथा तथा।।
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा। पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः।।
– वही, 22.38-39

[6] श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च। पाणिपादौ गुदं वाक्चोपस्थं कर्मेन्द्रियाणि च।।
– वही, 22.37

इला च वामनिश्वाससोममण्डलगोचरा।
पितृयानमिति ज्ञेयं वाममाश्रित्य तिष्ठति।।[7]

बांई ओर इड़ा विद्यमान है, यह बांए पैर के तलवे से लेकर सिर तक स्थित है। यह अधिक चमकदार नहीं है। यह एक चक्र या चन्द्रमा के समान है तथा यह नासिका के बांई ओर स्थित है। इसे पितृयान भी कहते हैं क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि जो इसमें अपने मन को स्थिर कर लेता है, वह पितृलोक तक जा सकता है।

पिङ्गला – यह सफेद तथा लाल कान्ति वाली है तथा नासिका के दक्षिण भाग में स्थित है। *उत्तरगीता* में प्रतिपादित है –

दक्षिणे पिङ्गला नाडी वह्निमण्डलगोचरा।
देवयानमिति ज्ञेया पुण्यकर्मानुसारिणी।।[8]

दाहिनी ओर पिङ्गला नाड़ी विद्यमान है अर्थात् यह दाहिने पैर के तलवे से लेकर सिर तक विद्यमान है। यह अग्नि के एक चक्र या सूर्य के समान चमकदार है, इसे देवयान भी कहा गया है। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि जो इसमें अपने मन को स्थिर कर लेते हैं, वह देवताओं के समान आकाश-मार्ग से यात्रा कर सकते हैं।

सुषुम्णा

इलापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा सूक्ष्मरूपिणी।
सर्वे प्रतिष्ठितं यस्मिन्सर्वगं सर्वतोमुखम्।।
– *उत्तरगीता* 2.15

सुषुम्णा एक सूक्ष्म नाड़ी है। जो इड़ा तथा पिङ्गला के मध्य में स्थित है। सुषुम्णा नाड़ी से ही अन्य नाड़ियों की उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं, जिसे एक वृक्ष के समान माना जा सकता है तथा तत्त्वज्ञानी प्राण-वायु के द्वारा इस वृक्ष-रूपी शरीर की प्रत्येक शाखा में गमन कर सकते हैं[9]।

गान्धारी – यह वाम नेत्र में स्थित है। यह इड़ा के पृष्ठ भाग में पैर से लेकर नेत्रपर्यन्त स्थित है।

गजजिह्वा[10] – यह दाहिने नेत्र में स्थित है।

पूषा – यह दाहिने कान में स्थित है। यह पिङ्गला नाड़ी के पृष्ठ भाग में बादल के समान कान्ति वाली तथा दाहिने पैर के तलवे से लेकर नेत्रपर्यन्त स्थित है।

---

[7] *उत्तरगीता* 2.12

[8] *उत्तरगीता* 2.11

[9] नानानाडीप्रसवकं सर्वभूतान्तरात्मनि। ऊर्ध्वमूलमधः शाखं वायुमार्गेण सर्वगम्।। – *उत्तरगीता* 2.17

[10] हस्तिजिह्वोत्पलप्रेक्षा नाड़ी तस्याः पुरः स्थिता। सर्वभागस्य मूर्द्धादिपादांगुष्ठांतमाश्रिता।। – *नाड़ीपरीक्षा* 73

हस्तिजिह्वा नाड़ी कमल के समान है और इड़ा नाड़ी के आगे स्थित और वाम भाग के मस्तक आदि से लेकर पैर के अँगूठे के अन्त तक आश्रित है।

यशा – यह शङ्ख के समान वर्ण वाली तथा पिङ्गला नाड़ी से पूर्व भाग में तथा वाम कान में स्थित है।

अलम्बुषा – यह मुख में स्थित है।

कुहू – यह दाहिने पैर के अँगूठे से लेकर मस्तकपर्यन्त स्थित है।

शङ्खिनी – यह सिर के ऊपर स्थित है[11]।

शिव संहिता में नाड़ी के विषय में कहा गया है कि –

सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्या श्चतुर्दश।।
सुषुम्णेडा पिङ्गला च गान्धारी हस्तिजिह्वका।
कुहू सरस्वती पूषा शङ्खिनी च पयस्विनी।।
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी।
एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिङ्गलेडा सुषुम्णिका।।[12]

उपरोक्त श्लोक के अनुसार मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ हैं। जिनमें से सुषुम्णा, इड़ा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शङ्खिनी, पयस्विनी, वरुणा, अलम्बुषा, विश्वोदरी, यशस्विनी, ये चौदह नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इनमें से भी इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, ये तीन प्रमुख हैं। इन तीनों में भी सुषुम्णा मुख्य है तथा अन्य सभी नाड़ियाँ इसके आश्रय शरीर में विद्यमान हैं[13]। शरीर के अङ्गों से अनेक संवेदनाओं को छोटी नाड़ियाँ एकत्रित करके चौदह प्रमुख नाड़ियों तक पहुँचाती हैं। वे चौदह नाड़ियाँ उन सूचनाओं तथा संवेदनाओं को एकत्र करके तीन नाड़ियों को प्रदान करती हैं। इन्हें सुषुम्णा एकत्र करके कुण्डलिनी पर आवरण-स्वरूप कवच के रूप में उसे ढ़ककर रखती हैं। यह सभी नाड़ियाँ कुण्डलिनी[14] से ही निकलती हैं तथा अपने-अपने स्थान में पहुँचकर निवृत्त हो जाती हैं। इड़ा, पिङ्गला, तथा सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ नीचे की ओर मुख किए हुए कमलतन्तु के समान हैं तथा क्रमानुसार चन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान हैं[15]। अभिप्राय यह है कि "इड़ा" चन्द्र-रूप है, "पिङ्गला" सूर्य-रूप है तथा "सुषुम्णा" अग्नि-रूप है। ये तीनों मेरुदण्ड के आश्रय-स्थित हैं। *उत्तरगीता* के अनुसार मनुष्य शरीर में 72,000 नाड़ियाँ हैं[16]। इसी प्रकार *प्रश्नोपनिषद्* में नाड़ी संख्या के विषय में कहा गया है कि –

---

[11] *नाड़ीपरीक्षा* 63-65, 72-76, 80, 95 (इन सभी श्लोकों में सभी नाड़ियों का वर्णन किया गया है)।

[12] *शिवसंहिता* 2.13-15

[13] तिसृष्वेका सुषुम्णैव मुख्या सा योगिवल्लभा
अन्यास्तदाश्रयं कृत्वा नाड्यः सन्ति हि देहिनाम्।। – *शिवसंहिता* 2.16
सर्वेषां योगतंत्राणां तथाधारो हि कुण्डली।
सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली। तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च।। – *हठयोगप्रदीपिका* 3.1-2

[14] समस्त योग साधनाओं का आधार कुण्डलिनी है। जब गुरु-कृपा से यह सुप्त कुण्डलिनी जागृत् होती है, तब सम्पूर्ण षट्चक्र एवं ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

[15] नाड्यस्तु ता अधोवदनाः पद्मतन्तुनिभाः स्थिताः।
पृष्ठवंशं समाश्रित्य सोमसूर्याग्निरूपिणी।। – *शिवसंहिता* 2.17

[16] द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः – *उत्तरगीता* 2.18

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनाम् तासां शत शतमेकैकस्यां
द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति।।[17]

हृदय देश में 101 नाड़ियां हैं, उन सभी में से प्रत्येक की 100 शाखाएं हैं तथा सभी शाखाओं की 72,000 प्रति शाखा नाड़ियां हैं। जिनमें व्यान नामक प्राण-वायु संचरण करती है। इस प्रकार $101 \times 100 = 10,100$ उसके बाद $10,100 \times 72,000 = 72,72,00,000$ इस प्रकार *प्रश्नोपनिषद्* के अनुसार मनुष्य शरीर में कुल इतनी (101+10,100+72,72,00,000 = 72,72,10,201) नाड़ियां हैं।

पाचन प्रक्रिया

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।।
इत्येते वायवः प्रोक्ता दश देहेषु संस्थिताः।[18]

मनुष्य प्रतिदिन जिस अन्न का सेवन करता है, उससे किस प्रकार शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है या किस प्रकार अन्न का पाचन होता है। इसका वर्णन भी *गरुड़ पुराण* में किया गया है। मनुष्य शरीर में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, तथा धनञ्जय, ये दस प्रकार की वायु विद्यमान रहती हैं।

शरीर में स्थित दस वायु के नाम

प्राण – हृदय स्थित वायु का नाम "प्राण" है।

अपान – गुदा स्थित वायु का नाम "अपान" है।

समान – नाभि स्थित वायु का नाम "समान" है।

उदान – कण्ठ स्थित वायु का नाम "उदान" है।

व्यान – समस्त शरीर में संचरण करने वाली वायु का नाम "व्यान" है[19]।

नाग – नाग वायु एक कोबरा के हुड (hood) के आकार की है। यह गले के पास, स्वरतन्त्री (vocal cord) में स्थित रहती है तथा अक्षर उच्चारण में सहायक होती है।

कूर्म – यह कछुए के आकार के समान होती है। इसके द्वारा पलकों, मुँह, आदि आन्तरिक छिद्रों को खोलने में सहायता मिलती है।

कृकर – कृकर वायु छींक आने का कारण है।

देवदत्त – देवदत्त वायु उबासी का कारण है।

---

[17] *प्रश्नोपनिषद्* 3.6

[18] *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 40-41a

[19] हृदि प्राणा गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले। उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।। – *अमरकोष* 1.66

धनञ्जय – धनञ्जय वायु मृत्यु के पश्चात् भी शरीर में विद्यमान रहती है[20]।

इस प्रकार लिङ्ग महापुराण में भी 10 प्रकार की वायु का वर्णन प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है-प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय। जो वायु प्रयाण करता है, इस कारण उस वायु को 'प्राण वायु' कहते हैं। जो वायु आहार आदि को नीचे की ओर क्रमपूर्वक ले जाता है, उसे 'अपान वायु' कहा गया है। जो वायु सभी अंगों में व्याप्त रहता है, उसे 'व्यान वायु' तथा व्याधि आदि का प्रकोपक जो वायु मर्मों में उद्वेजन उत्पन्न करता है, उसे 'उदान वायु' कहते हैं। जो वायु गात्रों में समता करता है' उसे 'समान वायु' कहा गया है। इस प्रकार यह पांच वायु है। इसी प्रकार उद्गार अर्थात् डकार के समय क्रियाशील वायु को 'नाग वायु' उन्मीलन अवस्था में क्रियाशील वायु को 'कूर्म वायु' छींक आदि में आने वाली वायु को 'कृकल वायु' जम्हाई में क्रियाशील वायु को 'देवदत्त वायु' तथा महाघोष करने वाली वायु को 'धनञ्जय वायु' कहते हैं। यह मृत्यु के समय सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है।[21]

प्रश्नोपनिषद् के अनुसार प्राण-वायु ही स्वयं को पाँच रूपों – प्राण, अपान, व्यान, समान, तथा उदान – में विभक्त करके इस शरीर को धारण करती है[22]।

केवलं भुक्तमन्नञ्च पुष्टिदं सर्वदेहिनाम्।।
नयति प्राणदो वायुः शरीरे सर्वसन्धिषु।
आहारो भुक्तमात्रस्तु वायुना क्रियते द्विधा।।[23]

इनमें से प्राण-वायु खाए गए अन्न को सभी सन्धियों में ले जाती है। जो आहार ग्रहण किया जाता है, उसे प्राण-वायु दो भागों में विभाजित कर देती है।

सम्प्रविश्य गुदे याति पृथगन्नं पृथग्जलम्।
ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा तदन्नञ्च जलोपरि।।
अग्नेश्चाधः स्थितः प्राणो ह्यग्निं तं तु धमेच्छनैः।

---

[20] वाग्द्वारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः। कृकराच्च क्षुतं ज्ञेयं देवदत्ताद्विजृम्भणम्। न जाहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः। – *अमरकोष* 1.i.63 (*शिवसंहिता* 3.7-8 में भी दस प्रकार की प्राण-वायु का वर्णन प्राप्त होता है)।

[21] प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मॅतः।
अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च।। *लिङ्ग महापुराण*, पूर्वभाग 8.63

व्यानो व्यानामयत्यङ्गं व्याध्यादीनां प्रकोपकः।
उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽयं प्रकीर्तितः।। *लिङ्ग महापुराण*, पूर्वभाग 8.64

समं नयति गत्राणि समानः पञ्च वायवः।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तु सः।। *लिङ्ग महापुराण*, पूर्वभाग 8.65

कृकलः क्षुतकायैव देवदत्तो विजृम्भणे।
धनञ्जयो महाघोषः सर्वगः स मृतेऽपि हि।। *लिङ्ग महापुराण*, पूर्वभाग 8.66

[22] तान्वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाहएवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः।।
– *प्रश्नोपनिषद्* 2.3

[23] *गरुड़ पुराण,* प्रेतकल्प 22.41b-42

वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम्।।
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात्पृथग्भवेत्।
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्गुदं वपुः।।
नखा मलाश्रयश्चेदं विण्मूत्रं वेत्यनन्तरम् ।।[24]

गुदा में प्रवेश करने के पश्चात् अन्न और जल पृथक् हो जाते हैं। अग्नि के ऊपर जल को करके उसके ऊपर उस खाए हुए अन्न को कर देते हैं और उस अग्नि के नीचे स्थित प्राण-वायु धीरे-धीरे अग्नि का धमन किया करती है। प्राण-वायु से धमन किया हुआ, जठराग्नि से भुक्त अन्न आदि पदार्थ के रस तथा किट्ट भाग (फुजला) को अलग-अलग कर देता है। बारह प्रकार के मल हैं, वह किट्ट भाग शरीर से भिन्न होकर निकल जाता है। तदनन्तर भोजन का सार जो रस-रूप है, वह मनुष्य शरीर को ऊर्जा एवं वृद्धि देने में सहायक होता है। तथा जो बारह प्रकार के मल हैं – आँख, कान, नाक, जिह्वा, दाँत, नाभि, गुदा, वपु (शरीर), नख, मलाश्रय, विष्ठा तथा मूत्र – वे बाहर निकल जाते हैं।

शरीर में विद्यमान रोम मांसादि

शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोमों की श्रेणियाँ हैं। सामान्य रूप से सभी मनुष्यों के शरीर में बत्तीस दाँत होते हैं,[25] बीस नख होते हैं, तथा मुख एवं मस्तक में होने वाले केशों की संख्या तीन लाख है। सामान्यतः मनुष्य शरीर में एक सहस्र पल[26] मांस होता है।[27] शरीर में 100 पल रक्त, 10 पल मेद होता है, तथा त्वचा भी मेद के समान ही होती है[28]। शरीर में 12 पल मज्जा होती है, महारक्त 3 पल होता है, 2 कुडव[29] शुक्र होता है तथा शोणित 1 कुडव होता है। श्लेष्मा 6 पल होता है, उसका आधा विट् तथा मूत्र होता है, जो उसके प्रमाण से होता है[30]। इस प्रकार *गरुड़ पुराण* में मनुष्य शरीर में प्राप्त रोम, नख आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है।[31]

---

[24] *गरुड़ पुराण* प्रेतकल्प, 43-46a

[25] रोमकोटिस्तथा तिस्रो ह्यर्द्धकोटिसमन्विता। द्वात्रिंशद्दशनास्तत्र सामान्याद्विनतासुत।। – *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 47,

[26] पल – तरल पदार्थों को मापने का मान – *संस्कृत-हिन्दी कोश*, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 596
1 पल = 4 तोला, 1 तोला = 11.66 ग्राम
1 पल = 46.64 ग्राम

[27] विंशतिस्तु नखाः केशास्त्रिलक्षं मुखमूर्ध्वजाः। मांसं पलसहस्रैकं सामान्याद्देहसंस्थितम्।। – *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 48,

[28] रक्तं पलशतं तार्क्ष्य बद्धमेतत्पुरातनैः। पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समः।। – *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 49,

[29] 1 कुडव = 16 तोला/186.56 ग्राम

[30] पलं द्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम्। शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम्।।
श्लेष्मणश्च षडर्द्धञ्च विण्मूत्रं तत्प्रमाणतः।। – *गरुड़ पुराण*, प्रेतकल्प 50-51A,

[31] *शार्ङ्गधरसंहिता* के अनुसार 1 कर्ष का 1 तोला होता है।
2 कर्ष = अर्द्धपल/शुक्ति
2 तोला = अर्द्धपल/2 शुक्ति = 1 पल
2 पल = 1 प्रसृति
2 प्रसृति = 1 अंजलि/कुडव। – पूर्व खण्ड 22-26
इस प्रकार 1 पल = 4 तोला, 1 तोला = 11.66 ग्राम

→

उपसंहार

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शरीर-क्रिया-विज्ञान से सम्बन्धित अनेक विषय जैसे पञ्च-तत्त्वों की शरीर में विद्यमानता, नाड़ी ज्ञान, पाचन प्रक्रिया, तथा शरीर में विद्यमान रोम, मांस रक्तादि का वर्णन *गरुड़ पुराण* में प्राप्त होता है। जिसके द्वारा अनेक वैज्ञानिक शोध किए जा सकते हैं।

← गहन अध्ययन करने के पश्चात् शरीर में प्राप्त रक्त आदि परिमाणों के बारे में कई विकल्प सामने आ रहे हैं; जैसे *चरक संहिता* के अनुसार रक्त की 8 अंजलियां है, मल की 7 अंजलि है, कफ़ की 6, पित्त की 5, मूत्र की 4, वसा की 3, मेद की 2, मज्जा की 1, मस्तिष्क की ½ अंजलि, शुक्र की भी ½ अंजलि, और कफ़ तथा ओज की भी ½ अंजलि है। – *चरक संहिता*, शारीरस्थानम् 7.17

इसके अतिरिक्त *गरुड़ पुराण* तथा एलोपैथी के परिमाण लगभग समान हैं यथा रक्त आदि का परिमाण। विज्ञान के अनुसार एक 70 किलोग्राम वजन के व्यस्क में लगभग 4.5 से 5.7 लीटर रक्त होना चाहिए, जो वजन के अनुसार कम या ज्यादा हो सकता है।

इस प्रकार *गरुड़ पुराण* में जो रक्त की मात्रा बताई गई है, वह पूर्णतः सत्य है –

1 पल = 4 तोला

1 तोला = 11.66 ग्राम

1 पल = $11.66 \times 4 = 46.64$ ग्राम

100 पल रक्त = 46.64×100

4,664 ग्राम रक्त

रक्त = 4.664 लीटर

इसके अतिरिक्त महारक्त का वर्णन भी प्राप्त होता है। विज्ञान के अनुसार हमारे रक्त में 55 प्रतिशत प्लाज्मा तथा 45 प्रतिशत फॉर्म्ड एलिमेण्ट (formed element) होते हैं। प्लाज्मा के 55 प्रतिशत में 7 प्रतिशत प्रोटीन होता है तथा 7 प्रतिशत प्रोटीन में एल्बुमिन (albumin) 58 प्रतिशत होता है। मनुष्य के शरीर में एल्बुमिन 3.4 से 5.4 ग्राम प्रति डेसीलीटर होता है अर्थात् 34 से 54 ग्राम प्रति लीटर, जो 3.4-5.4 प्रतिशत है। *गरुड़ पुराण* में महारक्त 3 पल तथा रक्त 100 पल का माना गया है, जो रक्त का 3 प्रतिशत है। इस प्रकार यह सम्भावना की जा सकती है कि महारक्त ही एल्बुमिन है। एल्बुमिन का निर्माण लीवर से होता है। यह रक्त प्रवाह में तरल पदार्थ को बनाए रखने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त यह हार्मोन विटामिन एंजाइम शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाता है।

इन परिमाणों के विषय में और अध्ययन की आवश्यकता है तथा बाद में इस विषय को और अधिक श्रेष्ठ किया जा सकता है।

ऋग्वेद में वर्णित मरुद्गणों का विश्लेषण
विद्युत चुम्बकीय तरंगों के विशेष सन्दर्भ में

*वेदप्रकाश गौतम**

शोधपत्र सार – वेद भारतीय मनीषा का वह दीपस्तम्भ है, जिसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञान की समवेत आभा प्रकाशित होती है। ऋग्वेद में वर्णित मरुद्गण न केवल देवत्व के प्रतीक हैं, अपितु ब्रह्माण्डीय शक्तियों के जीवन्त प्रतीक के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्रस्तुत शोध में मरुद्गणों की प्रतीकात्मक सत्ता का विश्लेषण आधुनिक भौतिकशास्त्र के विद्युत चुम्बकीय तरङ्गों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। मरुतों में निहित गति, ऊर्जा, ताप, ध्वनि, चुम्बकत्व, कम्पन एवं प्रकाश जैसे गुण आज के वैज्ञानिक विमर्श में भी वही महत्व रखते हैं, जो वैदिक ऋषियों की वाणी में सूक्तरूप में प्रकट हुए हैं। यह अध्ययन सङ्केत करता है कि वैदिक साहित्य में प्रकृति के जिन तत्वों का रहस्यात्मक रूप से चित्रण हुआ है, वे आधुनिक विज्ञान की भाषा में व्याख्यायित किए जा सकते हैं। मरुद्गणों का यह वैज्ञानिक पुनःपाठ उद्घाटित करता है कि वैदिक ऋषि न केवल अध्यात्म के मर्मज्ञ थे, अपितु प्रकृति के सूक्ष्मतम लयों के जिज्ञासु शोधकर्ता भी थे। विद्युत चुम्बकीय तरङ्गों की अवधारणा को वैदिक प्रतीकों के आलोक में देखने का यह प्रयास भारतीय चिन्तन की कालातीत वैज्ञानिकता का सशक्त साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

शब्दकुञ्जिका – वैदिक मरुत्, मरुद्वेद, चुम्बकतत्त्व, ताप, ऊर्जा, मरुद्गति, मरूदावेश, विद्युत्मरुत्, मरुत्-समूह, मरुत्कम्पन।

भूमिका

“न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा”[1] अर्थात् जो वेद के गूढ़ रहस्यों को नहीं समझ पाता वह ऋषि या तपस्वी नहीं कहलाता; तात्पर्य यह है कि हमारे ऋषि-मुनियों ने यदि कुछ लिखा या पढ़ा तो उन्होंने उनका साक्षात्कार अवश्य किया होगा क्योंकि वेदों में जो भी उल्लिखित है वह आधुनिक विज्ञान (modern science) की दृष्टि से आज पूर्णत: सिद्ध हो रहे हैं, चाहे वह किसी भी दृष्टिकोण से हो। मनु ने वेद को “सर्वज्ञान मयो हि सः”[2] कहा अर्थात् वेद ज्ञान के भण्डार हैं; आवश्यकता है उसे समझने की क्योंकि हमारे सिद्धान्त (theory) अटल हैं, सत्य हैं, एक बार जो कुछ कह दिया वह अन्तिम सत्य हो जाता है; परन्तु आधुनिक विज्ञान (modern science) के सिद्धान्त सीढ़ी दर सीढ़ी बदलते हुए दिखाई देते हैं। इस शोध-लेख में मरुद्गणों का विश्लेषण किया जा रहा है जो कि आधुनिक विज्ञान (modern science) electromagnetic waves विद्युत चुम्बकीय तरंगों व अन्य तरंगों से समानता रखते हैं। ये मरुद्गण *ऋग्वेद* में वृष्टि के देवता, संसार के नियामक और मानसून उत्पन्न करने वाले हैं; इनमे बल (power), सामर्थ्य (force), ऊर्जा (energy), ताप (heat), ध्वनि (sound), आवृत्ति (frequency), प्रकाश (light), चुम्बकत्व (magnatism), विद्युत (electricity), कम्पन (vibration) है; जो आज की modern science भौतिक विज्ञान (physics) में पढ़ाया जाता है। *ऋग्वेद* के सूक्तों से हम क्रमशः समझेंगे कि मरुद्गण किस प्रकार से विद्युत चुम्बकीय तरंगों (electromagnetic waves) से सम्बद्ध रखते हैं एवं उनमें ऐसे कौन से गुण-धर्म हैं जो कि आज के आधुनिक विज्ञान से निकटता स्थापित करते हैं। सर्वप्रथम हम इनके निवास-स्थान पर प्रकाश डालेंगे?

---

* Former Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <vedgautam26@gmail.com>

[1] *निरुक्त* 13.12

[2] *मनुस्मृति* 2.7

अन्तरिक्ष स्थानीय मरुद्गण

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि।
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि।।
– *ऋग्वेद* 1.19.6-7

इस मन्त्र के अनुसार इनका निवास-स्थान अन्तरिक्ष है वहाँ से ये स्वयं सञ्चारित होते हैं। आधुनिक विज्ञान (modern science) में विद्युतचुम्बकीय तरंगों (electromagnetic waves) का निवास-स्थान अन्तरिक्ष (space) में माना जाता है। जहाँ से ये स्वयं सञ्चारित होते हैं। उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ हमे प्राप्त वेद के मन्त्रों में मरुद्गणों के निवास-स्थान तथा स्वयं सञ्चारित होने का तथ्य प्राप्त होता है। मन्त्र में मरुद्गणों को द्युलोक निवासी बताया गया है। "दिवि" द्युलोक को कहते हैं। तथा ये पर्वतों के समान मेघों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। और शान्त समुद्रों में ज्वार पैदा करते हैं। और भी मन्त्र हैं जहाँ इनका अन्तरिक्ष स्थानीय होने का तथ्य प्राप्त होता है –

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः।।
– *ऋग्वेद* 1.85.2

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये।।
– *ऋग्वेद* 1.85.7

इन मन्त्रों में ये अन्तरिक्ष स्थानीय होने के साथ-साथ स्वयं अपने बल को बढ़ाने वाले होते हैं। जैसा कि *ऋग्वेद* के मन्त्रों में प्राप्त होता है –

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः।
– *ऋग्वेद* 1.86.1

अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा य ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळहानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः।।
– *ऋग्वेद* 1.168.4

इन मन्त्रों में मरुद्गणों को आत्मनिर्भर अर्थात् स्वयं सञ्चारित होने वाला कहा गया है तथा "अरेणवः" शब्द का तात्पर्य है कि ये धूलि-रहित हैं। अपनी ऊष्मा से ये अपने आस-पास के सभी ठोस कणों को अवशोषित कर लेते हैं। आज विज्ञान ग्रैविटी की बात करता है वह कहता है कि कृष्ण विवर (blackhole) अपने आस-पास से गुजरने वाले सभी पदार्थों को यहाँ तक कि प्रकाश को भी अवशोषित कर लेता है अतः इनके गुण-धर्म से प्रतीत होता है कि इन मरुद्गणों के पास जो शक्ति है वही शक्ति कृष्ण विवर (blackhole) के पास है जिसे आधुनिक विज्ञान गुरुत्वाकर्षण बल कहता है। अतः हम मरुद्गणों के विशिष्ट अध्ययन से जान सकते हैं कि किस कारण से वस्तु अवशोषित होती है, यहाँ प्राप्त मन्त्रों में इन्हें अविनाशी भी कहा गया है। अविनाशी से तात्पर्य है जिनका कभी विनाश नहीं होता; तथा ये अपनी शक्तियों से प्रेरणा भी प्रदान करते हैं।

क्व स्विदस्य रजतो महस्परं क्वावरं मरुसो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम्।।
– *ऋग्वेद* 1.168.6

इन मन्त्रों में ऋषि अगस्त्य मरुद्गणों से असीम अन्तरिक्ष के छोर (किनारे) के बारे में प्रश्न कर रहें हैं "परं क्व स्वित्" उस ओर कौन है "अवरं क्व" इस ओर कौन है अर्थात् उसका कोई न कोई आदि और अन्त जरूर है। तात्पर्य यह निकलता है कि ये मरुद्गण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। तथ्य से इनका निवास-स्थान अन्तरिक्ष में है लेकिन सामर्थ्य से प्रत्येक स्थान में जाने वाले हैं। यह वैज्ञानिकों के शोध का विषय हो सकता है।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ। वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः।।
– *ऋग्वेद* 5.52.7

ये पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नदी के प्रवाह, लोक के मध्य अवस्थित होकर सब प्रकार से प्रवर्द्धित होते हैं। अर्थात् ये सम्पूर्ण स्थान में व्याप्त हैं।

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय। परमस्याः परावतः।।
– *ऋग्वेद* 5.61.1

यहाँ मरुद्गणों को सुदूर देशों अर्थात् अन्तरिक्ष से आगमन करने वाला बतलाया गया है।

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात् दुर्धर्तवो निदः।।
– *ऋग्वेद* 5.87.9

इस मन्त्र में मरुद्गण पर्वत के समान अर्थात् दीर्घाकार रूप में अन्तरिक्ष में विद्यमान हैं "ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि" ऐसा ही वर्णन *शतपथ ब्राह्मण* 1.2.4.7 में आया है –

वायुरसि तिग्मतेजा इति। (त्ये)एतद्वै तेजिष्ठं तेजो यदयं योऽयं पवत एष हीमाँल्लोकांस्तिर्य्यङ्ङनपवते।।

यहाँ वायु को तेज के रूप में परिभाषित किया गया है, जैसा कि विद्यारण्य कहते हैं –

यः "तिग्मतेजाः" वायुः, वायोस्तिग्मतेजत्वमुपपादयति। यः "अयं" पवते अन्तरिक्षे चरति। एतत् खलु तेजसां मध्ये तेजस्वितमं तेजः। – *शतपथ ब्रा*॰ विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 68

वायु को अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला कहा गया है। वहाँ ये तेजस्वी होकर बृहद् मात्रा में विद्यमान हैं। आधुनिक विज्ञान (modern science) कहता है कि अन्तरिक्ष में एक प्रकाशपुञ्ज है जिसे वे फोटोन कहते हैं। विद्युत चुम्बकीय तरंग भी एक फोटोन (प्रकाश) का ही रूप है।

वयस्क मरुत्

वयस्क से तात्पर्य है कि ये मरुद्गण सदैव ऊर्जावान व शक्तिशाली रहते हैं; वयस्क का अर्थ है सबसे ऊर्जावान, ये हमेशा वयस्क होते हैं। जब कोई भी प्राणी पूर्ण विकास कर लेता है तो उसे वयस्क कहते हैं। यहाँ वह परिपक्व हो जाता है।

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया।।
– *ऋग्वेद* 1.165.1

उपर्युक्त मन्त्र में विद्यारण्य "सवयस:" का अर्थ "समानवयस्का:"[3] करते हैं अर्थात् ये चमकदार दिखने वाले, समान आयु वाले, तथा बलवान हैं।

युवान् मरुत्

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन्।।
– *ऋग्वेद* 1.167.6

उपर्युक्त मन्त्र में मरुत को युवान् मरुत् (नित्य तरुण) कहा गया है जो कि मिश्रित रूप में है तथा "युवतिं" से तात्पर्य है नित्य तरुणी जिसे विद्युतरूप कहा गया है। जैसे कि विद्यारण्य कहते हैं –

युवान: मिश्रयन्तो नित्यतरुणा वा मरुत: युवतिं मिश्रयन्तीं नित्यतरुणीं वा विद्युद्रूपस्याम्।
– *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 1031

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणा:।।
– *ऋग्वेद* 5.58.8

इन मन्त्रों में इन्हें युवा, क्रान्तदर्शी, अविनाशी, तथा प्रचण्ड बल से युक्त, सुख को प्रदान करने वाले, तथा नेतृत्व करने वाले कहा गया है।

शक्तिशाली मरुद्गण

इस प्रकार के मरुद्गण को सामर्थ्य, शक्ति, ऊर्जा, दबाव, पराक्रम, प्रचण्डता, उग्रता आदि रूपों में देखा जाता है। आधुनिक विज्ञान (modern science) में बल को परिभाषित किया जाता है; जिसमें घर्षण (friction), अभिकेन्द्रीय बल (centripetal force), चुम्बकीय बल (magnetic force), गुरुत्वाकर्षण बल (gravitational force) इत्यादि है।

वेदों में इन विविध शक्ति (force) की चर्चा होती है। ये सारे बल मरुद्गणों में देखे जाते हैं। वे कभी सूर्य की तरह प्रकाशक, तो कभी इन्द्र की तरह पराक्रमी, तो कभी अग्नि की तरह उग्र होते हैं। ये अपने बल से कोई भी कार्य सम्पन्न करने में समर्थवान होते हैं। यहाँ कुछ मन्त्रों में हम मरुद्गणों के बलों की विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत।।
– *ऋग्वेद* 1.37.4

यहाँ "शर्धाय" और "त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे" बल और पराक्रम शक्ति (power and force) दोनों को दर्शाता है अर्थात् इन मरुद्गणों में लगातार कार्य करने की शक्ति और सामर्थ्य दोनों विद्यमान हैं। जैसा कि आधुनिक विज्ञान कहता है कि कार्य करने

[3] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 1015

की दर को शक्ति कहते हैं। यहाँ बल घर्षण (friction) रूप में प्राप्त है जो शत्रु को हराने के लिए है। शत्रु विरुद्ध होता है उसके लिए मन्त्र में "घृष्वये" शब्द आया है जो कि "शत्रुघर्षणयुक्ताय"[4] "घर्षणबल" (friction) को दर्शाता है इन मरुद्गणों में "नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः॥"[5] आवेश को बढ़ाना, गति में तीव्रता लाना, और प्रचण्डता, उग्रता को बढ़ाने की शक्ति होती है। जैसा कि विद्यारण्य कहते हैं – "उग्राय तीव्राय मन्यवे चालनार्थमभिमन्यमानाय"[6] ये पर्वतों और टीलों को भी कँपा देते हैं। पर्वतों और टीलों को सामान्य वस्तु नहीं हिला सकती अर्थात् इन मरुद्गणों में विशेष बल है जिसके कारण ये इस प्रकार के कार्य करने में समर्थ होते हैं। इन मरुतों का बल "यत्सीमनु द्विता शवः" दोनों ओर विभक्त रहता है। दोनों ओर से तात्पर्य द्यौ और पृथ्वी है अर्थात् द्यौ ऊपर और पृथ्वी अधोभाग में विभक्त रहता है। इन मरुद्गणों में दोलन करने की शक्ति होती है।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन।
– *ऋग्वेद* 1.37.12

यहाँ "अचुच्यवीतन" का अर्थ "स्वस्वव्यापारेषु प्रेरयत गिरीन् मेघान् अचुच्यवीतन" है। इनमें स्वयं को प्रेरित करने की शक्ति भी है जिससे ये आवेशित होकर ऊर्जा को उत्पन्न होने के लिए स्वयं को प्रेरित करते हैं। और मेघ को विकम्पित कर देते हैं। इन मरुद्गणों में उद्घूर्ण बल होता है।

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह।।
– *ऋग्वेद* 1.38.6

आगे और भी अनेक मन्त्र हैं जहाँ बल (power), सामर्थ्य (force), घर्षण (friction) के मन्त्रों को विस्तृत रूप में दर्शाया जा रहा है।

घर्षण करने वाले मरुत्

इन मरुतों में असीम शक्ति है जो संघर्ष (friction) के समय असामान्य शक्ति प्रदर्शित करते हैं। इन्हें – "धृषु पावकं वनिनं विचर्षणिं"[7] घर्षण करने वाले मरुत् कहा जाता है; क्योंकि ये घर्षण के समय विशेष रूप से "मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः"[8] घर्षणशील होते हैं और ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। जैसा कि कहा गया है –

धारावरा मरुतो घृष्णवोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिन: ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत।।
– *ऋग्वेद* 2.34.1

यहाँ "घृष्णवोजसो" से तात्पर्य है कि घर्षण बल द्वारा ये मरुद्गण गति एवं सूर्य की किरणें उत्पन्न करते हैं। *ताण्ड्य ब्राह्मण* में

[4] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य, भा०, पृ० 279

[5] *ऋग्वेद* 1.37.7

[6] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य, भा०, पृ० 281

[7] *ऋग्वेद* 1.64.12

[8] *ऋग्वेद* 1.85.1

इन्हें रश्मि कहा गया है।[9] और उस समय वे अग्नि के समान देदीप्यमान हो जाते हैं। यहाँ electromagnetic radiation का वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए ये "स्थातारो हि प्रसितौ"[10] "स्थातारो स्थाननियमेन तिष्ठन्तो"[11] नियामक कहलाते हैं।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिव:।।
– *ऋग्वेद* 5.52.7

ये मरुद्गण आकाश, पृथ्वी, नदी, युद्धस्थल सर्वत्र व्याप्त हैं। अर्थात् इनकी व्यापकता विशाल है। और यह स्थिर (अविचलित) बल के सहायक हैं जिसके कारण समस्त पृथ्वी में स्थिरता दिखाई देती है। मनुष्य के गमन में स्थिरता प्रदान करते हैं।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः।।
– *ऋग्वेद* 5.52.2

घर्षण से विद्युत उत्पन्न होती है, क्योंकि ये मरुद्गण विशेष आयुधों से मेघों में संघात करते हैं संघात से घर्षण होता है और घर्षण से विद्युत प्रकट होती है क्योंकि ये "धृष्णुयार्चा"[12] हैं।

(इस मन्त्र में स्थिर विद्युत एवं विद्युत आवेश दोनों को देखा जा सकता है।)

"ते हि स्थिरस्य शवसः" (स्थिर विद्युत) वे मरुद्गण स्थिर बल वाले होते हैं जो कि भौतिक विज्ञान (physics) के स्थितिज ऊर्जा (potential energy) तथा गतिज ऊर्जा (kinetic energy) को दर्शाते हैं। ये गतिमान होकर घर्षण वाले होते हैं। क्योंकि घर्षण से विद्युत उत्पन्न होती है। जैसा कि कहा गया है –

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः।।
– *ऋग्वेद* 5.52.6

दीप्तिमान मरुद्गण दिव्य (अलंकारी) रोचमान आभूषणों से युक्त होकर विशेष आयुधों से मेघों पर संघात करते हैं। जिससे शब्द करती हुई विद्युत उत्पन्न होती है क्योंकि दीप्तिमान मरुद्गणों का बल "असामिशवस:"[13] असीम है। उनका तेज स्वयं ही निःसृत होता है। घर्षण से जो बल उत्पन्न होता है; वह और भी तेजस्वी और आक्रामक होता है। जैसा कि कहा गया है –

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत।।
– *ऋग्वेद* 5.52.14

क्योंकि आवेश दो बिन्दु पर कार्य करता है। आवेश और घर्षण के लिए भी दो बिन्दु की आवश्यकता है।

---

[9] मरुतो रश्मयः – *ताण्ड्य ब्राह्मण* 14.12.9

[10] *ऋग्वेद* 5.87.6

[11] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 996

[12] *ऋग्वेद* 5.52.1

[13] *ऋग्वेद* 5.52.5

कम्पन/स्पन्दन मरुत्

कम्पन सर्वत्र व्याप्त है, प्रत्येक वस्तु कम्पन करती है। गति जितनी अधिक होगी कम्पन उतना ज्यादा होगा, अर्थात् इस कम्पन के कारण ही आवृत्ति (शब्द) होता है। वेदों में मरुद्गण कम्पनयुक्त होते हैं। अन्य कुछ मन्त्रों के आधार पर कम्पन को समझते हैं। *ऋग्वेद* में इन मरुद्गणों को हे कम्पनकारिणों मरुतों कहा गया है –

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ।।
– *ऋग्वेद* 1.37.6

यहाँ मरुद्गणों को युग्मित दोलन के रूप में देखा जा सकता है। "धूञ-प्रकम्पने" धातु, द्यौ और पृथ्वी एवं अणु या परमाणु मिलकर युग्मित दोलक बनाते हैं। ऊपर (द्यौ) और नीचे (पृथ्वी) दोनों ओर कम्पन करते हैं। यहाँ "mode of vibration" का सिद्धान्त काम करता है।

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः।
– *ऋग्वेद* 1.37.7

जब ये उग्र (आवेशित) होकर गति करते हैं तब ये बड़े-बड़े पर्वतों को कँपा देते हैं। यह कम्पन सर्वत्र व्याप्त है जिससे मानव शरीर भी प्रभावित होता है। जैसा कि इस मन्त्र में आया है –

अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः।।
– *ऋग्वेद* 1.38.10

यहाँ मनुष्य कम्पन से प्रभावित न हो ऐसी प्रार्थना की जा रही है। जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में कम्पन एक अनैच्छिक,[14] कुछ सीमा तक लयबद्ध, मांसपेशियों में संकुचन और विश्राम है जिसमें "शरीर के एक या अधिक अंगों का" हिलना या मरोड़ना शामिल है। ये सभी अनैच्छिक आन्दोलनों में सबसे आम है और हाथ, आँख, चेहरा, सिर, मुख, सिलवटों, धड़ और पैरों को प्रभावित कर सकता है। ज्यादातर कम्पन हाथों में होते हैं। कुछ लोगों में, कम्पन एक अन्य स्नायविक विकार का लक्षण है। कुछ कम्पनों के प्रकार – अनुमस्तिष्क कम्पन, डायस्टोनिक कंपकंपी, एसेंशियल ट्रेमर, ऑर्थोस्टेटिक कम्पन, फिजियोलॉजिकल ट्रेमर, साइकोजेनिक कंपकंपी, इत्यादि हैं[15]। इन्हें "धूतयः शव:" भी कहा जाता है अर्थात् बल से कँपाने वाले। इसके अतिरिक्त अनेक मन्त्रों में भी कम्पन मरुद्गणों का वर्णन आया है। जिन्हें यहाँ वर्णित किया जा रहा है –

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः।।
– *ऋग्वेद* 1.64.5

इस मन्त्र में मेघों के कम्पन से दोलन होने का वर्णन तथा मरुद्गणों का ईशान दिशा से आने का संकेत प्राप्त होता है। यह (भौतिक शक्ति) प्रवाह विज्ञान (science) में उल्लिखित विद्युतचुम्बकीय तरंगों से साम्यता रखता है क्योंकि आधुनिक विज्ञान ईशान दिशा को धनात्मक (+) दिशा मानता है तथा आधिदैविक पक्ष को देखा जाए तो आज शिल्पकार (architecture) भवन आदि निर्माण में ईशान दिशा में ही शक्ति (ईश्वर) का स्थान रखते हैं।

---

[14] *डोर्लैण्ड्स मेडिकल डिक्शनरी* – "कंपकंपी"।

[15] https://en.wikipedia.org/wiki/Tremor

जब ये मरुद्गण समूह में वेग से जाते हैं तो बड़े से बड़े पिण्ड में कम्पन (दोलन) होने लगता है। जैसा कि कहा गया है –

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः।।
– *ऋग्वेद* 1.87.3

ये मरुद्गण क्रीडायुक्त, चमकीले अस्त्रों से युक्त, गर्जनायुक्त होकर "धूतय:" "धूञ्प्रकम्पने धातु" किसी को भी कँपा देते हैं।

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम्।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्यन्द्रा युजत त्मना।।
– *ऋग्वेद* 5.52.8

ये सत्यबल तथा आत्मबल (विल पॉवर) से युक्त मरुद्गण स्पन्दनकारी होते हैं। अन्य मन्त्रों में अनेक स्थान में कम्पन सम्बन्धित मन्त्र प्राप्त होते हैं जहाँ या तो ये कम्पनयुक्त हैं या कम्पन कराते हैं।

यथा –

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन्।।
– *ऋग्वेद* 5.58.2

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्च धवध्वे।।
– *ऋग्वेद* 5.60.3

उपर्युक्त मन्त्र में वर्णन है कि भीषण शब्दों द्वारा अत्यन्त प्राचीन पर्वत तथा द्युलोक भी कम्पित हो उठता है, क्योंकि ये वेगजनित शब्द से कम्पित करने वाले होते हैं।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।।
– *ऋग्वेद* 5.87.5

यहाँ शब्द से कम्पन होने का विवरण है, जो आज आधुनिक विज्ञान (modern science) के यान्त्रिक कम्पन आडियो सिग्नल (ध्वनि) रेडियो तरंग और प्रकाश जैसे दोलन को निर्दिष्ट करता है। आधुनिक विज्ञान (modern science) में चक्रीय घटनाओं जैसे दोलनों, तरंगों या सरल हॉर्मोनिक गति के उदाहरणों के लिए, आवृत्ति शब्द को समय की प्रति इकाई चक्र कम्पन की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है। उसी सिद्धान्त का यहाँ मन्त्र में भी आवृत्ति (frequency) और कम्पन (vibration) का वर्णन है।

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः।।
– *ऋग्वेद* 7.57.1

इनके द्वारा ही सर्वत्र जल वृष्टि होती है ये पृथ्वी और अन्तरिक्ष को कम्पित करके सर्वत्र गमनशील हैं।

इसी तरह *ऋग्वेद* के 8वें मण्डल के 20वें सूक्त में वर्णन आया है –

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः।।
– *ऋग्वेद* 8.20.4

जब आप शत्रुओं का संहार करने के लिए बड़े वेग से जाते हैं तो बड़े-बड़े द्वीप, आकाश, पृथ्वी, पेड़-पौधों को कम्पायमान कर देते हैं।

आकर्षणकारी मरुद्गण

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्ट्य आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः।।
– *ऋग्वेद* 3.26.5

ये मरुद्गण अग्नि (विद्युत) के साथ मिलकर सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित करते हैं।

अग्नि-इन्द्र-सूर्य के समान मरुत्

मरुद्गणों के बल की चर्चा की जाए तो वे अग्नि और इन्द्र के समान अति बलशाली होते हैं क्योंकि *ऋग्वेद* में इन्द्र सबसे पराक्रमी है। और इन्द्र को युद्ध में सबसे ज्यादा आवश्यकता मरुद्गणों की होती है। जब इन्द्र और मरुद्गण मिलते हैं तो इनमें सामर्थ्य बहुत ज्यादा हो जाती है, तथा अग्नि के साथ मिलकर इनकी वेधक-शक्ति और उग्र-शक्ति बढ़ जाती है। जिसके कारण ये बड़ी-बड़ी चट्टानों को काट देते हैं। अग्नि और मरुद्गण साथ में मिलकर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। जैसा कि कहा गया है –

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि।।
– *ऋग्वेद* 1.19.4

यहाँ अग्नि को सम्बोधित करते हुए मरुद्गणों के स्वरूप का वर्णन है। उग्ररूपधारी मरुद्गण जो कि सूर्य के सदृश प्रकाशक हैं तथा उन्हें तेजों (किरणों) से युक्त (ये किरणें पराबैंगनी किरणें हो सकती हैं क्योंकि ये संहारक किरणें भी होती हैं तथा कल्याणकारी भी होती हैं। पराबैंगनी किरणें (ray) त्वचा को झुलसाने व त्वचा कैंसर का कारण बनती हैं। तथा8 वायुमण्डल में उपस्थित ओजोन परत से आने वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर कल्याणकारी भी होती हैं।) तीक्ष्ण, वेधक रूप वाले श्रेष्ठ बल[16] सम्पन्न एवं शत्रु का संहार करने वाला कहा गया है। इन दो मन्त्रों (1.19.4-5) में विशेष ऊर्जा बल की बात की गई है। इसका तात्पर्य है कि मरुद्गण अग्नि के साथ मिलकर विशेष ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। आगे मरुद्गण क्रीडायुक्त भी होते हैं जो कि बलयुक्त होते हुए अहिंसक (negative) ऋणात्मक वृत्ति, हिंसात्मक धनात्मक (positive) वृत्ति वाले होते हैं। इस कार्य को ये क्रीडा करते हुए सम्पन्न करते हैं।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत।।
– *ऋग्वेद* 1.37.1

---

[16] ये शुभ्रा घोरपर्वसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि।। – *ऋग्वेद* 1.19.5

यहाँ मरुद्गणों के समूह-रूपी बल की बात कही गई है, अर्थात् जब छोटे-छोटे कण समूह में विद्यमान होते हैं, तब वे बलशाली होते हैं।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत।।
– *ऋग्वेद* 1.37.4

ये बल (power) को बढ़ाने वाले हैं तथा समर्थवान हैं अर्थात् यहाँ मरुद्गणों के लिए बलशाली और इनके सामर्थ्य शक्ति दोनों की बात की गई है। अर्थात् जब इन्हें बल की आवश्यकता होती है ये स्वयं "त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे" दीप्तिमान बल उत्पन्न कर सकते हैं।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँ रचुच्यवीतन।।
– *ऋग्वेद* 1.37.12

उपर्युक्त मन्त्र से तात्पर्य है कि ये मरुद्गण समस्त प्राणी एवं पर्वतों के समान विशाल मेघों को अपने-अपने कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह।।
– *ऋग्वेद* 1.38.6

मो षु णः से तात्पर्य "उत्कृष्टादप्युत्कृष्टा अतिबलेत्यर्थः"[17] उत्कृष्ट से भी अति-उत्कृष्ट बल इन मरुद्गणों में है। आगे के मन्त्र में ऋषि त्वरित आवेश से उत्पन्न मरुद्गणों का आह्वान करते हैं –

असाम्योजो विभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम्।।
– *ऋग्वेद* 1.39.10

यहाँ "ऋषिद्विषे" से तात्पर्य है "ऋषीणां द्वेषं कुर्वते" अर्थात् जो द्वेषी हैं वे ऋणात्मक (negative) शक्ति, और उसके विपरीत ऋषि हुए धनात्मक (positive) शक्ति, मरुद्गण जो कि आवेश से युक्त होकर अर्थात् "परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम्", "परिमन्यु- मन्युना परिवृतः" आवेश से युक्त होकर चारों तरफ से विद्यमान है। *ऋग्वेद* के मन्त्रों में और भी स्थानों में बल और सामर्थ्य का वर्णन है जहाँ इन्हें मन्त्र रूप में प्रदर्शित किया गया है –

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरा मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः।।
– *ऋग्वेद* 1.64.1

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम्।।
– *ऋग्वेद* 1.64.7

[17] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 285

ये महिमावान, अपने अभेद्य बल से विभिन्न दीप्तियाँ (विकिरण) छोड़ने तथा वेगपूर्वक गमन करने वाले होते हैं। तथा ये जब आवेशित होते हैं तब और भी बलवान होकर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं इसलिए इन्हें "शवसाहिमन्यवः"[18] कहा गया है। इसके बाद के मन्त्र में भी इन्हे "शूराः शवसाहिमन्यव:"[19] कहा गया है; क्योंकि इनमें अत्यन्त बल होता है जिसके कारण ये किसी को भी भेद सकते हैं। यह आधुनिक विज्ञान (modern science) की "गामा किरणों" (gama ray) की ओर इशारा करती है। यह शक्ति अत्यन्त ही वेधक और अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। ये मरुद्गण "स्वरोचिष: स्थारश्मानो हिरण्यया: स्वायुधास इष्मिण:"[20] स्वयं में दीप्तिमान स्थिर रश्मि वाले हिरण्य आभरणों से अलंकृत सर्वोत्तम आयुधों से युक्त होते हैं।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकस: सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिन:।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः।।
– *ऋग्वेद* 1.64.10

इस मन्त्र में मरुद्गणों के विशिष्ट बल जो कि "सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिन:" विभिन्न प्रकार के बलों से युक्त जैसे गुरुत्व बल, चुम्बकीय बल, घर्षण बल, विद्युत बल, इत्यादि अनेक बलों से युक्त तथा "अनन्त शुष्मा" है जिसमें "शुष्म" इति "बलनाम" अनवच्छिन्न बल से भरे हुए होते हैं। ऐसे ये मरुद्गण जिनमें अनन्त बल समाहित होता है उनके मन्त्र यहाँ दर्शाए गए हैं –

रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये।
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।।
– *ऋग्वेद* 1.64.12

"तवसं" से तात्पर्य बल तथा "शवसा" से तात्पर्य शक्ति (ऊर्जा) से है।

स्थायी बल भी प्रदान करते हैं मरुत् –

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।।
– *ऋग्वेद* 1.64.15

यहाँ मरुद्गणों से प्रार्थना की जा रही है कि हमें स्थायी (स्थिर) बल प्रदान करें। जिससे हम वीर हों और आपकी तरह हमें और भी बल (शक्ति) प्राप्त हो। यहाँ "रयिम्" का अर्थ विद्यारण्यजी ने पुत्र लक्षण किया है। हज़ारों प्रकार की शक्ति आपके रूप में प्राप्त हो। बल को उत्पन्न करने के कारण इन्हें आविष्कारकर्ता भी कहा गया है –

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः।।
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः।।
– *ऋग्वेद* 1.86.8-9

और भी मन्त्रों में इनके विभिन्न बलों को दर्शाया गया है –

[18] *ऋग्वेद* 1.64.8

[19] *ऋग्वेद* 1.64.9

[20] *ऋग्वेद* 5.87.5

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ।।
– *ऋग्वेद* 1.87.1

उपर्युक्त मन्त्र के अनुसार इन मरुद्गणों में “प्रत्वक्षसः” शत्रुओं में घात करने वाला “प्रतवसो” प्रकृष्ट बल है जो कि सर्वोत्कृष्ट एवं अवियुक्त हैं। ये जयघोष करने वाले होते हैं अर्थात् इनमें विविध प्रकार कि शब्द (ध्वनि) करने की शक्ति है |

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहित्ये ।
अहं ह्यु ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ।।
– *ऋग्वेद* 1.165.6

इस मन्त्र में इन्द्र मरुद्गणों से कह रहे हैं कि आपकी शक्ति कहाँ है जो आपने वृत्र-वध के समय मुझे प्रदान की थी। वध से तात्पर्य है वज्र जो कि इन्द्र के पास शक्ति (ऊर्जा) रूप में है। क्योंकि ये मरुद्गण उद्गूर्ण शक्ति वाले हैं |

भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र कृत्वा मरुतो यद्वशाम ।।
– *ऋग्वेद* 1.165.7

इस मन्त्र में मरुद्गण इन्द्र से कहते हैं कि हम अपनी पुरुषार्थ-रूपी शक्ति से जो भी चाहे प्राप्त कर लेते हैं।

एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ।।
– *ऋग्वेद* 1.165.10

इस मन्त्र में इन्द्र कह रहे हैं कि हे मरुद्गणों ओज (ऊर्जा) बल से एकाग्र होकर किसी भी बड़े कार्य को किया जा सकता है, मैं इसलिए ईश्वर कहलाता हूँ।

इन तीन मन्त्रों में मरुद्गण पराक्रमी इन्द्र के साथ मिलकर विशेष शक्ति (ऊर्जा) उत्सर्जित करते हैं।

समूहरूपी मरुद्गण

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् । अनु प्र यन्ति वृष्टयः ।।

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः । अनु क्रामेम धीतिभिः ।।
– *ऋग्वेद* 5.53.10-11

गणम् से तात्पर्य है “सप्त सप्त समुदायात्मकं गणगणं”[21] जो कि कई सूक्ष्म कणों को दर्शाता है।

अगले मन्त्र में गति ऊर्जा और स्थितिज ऊर्जा का वर्णन है –

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ।।
– *ऋग्वेद* 8.20.1

[21] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 899

"समन्यव:" शब्द का तात्पर्य क्रोध "आवेश" से है। उपर्युक्त मन्त्र में वर्णन है कि जब ये मरुद्गण आवेशित (क्रोधित) होते हैं तो स्थिर पर्वत को भी "नमयिष्णवः नमनशीला: कम्पययितार:"[22] झुका देते हैं। तात्पर्य है कि ये बड़-बड़े पर्वतों को भूमि से ऊपर उठाकर गिरा देते हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यदि किसी वस्तु को भूमि की सतह से ऊपर उठा दिया जाए तो उसमें स्थितिज ऊर्जा सञ्चित हो जाती है (वस्तु को छोड़ने पर वह धरती की ओर गिरती है और उसकी स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में बदल जाती है)। यदि यह वस्तु किसी दूसरी वस्तु के ऊपर गिरे तो उसकी यह गतिज ऊर्जा, उष्मीय ऊर्जा एवं ध्वनि ऊर्जा में बदल जाती है[23]। जैसा कि कहा गया है –

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः। भूमिर्यामेषु रेजते।।
– *ऋग्वेद* 8.20.5

ये मरुद्गण जब तीव्रता से गति करते हैं तो वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, आदि शब्द (आवाज) करने लगते हैं। क्योंकि ये वृक्ष, वनस्पति, पर्वत एक-दूसरे के ऊपर गिरने लगते हैं जिसके कारण ध्वनि ऊर्जा या ऊष्मीय ऊर्जा उत्पन्न होती है।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः। वहन्ते अहुतप्सवः।।
– *ऋग्वेद* 8.20.7

गतिमान एवं आवेशित मरुद्गण

वस्तु की स्थिति में परिवर्तन गति कहलाती है। इसके कुछ प्रकार भी हैं जैसे – रैखिक गति, वृत्तीय गति, दोलनी गति, आवर्त गति, अनियमित गति, घूर्णन गति, इत्यादि। *ऋग्वेद* में प्राप्त मन्त्रों में मरुद्गणों की विभिन्न गतियों का वर्णन है। ये मरुद्गण तीव्र गति वाले हैं –

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै।।
– *ऋग्वेद* 1.37.14

तथा जब ये गति करते हैं तो अनेक चिह्नों से युक्त श्वेत बिन्दु-रूप में होते हैं, तात्पर्य अणुओं से हैं जिसे सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो बिन्दु-रूप में ही दिखाई देते हैं।

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः।।
– *ऋग्वेद* 1.39.6

यहाँ वेग (प्रवाहमान) रथ (गति) का वर्णन है जिसमे "वहति रोहितः" जातिर्लोहितवर्ण: विज्ञान (science) में अवरक्त किरणें जो कि गति करती हैं ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। तथा शब्द का वर्णन है जो कि heartz को वर्णित करता है कि मनुष्य यहाँ अत्यधिक frequency को सुन नहीं पाता। वह अन्तरिक्ष और पृथ्वी दोनों में सुनाई देती है। और इनकी गति मन की गति तथा प्रकाश की गति के समान बतलाई गई है –

[22] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 643

[23] Hi.wikipedia.org/wiki/स्थितिज_ऊर्जा

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रतासः पृषतीरयुग्ध्वम्।।
– *ऋग्वेद* 1.85.4

ये तीव्र गति से कार्य करने वाले भी होते हैं इसलिए इन्हें "यामन्नुद्रस्य सूनवः सुदंससः"[24] रुद्र का पुत्र कहा जाता है और जब ये गति करते हैं तो "पृषतीरयुग्ध्वम्" बिन्दु रूप से योजित होकर करते हैं। तथा ये पक्षी की तरह गति करते हुए अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आते हैं जैसा कि कहा गया है – "वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये"[25] वय अर्थात् पक्षी की तरह गति जो कि रैखिक गति को दर्शाता है। जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक पक्षी की तरह गति करते हैं। आज रेलयान, वायुयान सरलरेखीय गति के उदाहरण हैं। और भी स्थानों में ऐसा वर्णन मिलता है। तथा ये "स्वयतासो अघ्रजन्"[26] "स्वयमेव सारथिना विना युक्ताः प्र अघ्रजन् प्रकर्षेण गच्छन्ति व्याप्नुवन्ति"[27] अर्थात् ये स्वयं से सञ्चारित होकर गति करते हैं। शीघ्र गमन करने के कारण इन्हें कहीं "तुरासः"[28] तो कहीं "मिम्यक्ष"[29] (म्यक्षतिर्गतिकर्मा), कहीं "त्वेषमयासां"[30] कहीं "यामश्चित्र ऊती सुदानवः। मरुतो अहिभानवः"[31] अर्थात् इनकी गति आश्चर्यचकित करने वाली है। ये अक्षय तेजसम्पन्न है। तो कहीं "अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्य"[32] तो कहीं "अश्वयुज परिज्रयः" परितोगन्तारः यहाँ वृत्तीय गति का उल्लेख प्राप्त होता है। तो कही "इष्मिण:"[33] तो कहीं "अत्यासौ न ये मरुत:"[34] सतत गमनशील मरुत, सुष्ठु रूप से गति करने वाला मरुत् कहा गया है। तथा वायु के समान वेग करने के कारण "वातासो न ये धुनयो जिगत्नवः"[35] तथा "वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः" कहा जाता है। तथा नदियों के समान गतिशील होने के कारण "सिन्धवं न ययियो भ्राजद्रष्टयः"[36]। इनकी गति जल की तरंगों के समान बतलाई गई है जो कि अपने बल से स्वयं सञ्चारित होते हैं तथा सहस्र धाराओं (कणों) के साथ गति करते हैं।

---

[24] *ऋग्वेद*, 1.85.1

[25] *ऋग्वेद*, 1.85.7

[26] *ऋग्वेद*, 1.166.4

[27] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 1023

[28] *ऋग्वेद*, 1.166.14

[29] *ऋग्वेद*, 1.167.3

[30] *ऋग्वेद*, 1.168.9

[31] *ऋग्वेद*, 1.172.1

[32] *ऋग्वेद*, 5.53.7

[33] *ऋग्वेद*, 7.56.11

[34] *ऋग्वेद*, 7.56.11

[35] *ऋग्वेद*, 10.78.3

[36] *ऋग्वेद*, 10.78.7

जल की तरंग की तरह गति करने वाले मरुद्गण

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः।।
– ऋग्वेद 1.168.2

"अपां" शब्द से तात्पर्य है जल और "ऊर्मि" शब्द का अर्थ तरंग होता है।

यतसीमन्तं द्विता शवः

Electromagnetic Wave

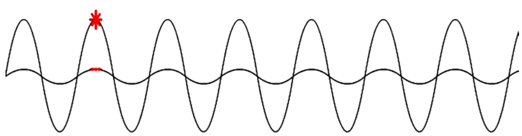

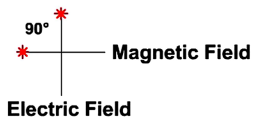

दिवश्च ग्मश्च धूतयः। (धूञ् प्रकम्पने)

Electromagnetic Wave

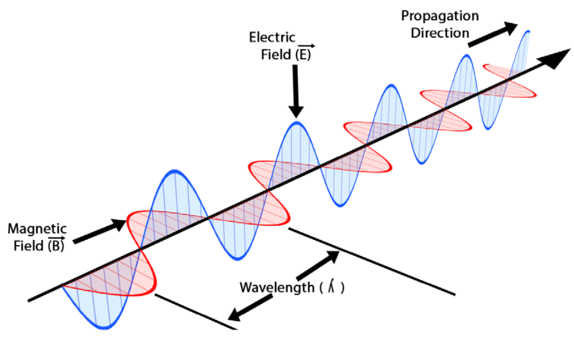

यतसीमन्तं द्विता शवः।

इस मन्त्र में विद्युत चुम्बकीय तरंग को जैसा बतलाया गया वैसा ही स्वरूप प्राप्त होता है ये स्वयं सञ्चारित होती है तथा "को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यतसीमन्तं न धूनुथ॥"[37] ये पृथ्वी तथा आकाश दोनों को कम्पित करने वाले हैं। दोनों से तात्पर्य ऊपर और नीचे जैसा कि कहा गया है कि इनका बल दोनों ओर विभाजित रहता है "यतसीमन्तं द्विता शवः" इस

[37] ऋग्वेद, 1.37.6

मन्त्र में “वव्रासोवव्ररिति रूपनाम”[38] कहा गया जो कि दृश्य तरंगों को दर्शाता है।

प्रति वा एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान्।।
– *ऋग्वेद* 1.171.1

उपर्युक्त मन्त्र में त्वरण/आवेश/गति तीनों का वर्णन प्राप्त होता। जो कि इस मन्त्र में “एमि” शब्द का तात्पर्य गति के लिए है जो कि प्रवाहमान गति के लिए है। तथा “तुराणाम्” “त्वरणमाणानां शत्रूणां हिंसकानां” त्वरित विपरीत दिशा के घात के लिए “हेळः – क्रोधनामैतत्” (आवेशित होकर) गति करते हैं। (जेम्स क्लार्क मैक्सवेल का कहना है कि त्वरित आवेश वैद्युत चुम्बकीय तरंग विकिरित करता है[39])। इन्हें “धारावरा:” मरुत भी कहते हैं, क्योंकि ये स्थिर वृक्षों को दोलायमान करते हैं, वह गति से होती है। जब कोई वस्तु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे गति करती है तो इस गति को दोलनी गति कहते हैं। जैसे जल दोलनी गति का उदाहरण समुद्र से सूर्य की किरणों द्वारा ऊपर और वर्षा से नीचे। इन मरुतों में आवेशित अर्थात् क्रोधित होने का संकेत बहुत से मन्त्रों में प्राप्त होता है। जिसके कारण इन्हें “समन्यव:” कहा गया है। यही modern science में आवेशित कण होते हैं। ये अन्तरिक्ष से स्वयं सञ्चारित होकर पृथ्वी पर आते हैं। पाँचवे मण्डल के 87वें सूक्त में तो इन्हें एवयामरुत कहा गया, “एवया” से तात्पर्य गतिमान मरुत। वह इस प्रकार है –

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे।।
– *ऋग्वेद* 5.87.1

“शवसे” से तात्पर्य है “गमनवते”, “एवयामरुत्” और “शर्धाय” से “बलवते”। ये मरुत “येषामिरी सधस्थ ईष्ट”[40] अर्थात् स्वयं को प्रेरित करने वाले भी होते हैं। “इरी ईरिता प्रेरिता”[41]। इन्हें शुभ्रतेजो से युक्त तीक्ष्ण वेधक कहा गया है[42]। जो कि आधुनिक विज्ञान की गामा किरण से समानता रखता है जिसकी भेदन-शक्ति सबसे तीव्र होती है[43]। जब ये मरुद्गण आपस में मिलते हैं तो श्येन पक्षी की तरह आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन्।।
– *ऋग्वेद* 7.56.3

यहाँ श्येन पक्षी की तरह गति का वर्णन है। मरुत् अपनी विकिरणों से वृष्टि करते हैं ऐसा वर्णन प्राप्त होता है –

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्। यद्यामं यान्ति वायुभिः।।
– *ऋग्वेद* 8.7.4

---

[38] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 1032

[39] NCERT book, class 12th, lesson 8, p. 274.

[40] *ऋग्वेद*, 5.87.3

[41] *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा०, पृ० 995

[42] *ऋग्वेद*, 1.19.5

[43] Hi.wikipedia.org/wiki/Gama ray

ये वायु के प्रवाह के साथ गमन करते हैं –

उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते। वाश्रा अधि ष्णुना दिवः।।
– *ऋग्वेद* 8.7.7

ये अन्तरिक्ष से लाल रंग की विकिरण के साथ गर्जना करते हुए आते हैं। यह ray अवरक्त/अधोरक्त ray से साम्यता रखती है।

सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे। ते भानुभिर्वि तस्थिरे
– *ऋग्वेद* 8.7.8

ये सूर्य की रश्मियों का सृजन कर उनका पथ प्रदर्शित करते हैं। उनकी किरणों में बल बढ़ाकर उनकी गति को सर्वत्र प्रसारित करते हैं। यहाँ प्रकाशगति तथा इन मरुद्गण की गति समान है या ये भी कह सकते हैं कि मरुद्गण के कारण ही प्रकाश की गति सम्भव है, क्योंकि ये द्युलोक के गतिशील पुत्र कहलाते हैं। जैसा कि कहा गया है –

श्रिये मर्यासो अञ्जीरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः।।
– *ऋग्वेद* 10.77.2

उपर्युक्त मन्त्र में "दिवस्पुत्रास द्युदेवतायाः पुत्रासः एवं आदित्यासः अदितेः पुत्राः"[44] द्युलोक के पुत्र तथा अदिति के पुत्र कहे गए हैं। ये मरुद्गण आक्रामक (प्रचण्ड) वर्धनकारी हैं परन्तु जब तक मन्त्र बल कार्य नहीं करता ये आक्रामक नहीं होते अर्थात् शक्ति (मन्त्र-शक्ति) होने पर ये आक्रामक हो जाते हैं। ये मरणशील हैं लेकिन अपनी शक्ति से शोभन शरीर को दिव्य विभूतियों से सज्जित कर लेते हैं। तब इन्हें कोई पराजित नहीं कर पाता।

अगले मन्त्र में इनकी विशेष गतियों का वर्णन है –

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिपुषः।।
– *ऋग्वेद* 10.77.5

यहाँ ऋषि (स्यूमरश्मि भार्गव) कहते हैं कि आप अपनी रश्मियों (विकिरणों) से योजित होकर सूर्य की ज्योति के समान तेजस्वी होकर गतिशील बनें। गरुड़ पक्षी के समान अपने यश को बढ़ाने वाले, उग्र स्वरूप वाले तथा पथिक (प्रवासी) के समान चारों तरफ से गतिशील बनो। तात्पर्य यह है कि ये मरुद्गण चारों ओर गति करने वाले हैं।

सञ्चार करने वाले मरुद्गण

यद्ध यान्ति मरुत: सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम्।।
– *ऋग्वेद* 1.37.13

"ब्रुवतेऽध्वन्ना" शब्द से तात्पर्य है "सं ब्रुवते ह संभूय ध्वनिमवश्यंकुर्वन्ती"[45] कि ये मरुद्गण जब साथ होकर मार्ग में गमन करते हैं तो सञ्चार (communication) करते हुए गमन करते हैं। अर्थात् मरुद्गण ध्वनि उत्पन्न करने वाले हैं ।

---

44 *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 552

45 विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 282

विद्युत मरुद्गण

विद्युत मरुद्गणों से तात्पर्य है कि मरुद्गण देदीप्यमान, कान्तिमान, शोभायमान, हिरण्यमय हैं अग्नि की तरह एवं सूर्य की तरह। इनके पास विद्युत है, ये विद्युत को उत्पन्न करते हैं। प्रथम मण्डल के उन्नीसवें सूक्त में विशेष रूप से अग्निमरुत् सूक्त है। यथा –

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

ये शुभ्रा घोरपर्वसा सुक्षत्रासो रिशादस। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि।।
– *ऋग्वेद* 1.19.4-6, 8

इन चारों मन्त्रों में क्रमशः मरुद्गणों को अग्नि से युक्त, अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य के समान प्रकाशक, शुभ्र तेजों से युक्त, तीक्ष्ण बेधक रूप वाले, स्वयं में देदीप्यमान, द्युलोक में स्थित सूर्य के समान शोभायमान, तथा सूर्य की रश्मि (किरणों) से समुद्र को अपने बल से प्रभावित करने वाले कहा गया है। क्योंकि ये "अजायन्त स्वभानवः"[46] स्वयं की दीप्ति से उत्पन्न हुए हैं। मरुद्गणों द्वारा ही विद्युत और शब्द (आवृत्ति) उत्पन्न होती है जैसा कि कहा गया है –

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि।।
– *ऋग्वेद* 1.38.8

यह मन्त्र समाज को ज्ञान भी प्रदान करता है क्योंकि आज science में पढ़ाया जाता है कि ध्वनि की गति प्रकाश की गति से कम है उसका सिद्धान्त बादलों में छिपी विद्युत और ध्वनि (गर्जन) से लिया जाता है। मन्त्र कहता है कि –

वाश्रेव शब्दयुक्ता प्रस्नुतस्तनवती धेनुरिव विद्युत मेघस्था दृश्यमाना सती मिमाति शब्दं करोति विद्युद्वेलायां हि मेघगर्जनं प्रसिद्धम्। – *ऋग्वेद*, विद्यारण्य भा॰, पृ॰ 287

अर्थात् मेघ में स्थित विद्युत के दृश्यमान होने पर वह मरुत् शब्द करता है। अर्थात् गाय के प्रकाशित होने पर बछड़ा उसे देखकर शब्द करता है।

सूर्य की तरह दिखने वाले ये मरुद्गण विशेष दीप्तिमान "पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो" (*ऋग्वेद* 1.64.2) हैं। ये अपनी सामर्थ्य से वायु और विद्युत को उत्पन्न करते हैं –

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विधुतस्तविषीभिरक्रत।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः।।
– *ऋग्वेद* 1.64.5

परिज्रयः – "परितो गन्तारः" चारों तरफ से गमन करके अपने "आत्मीयैर्बलै" (will power) से ये पुरोवात् और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं। ये विद्युत स्वरूप वाले हैं।

---

[46] *ऋग्वेद*, 1.37.2

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः।।
– *ऋग्वेद* 1.88.1

ये मरुत् विद्युत के समान दिव्य स्वरूप तथा अरुणिम (लाल) आभा वाले हैं एवं जब ये गति करते हैं तो भूरे स्वरूप में प्रतीत होते हैं। इनके पास एक विद्युत है जिससे इन्हें "ऋष्टिविद्युतः" भी आयुध की तरह कहा जाता है। ये धूलिरहित है इसलिए इन्हें "अरेणवस्तुविजाता" कहा गया है[47]।

ये मरुद्गण अग्नि के समान देदीप्यमान होते हैं –

अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत।।
– *ऋग्वेद* 2.34.1

परन्तु जब यह आवेशित होकर कार्य करती है तब एक धारा उत्पन्न करती है या शक्ति उत्पन्न करती है। ये विद्युत त्वरित आवेशित होकर समान क्रोध से जाने वाली होती है तथा वह विद्युत मरुतों की अनुगामिनी होती है।

आ रुक्मैरा सुधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः।।
– *ऋग्वेद* 5.52.6

विशेष शब्द करती हुई नदियों की तरह यह विद्युत मरुतों की अनुगामिनी होती है। क्योंकि इन मरुद्गणों के पास ये "य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः"[48] विद्युत आयुधों से देदीप्यमान हैं जो महान् क्रान्तदर्शी और मेधा-सम्पन्न हैं। तथा "ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु। श्राया रथेषु धन्वसु।।"[49] ये मरुद्गण स्वरूपवान होते हैं। आभूषणों के कारण देदीप्यमान प्रतीत होते हैं। ये विद्युत से युक्त होकर तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः।।
– *ऋग्वेद* 5.54.2

यहाँ तीनों सदनों में शब्द भी मरुद्गण करते हैं। जो कि आज Nasa ने यह सिद्ध किया है कि अन्तरिक्ष लोक में frequency (शब्द) (आवृत्ति) है। जिसको उन्होंने record भी किया है। अगले मन्त्र में मरुत् अपने उद्धत बल से बादलों को बनाते हैं।

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः।।
– *ऋग्वेद* 5.54.3

इस मन्त्र में विद्युत के समान तेजस्वी मरुद्गण आयुधयुक्त और द्युतिमान हैं। आगे के मन्त्र में इनके स्वरूप का वर्णन है –

---

47 *ऋग्वेद*, 1.168.4

48 *ऋग्वेद*, 5.52.13

49 *ऋग्वेद*, 5.53.4

अंसेषु व ऋष्टय: पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षस वितता हिरण्ययीः।।
– *ऋग्वेद* 5.54.11

अर्थात् गतिमान मरुतों आप अपने अग्नि के समान आयुधों रुक्मों, विद्युतों, हिरण्मय (स्वर्ण) शिरस्त्राणों को धारण करके शोभायमान होते हो। क्योंकि इनकी विकिरण "विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः"[50] सूर्य रश्मि की तरह विशेष आभा से युक्त स्वर्ण (हिरण्यमय) के समान होते हैं। इसलिए इन्हें "भ्राजदृष्ट्य:" कहा गया है।

अधोरक्त विकिरण

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळहवे।।
उत स्य वाज्यरूषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः
मा वो यमेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत।
– *ऋग्वेद* 5.56.6-7

इन दोनों मन्त्रों में मरुत् स्वयं को प्रेरित करते हुए (रोहित) लाल अश्व एवं अरुणिम अश्व को नियोजित कर गमन करते हैं। जो कि प्रभूत ध्वनि (frequency) भी करते हैं। तथा ये अरुण (लाल) के अलावा पिशांगाश्वा भी हैं। अर्थात् बभ्रु (भूरे) तरंगों वाले भी हैं जैसा कि कहा गया है –

वातत्विषो मरुतो वर्षानिर्णिजो यमा इव सुसदृश सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः।।
– *ऋग्वेद* 5.57.4

तथा अत्यन्त तेजस्वी समान रूप वाले और ये आकाश के समान व्याप्त हैं। तथा इनमें प्रकट होने कि शक्ति तथा अदृश्य होने की शक्ति भी है।

अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः।।
– *ऋग्वेद* 5.58.6

मरुद्गण ही हैं जो अपने तेज से मेघों की विद्युत को विस्तारित करते हैं।

उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः।
– *ऋग्वेद* 5.59.1

तथा वे अपने अश्वों (गतियों) से दूर तक गमन करते हैं। ये अपने शिर में किरणें धारण करके सूर्य की रश्मियों के समान विकिरण विसर्जित करते हैं।

---

[50] *ऋग्वेद*, 5.55.3

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः। शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये।।
– *ऋग्वेद* 8.7.25

ये मरुद्गण अपने हाथ में विद्युत शस्त्र को धारण करते हैं।

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः।।
– *ऋग्वेद* 7.56.13

इस मन्त्र में आभूषण के बारे में बतलाया गया है जो कि स्वर्ण से सुशोभित है, तथा विद्युत की तरह रोचमान है। यहाँ स्वधा शक्ति का वर्णन है जिसकी तुलना विद्युत से की गई है।

अगले मन्त्र में किरणों का वर्णन है –

गावश्चिद्धा समन्यव: सजात्येन मरुतः सबन्धवः। रिहते ककुभो मिथः।।
– *ऋग्वेद* 8.20.21

ये किरणें सजातीय समान क्रोध के साथ अपने गणों के साथ प्राच्यादि दिशाओं को प्राप्त करके परस्पर एक-दूसरे को शक्ति देती हैं (विपरीत स्वभाव की गति एक-दूसरे में बाधा उत्पन्न करती है, जबकि समान दिशा, समान गति एक-दूसरे को बल प्रदान करती है।)।

औषधियों के जानकार मरुद्गण

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः। यत्पर्वतेषु भेषजम्।।
– *ऋग्वेद* 8.20.25

ये मरुत नदी में, समुद्र में, पर्वत में, स्थित औषधियों को जानते हैं।

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे। अस्य सोमस्य पीतये।।
– *ऋग्वेद* 8.94.10

इस मन्त्र में कहा गया है कि मरुद्गण अत्यन्त तेजयुक्त तथा पावन शक्ति वाले चारों ओर से बलवान हैं। दसवें मण्डल के 77 और 78 सूक्त के "ऋषि स्यूमरश्मिभार्गव" जिसमें चुम्बकीय क्षेत्र और विद्युत प्रवाह क्षेत्र का विशेष वर्णन प्राप्त होता है। इन्हें यहाँ "चमकदार" कहा गया है जो कि "चुम्बकीय किरणों" को कहा जाता है। ये पृथ्वी और द्यौ से भी शक्तिशाली हैं।

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः।।
– *ऋग्वेद* 10.77.3

तथा इन्हें "रश्मिभिज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु।"[51], "अग्निर्न ये भ्राजसा"[52] "अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः"[53] अग्नि के समान चमकदार तथा अग्नि के समान तेजस्वी कहा गया है।

तथा इन्हें रोगों को नष्ट करने वाला भी कहा गया है।

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन्।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे।।
– *ऋग्वेद* 10.78.7

उषा की रश्मि की तरह अध्वरश्रिय है अर्थात् हिंसारहित है जो कि कल्याण करने वाली है। यहाँ X-ray, को लिया जा सकता है। ये दूरगामी होते हैं। उषा रूप में यहाँ जिस शक्ति की बात हो रही है वह शक्ति रोगों को दूर करने वाली है।

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक्।।
– *ऋग्वेद* 1.167.3

इन मरुद्गणों के पास विद्युत के समान चमकदार तलवार छिपी रहती है जो कल्याण के लिए विशेष आवश्यकताओं में प्रकट होती है। इसलिए इन्हें गुह्यरूप से अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला कहा जाता है।

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या।।
– *ऋग्वेद* 1.167.5

ऊपर्युक्त मन्त्र से तात्पर्य है कि विद्युत इन मरुद्गणों में आकर समाहित हो जाती है अर्थात् अपना स्वामी मान लेती है। जब ये अन्तरिक्ष (नभ) से आते हैं तब सूर्य के समान तथा सूर्य की गति से विविध दीप्तियों के साथ अनुगमन करती है।

उपसंहार

वेदों में प्राप्त मन्त्रों का दृष्टिकोण देखें तो मानो सम्पूर्ण रहस्य व विज्ञान की एकमात्र बात करता है। हज़ारो-लाखों वर्ष पूर्व से ही वेद एकमात्र ज्ञान का आधार तथा मार्ग प्रशस्त करने वाले रहे हैं "श्रुति" कहती है "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"[54] अर्थात् वेद के अलावा और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वेदों में वर्णित देवता जो कि शक्ति-रूप में विद्यमान है उसमें से जो इन्द्र के सेनापति हैं मरुद्गण जो कि युद्ध का नेतृत्व करते हैं अर्थात् युद्ध में सबसे आगे रहकर अपना पराक्रम दिखाते हैं। उन मरुद्गणों का विश्लेषण करना अत्यन्त ही आवश्यक है; क्योंकि आज हम जिन वेदों की उपेक्षा कर रहें हैं वास्तव में वे ही हमारा मूल और अस्तित्व हैं। आज इस भारत-भूमि में वेदों के ज्ञान की उपेक्षा हो गई है जिसके कारण वेद में छिपे ज्ञान-विज्ञान को नहीं जान पा रहे हैं तथा हम भौतिक धरातल में उन्नति तो कर रहे हैं परन्तु वहीं वास्तविक सत्ता से विमुख भी हो रहें हैं। वेद

[51] *ऋग्वेद*, 1.77.5

[52] *ऋग्वेद*, 10.78.2

[53] *ऋग्वेद*, 10.78.3

[54] *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 3.5.8

त्रिकालाबाधित हैं, वे सत्य हैं, वे हमें इस लोक में रहते हुए तीनों सत्ताओं का ज्ञान कराते हैं। इनमें ज्ञान-विज्ञान की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इस शोध में वर्णित बल, कम्पन, गति, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत् चुम्बकत्व का वर्णन किया गया है। इनमें वह सब कुछ है जो विद्युत चुम्बकीय तरंगों व अन्य तरंगों के विषय में आज बताया जाता है। अतः आज इन वेद-मन्त्रों के माध्यम से हम ज्ञान-विज्ञान का विस्तार कर सकते हैं। और यह हमें शोध के माध्यम से करना होगा। आज वेदों के विज्ञान को पुनः स्थापित करना होगा। धीरे-धीरे Nasa तथा बड़े-बड़े institutes वेदों की ओर मुख कर रहे हैं इस शोध के माध्यम से मेरा भी उद्देश्य है कि वेदों में दिए गए ज्ञान-विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाया जा सके।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित विषविद्या

*खोकन माइति**

शोध-पत्र सार – प्राचीन काल से ही भारत तथा पूरे विश्व में विषविद्या विविध प्रकार से विकसित हुई है। सोलह हज़ार (16,000) ख़्रिस्ताब्द पूर्व से वर्तमान कालपर्यन्त यह विद्या बहुधारा में प्रवाहित हो रही है। प्राचीन सिन्धु सभ्यता में मंकशुड नाम के वृक्ष का विष के रूप में प्रयोग किया जाता था। *मनुस्मृति* के रचयिता आचार्य मनु ने शिशु-हत्या और नियम-विरुद्ध गर्भपात के लिए विष द्वारा सज़ा देने का विधान किया है। प्राचीन चीनी सभ्यता में भी गाउट (जोड़ों का दर्द) रोग के प्रतिकार के लिए मारिजुआना नाम के विष-वृक्ष का उपयोग हुआ करता था। तीन हजार ख़्रिस्ताब्द पूर्व तक मिस्र सभ्यता में विषमिश्रित बाण का प्रयोग किया जाता था। वैदिक युग में विषमिश्रित बाण के प्रयोग का प्रमाण *अथर्ववेद* में मिलता है। यहाँ स्थावर विष को ही सभी प्रकार के विष का स्रोत स्वीकार किया गया है। बाद में *चरक संहिता*, *सुश्रुत संहिता*, *अग्नि पुराण*, *भविष्य पुराण*, *गरुड़ पुराण*, *अष्टाङ्गहृदय*, *काश्यपीय संहिता*, *हारीत संहिता*, *भावप्रकाश*, *भैषज्यरत्नावली*, *कौटिल्य अर्थशास्त्र*, *माधवनिदान*, *कामन्दकीय नीतिसार*, इत्यादि ग्रन्थों में विविध प्रकार के विष तथा उसके प्रतिकार के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में *कौटिलीय अर्थशास्त्र* में वर्णित विष के विषय में आलोचना की जाएगी।

शब्दकूट – विषभेद, विषगुण, शीघ्रप्राणहारी विष, आशुमृतक परीक्षा, विषज्ञान, विषप्रतिकार।

भूमिका

भारत के इतिहास में आचार्य कौटिल्य का व्यक्तित्व एक पारंगत राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकाशित है। कौटिल्य जिस प्रकार भारत के राजनैतिक इतिहास में प्राज्ञ ब्राह्मण तथा विचक्षण मन्त्री के रूप में अमर हैं उसी प्रकार से अपने अद्भुत ग्रन्थ *अर्थशास्त्र* की रचना के कारण भी हैं। कौटिल्य के व्यक्तिगत जीवन के बारे में हम अधिक नहीं जानते। *अर्थशास्त्र* के अन्त में उन्होंने अपने बारे में कहा है कि – जिसने क्रोधवश शस्त्र, शास्त्र, तथा नन्द राजा द्वारा शासित पृथिवी का उद्धार किया वही इस *अर्थशास्त्र* नामक ग्रन्थ का प्रणेता है[1]। उनका प्रसिद्ध नाम कौटिल्य और उनका लोकविश्रुत नाम चाणक्य है। वे चणक के पुत्र हैं इसलिए उनका नाम चाणक्य और राजनीति में कुटिल कुशलता के कारण वह कौटिल्य हैं। यह दो नाम उनकी उपाधि है न कि पितृप्रदत्त नाम। कौटिल्य का वास्तविक पितृप्रदत्त नाम है विष्णुगुप्त। कौटिल्य का यह नाम सबसे पहले आचार्य कामन्दक के *नीतिसार* में उपलब्ध होता है। कामन्दक ने लिखा है कि कौटिल्य ही *अर्थशास्त्र* के प्रणेता थे और उन्होंने ही नन्दवंश का उन्मूलन करके मौर्यवंश की स्थापना की थी[2]। कौटिल्य ने अपने *अर्थशास्त्र* में उसके पूर्ववर्ती अट्ठाइस या उनतीस अर्थशास्त्रकारों का उल्लेख किया है। पूर्ववर्ती सभी अर्थशास्त्रकारों का सिद्धान्त जो आज अनुपलब्ध है उन सभी का निष्कर्ष कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में मिलता है। संस्कृत साहित्य के कवियों तथा ग्रन्थकारों की रचना में *अर्थशास्त्र* का प्रभूत प्रभाव परिलक्षित होता है। ख़्रिस्तपूर्व प्रथम शतक में विद्यमान कालिदास के काव्यों से प्रारम्भ कर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णुशर्मा, विशाखदत्त, बाणभट्ट प्रभृति महाकवि, स्मृतिकार, गद्यकार तथा नाट्यकारों की रचनाओं में *अर्थशास्त्र* का प्रभाव

---

* Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <maitykhokan45@gmail.com>

[1] येन शास्त्रं च शस्त्रं नन्दराजगता च भूः। अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्।। – *अ॰शा॰* 15.180.1

[2] नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्र महादधेः। य उद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे।। – *नीतिसारः* 1.6

दिखता है। इससे इस ग्रन्थ की सार्वभौमिकता का पता चलता है। *अर्थशास्त्र* में विविध विषयों को विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। जैसे — राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति, कार्यनीति, प्रशासन-व्यवस्था, न्यायालय, दण्ड-व्यवस्था, सामाजिक रीति, विवाह, कर-व्यवस्था, अमात्य नियुक्ति, इत्यादि। *अर्थशास्त्र* के अधिकांश विषय राजा तथा प्रजा के लिए हितकारक हैं। राज्य को सम्यक् रूप से परिचालन करने के लिए *अर्थशास्त्र* के नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। *अर्थशास्त्र* में निबद्ध यह नियम न केवल प्राचीन काल में अपितु वर्तमान काल में भी विशेष प्रासङ्गिक है। वर्तमान काल में भी राज्य सञ्चालन में अर्थशास्त्रोक्त नियमों का पालन किया जाता है। राज्य की प्रजाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ही भगवान् ने राजा का सृजन किया था[3]। शत्रु सेनाओं से अपनी तथा राज्य की सुरक्षा के लिए जैसे वेदादिशास्त्र ज्ञान तथा नीति ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार दण्डनीति के गुप्त प्रयोग के लिए तथा बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से राज्य की रक्षा के लिए विषविद्या का ज्ञान अपरिहार्य है; अन्यथा राजगृह के गृहशत्रु के द्वारा या शत्रु राजा द्वारा प्रेरित शत्रु के द्वारा राजा का अनिष्ट हो सकता है। साथ ही साथ राज्य की सभी प्रजाओं का भी विनाश हो सकता है। अतः शत्रु राजा के विनाश के लिए तथा शत्रु-सैन्य के विनाश के लिए विविध प्रकार के विष का प्रयोग करके राजा अपने राज्य को सुरक्षित कर सकता है। इसीलिए आचार्य कौटिल्य ने अपने *अर्थशास्त्र* में विविध विषयों के साथ विषविद्या का भी प्रतिपादन किया है। इसमें शत्रु-सैन्य के प्रति प्रयोग के लिए विविध प्रकार के विषों का उल्लेख किया गया है और साथ ही यदि राज्य में विषक्रिया हो जाए तो उसके प्रतिकार के विषय में भी विधान किया गया है।

विष

"विष्लृ व्याप्तौ" (*जु.उ.स.*) अर्थ में अथवा "विष् विप्रयोगे" (*क्र्या.प.अ.*) अर्थ में धातु के उत्तर "इगुपध...." (*पा.* 3.1.165) सूत्र से क प्रत्यय होकर "विषः" (पुंलिङ्ग) अथवा "विषम्" (क्लीवलिङ्ग) सिद्ध होता है। *अमरकोष* 1.8.9 में इसके पर्यायवाची "क्ष्वेड" तथा "गरल" शब्द मिलते हैं। *अमरकोष* के अनुसार विष के नौ भेद होते हैं – काकोल, कालकूट, हलाहल, सौराष्ट्रिक, शौक्लिकेय, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, दारद, वत्सनाभ[4]। *राजनिघण्टु* में भी विष के पर्याय में आहेयम्, अमृतम्, गरदम्, कालकूटम्, कलाकूलम्, हारिद्रम्, रक्त शृङ्गिकम्, नीलम्, गरम्, घोरम्, हालाहलम्, हलाहलम्, शृङ्गी, भूगरम् शब्द प्राप्त होते हैं[5]।

विषभेद

विष दो प्रकार के होते हैं – स्थावर और जङ्गम। स्थावर विष के दस आश्रय होते हैं और जङ्गम विष के सोलह[6]। जो विष स्थिर रूप से एक ही जगह रहता है उसे स्थावर विष कहते हैं। अर्थात् जो विष वृक्ष, पत्थर आदि में रहता है वह स्थावर विष है। *सुश्रुत संहिता* में स्थावर विष के दस अधिष्ठानों के बारे में बताया गया है जैसे – मूल (root), पत्र (leaf), फल (fruit), पुष्प (flower), त्वक् (bark), क्षीर (milk), सार (pith), निर्यास (gum), धातु (minerals), कन्द (bulb)[7]। ये सभी विष वृक्ष से ही प्राप्त होते हैं। इनमें से मूल-विष के आठ भेद, पत्र-विष के पाँच भेद, फल-विष के बारह भेद, पुष्प-विष

---

[3] रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः – *मनुस्मृतिः* 7.3

[4] पुंसि क्लीबे च काकोलकालकूटहलाहलाः। सौराष्ट्रिकः शौक्लिकेयो ब्रह्मपुत्रः प्रदीपनः।
दारदो वत्सनाभश्च विषभेदा अमी नव। – *अमरकोषः* 1.8.10

[5] राजनिर्घण्टः – *शब्दकल्पद्रुमः*

[6] स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते। दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम्।। – *सु.सं.*, कल्पस्थानम् 2.1

[7] मुलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरमं सार एव च। निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः।। – वही 2.2

के पाँच भेद, त्वग्विष के सात भेद, दुग्ध-विष के तीन भेद, धातु-विष के दो भेद, कन्द-विष के तेरह भेद होते हैं। इसी प्रकार *सुश्रुत संहिता* (कल्पस्थानम् 2.3-10) के अनुसार स्थावर विष के पचपन भेद होते हैं। चलने-फिरने में सक्षम, चैतन्ययुक्त प्राणियों में विद्यमान विष को जङ्गम विष कहते हैं। यह विष साँप, कीट, वृश्चिक, लूता आदि में पाया जाता है। इस विष के सोलह अधिष्ठान होते हैं, जैसे – दृष्टि (sight), निःश्वास (breath), दंष्ट्रा (fangs), नख (nail), मूत्र (urine), पुरीष (stool), शुक्र (semen), लाला (लार/saliva), आर्तव (menstrual), मुखसन्दंश (stings), विशर्द्धित (flatus), गुदा (beak), अस्थि (bones), पित्त (bile), शुक (bristles), शव (dead body)[8]।

विष के गुण

सभी प्रकार के विष के दस गुण होते हैं। कुशल वैद्य के लिए इन सभी गुणों का ज्ञान होना आवश्यक है। वे दस प्रकार के गुण हैं – रुक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायि, विकाशि, विशद, लघु, तथा अपाकी[9]। विष के रुक्ष गुण के कारण वायु, उष्ण गुण के कारण पित्त और रुधिर कुपित होता है। तीक्ष्ण गुण के कारण प्राणी अचेतन होता है और शरीर का बन्धन शिथिल होता है। सूक्ष्म गुण के कारण विष छिद्रों द्वारा शरीर में प्रवेश करके विकार पैदा करता है। आशु गुण शरीर को शीघ्र नष्ट करता है। व्यवायि गुण के कारण विष शरीर में व्याप्त होता है। विकाशि गुण के कारण शरीर के धातु और मल का विनाश होता है। विशद गुण शरीर को शक्तिहीन करता है। लघु गुण अल्पभारयुक्त होता है और यह चिकित्सा के अयोग्य होता है। अपाकी गुण विष को पाचन में अयोग्य बनाता है। यह शरीर में दीर्घकाल तक रहता है तथा पीड़ा देता है (*सु॰सं॰*, कल्पस्थानम् 2.25-28)।

भारत तथा विश्व में विषक्रिया के कारण हुई घटनाएँ[10]

Time Period	*Event*
16000 BCE	Hunter used aconite poison to kill animal in Kenya.
Indus Valley civilization (3250–2000 BCE)	Orpiment and *Aconitum napellus* was used for assassination.
3102 BCE	Manu prescribed punishment for poisoning infanticide and illegal abortion.
3100–3000 BCE	People in Egypt used poisoned arrows.
2737 BCE	Marijuana was used to treat gout in China.
2000 BCE	Chinese Emperor Shen Nung experimented with poison.
1600 BCE	The Smith Papyrus cites the use of charms against snake poison.

Contd.

[8] तत्र दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्रानखमूत्रपुरीषशुक्रलालार्तवमुखसंदंशविशर्द्धितगुदास्थिपित्तशूकशवानीति। – *सु॰सं॰*, कल्पस्थानम् 3.2

[9] रुक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च। विकाशि विशदं चैव लघ्वपाकि च तत्स्मृतम्।। – वही 2.24

[10] Sourav Ballav, Gopendra Chandra Kamal, Puneshwar Keshari, Aswini Kumar S. Bharati, *Evolution of "Agadatantra": Forensic Medicine and Toxicology of Indian System of Medicine – A Review*, www.ijapc.com, e-ISSN – 2350-0204.

Time Period	*Event*
1200–900 BCE	*Atharvaveda* mentions the use of poisoned arrows in war. *Sthāvara viṣa* (irritant plant toxin) were mentioned as the major source of poisoning.
700 BCE	Father of Indian medicine Caraka discovered a number of antitoxic formulations like; snake envenomation antidote; acute and chronic alcohol intoxication; use of emesis and purgation for reducing the absorption of poison. He used lower grade animal for experimental toxicology.
600 BCE	The Indian physician Kaśyapa was able to cure snakebite envenomation.
300-200 BCE	Father of Indian surgery Suśruta defined *agada tantra*, a term akin to the modern term "toxicology" and classification of poison, antidotes, diagnostic touchstone of intoxication and medical ethics. He delineated orpiment and realgar as metal poison.
460 BCE	Hippocrates suggested managing poisoned patients by limiting the absorption of poison.
399 BCE	Socrates was executed by hemlock (*Conium maculatum*) poison.
384–322 BCE	Aristotle described the preparation and use of poisonous arrow.
350–275 BCE	Indian philosopher Kauṭḷiya (chief advisor and prime minister of the Indian emperor Candragupta and professor of political science and economics at the University of Taxila) introduced fingerprint technique (*trija*) and postmortem examination in case of death of all cases of poisoning asphyxia death.
183 BCE	Hannibal took his own wife by taking cyanide.
132–63 BCE	Mithridates VI developed antidote "Mithridatum".
54 CE	Locusta, one of the most famous prisoners of all time, was hired by Agrippina, Nero's mother to poison claudius, her husband and Nero's stepfather, with poisonous mushrooms. Some version assert that the poison used was arsenic.
55 CE	Locusta was murdered by soup containing arsenic.
Age of arsenic (fifteenth-eighteenth centuries)	Arsenic (ideal homicidal poison) was favourite choice of all assassination creeds because during this period there was no scientific test to detect arsenic poisoning.
1492–1541 CE	Paracelsus (*Philippus aureolus theophrastus von hehenheim*) developed the experimental toxicology model.

Contd.

Time Period	*Event*
1534 CE	Pope Clement VII was assassinated with poisonous mushrooms.
September 1613	Somerset murdered poet Sri Thomas Overbury on Tower of London.
1666 CE	A number of American soldiers died in accidental poisoning with Thornapple (*Daturastramonium*).
1630-76 CE	Marquise de Brivilliers murdered her father, mother, brothers, and more than fifty hospital patients by using arsenic.
14 August 1751	Mary Blandy murdered her father with arsenic.
1730–1805 CE	Felice Fontana discovered snake venom glands and obtained snake venom which he used for a experimental toxicology with animals.
1769 CE	Secundus designed outline of stomach pump.
1773 CE	Scheels discovered mechanism of poisons adsorption by charcoal.
1787–1853 CE	Mathieu Orlifia (Father of Modern Toxicology) created new techniques and refined existing toxin analysing techniques.
1794–1846 CE	James Marsh Invented the Marsh test for detecting arsenic.
1805 CE	Philip Syng Physick (the father of American Surgery) used Secundus designed stomach pump for gastric lavage in a case of accidental opium poisoning.
1813 CE	French chemist M. Bertrand discovered charcoal antidotal effect against arsenic trioxide.
1822-27 CE	India's first modern medicine medical college was established in Kolkata and then in the year of 1827 first Āyurveda institution started in Government Sanskrit College, Kolkata.
1836 CE	First Academic autopsy conducted in Kolkata by legendary Dr Madhusudan Gupta resident of district Hooghly, State of West Bengal.
1840-42 CE	Henry Burton described clinical sign blue line on the gums (Burton line or Burtonian line) in chronic lead poisoning patients. Hugo Reinsch invented Reinsch's test to detect arsenic and its compounds in the year of 1842.
1851 CE	"The Arsenic Act" was passed by the United Kingdom Parliament during the reign of Queen Victoria to regulate sell of arsenic and homicides.
1870 CE	Adolf Leiben discovered iodoform test for alcohol. It also called the lieben haloform reaction test.

Contd.

Time Period	*Event*
1892-97 CE	Hem Chandra Bose and Azizul Haque developed fingerprint classification system with their supervisor Sir Edward Richard Henry in Kolkata. The Henry classification system, co-devised by Haque and Bose was accepted in England and Wales when the first United Kingdom Fingerprint Bureau was founded in Scotland Yard, the Metropolitan Police headquarters, London in 1901.
1906 CE	Nicolux prescribed the method of determination ethyl alcohol level in blood and urine with the photoelectric colorimeter.
1910 CE	Russian botanist Mikhail Semyonovich Tsvet invented chromatography; latter it was used for detection of poison.
1916-56 CE	Second Ayurveda medical college was established in Kolkata in 1916 to teach *viṣa tantra* (toxicology) and *agada* (Āyurvedic – antidote) first in the century. As per CCIM data-base the college known today by the name "J.B. ROY State Ayurvedic Medical College". The Drugs and Cosmetics Act was passed in the year of 1940 in India. Methylmercury poisoning (Minamata disaster) in the year of 1956 at Japan.
1958 CE	"Kerala food-poisoning tragedy" in India, more then 100 died; 1,000 people were poisoned wih parathion (parathion-ethyl).
1966-68 CE	Raman Raghav (serial killer) killed more than forty-one victims in Mumbai.
1957-76 CE	Charles Sobhraj (the bikini killer) murdered more than ten victims in Thailand, Nepal, India, and Malaysia.
7 September 1978 CE	Georgi Markov was assassinated on a London street via a pellet containing Ricin.
1978 CE	The cult leader of the Peoples Temple; Jim Jones more than 900 followers in a mass suicide via cyanide (Jonestwon Massacre).
1984 CE	Bhopal Disaster or Bhopal gas tragedy occurred on night 2-3 December 1984 at the Union Carbide India Limited (UCIL) pesticide plant in Bhopal, India. Over 5,00,000 people were exposed to Methyl Isocyanate gas and other chemicals. Three thousand seven hundred eighty-seven deaths related to the gas release; the gas leak caused 5,58,125 injuries, including 38,487 temporary partial injuries and approximately 3,900 severely and permanently disabling injuries. Eight thousand died within two weeks and another 8,000 or more have since died from gas-related diseases.

Contd.

Time Period	*Event*
1994-96 CE	Establishment of the National Poisons Information Centre at the All India Institute of Medical Science, New Delhi in December 1994. Sukhiwinder Singh Dhillon murdered five victims for their insurance money with strychnine in India and Canada in 1995-96.
1999–2007 CE	Mallika also known as Cyanide Mallika, first Indian women serial killer, killed six women by using cyanide in Bangalore, India.

अर्थशास्त्र के अनुसार विष वर्ग

अर्थशास्त्र के अनुसार कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, मेष शृङ्ग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविषम्, वेल्लितक, गौराद्र, बालक, मार्कट, हैमवत, कालिङ्ग, दारदक, अङ्कोलसारक, कुष्ट्रक ये सोलह विष विष वर्ग में आते हैं[11]।

सद्यःप्राणनाशक विष

चित्रभेक (एक प्रकार के मण्डूक/a kind of frog), कौण्डिन्यक (कीटभेद/a kind of insect), कृकणक (एक प्रकार के पक्षी या कीट/a kind of bird or insect), पञ्चकुष्ठ (कुष्ठवृक्ष नामक वृक्ष के पाँच अंश – त्वक, पत्र, पुष्प, फल, मूल/*Saussurea costus*) और शतपदी (centipedes), इन सभी का चूर्ण; उच्चिदिङ्ग (अल्पविषयुक्त एक प्रकार के कीट/a small venomous animal living in water), कम्बली (एक प्रकार के कृमि), शत (शतमूली/*Asparagus racemosus*), कन्द (bulb), इद्धम् (पलाशसमित्), कृकलास (lizard/*Lacertilia*) इन सभी का चूर्ण; गृहगोधा (house lizard), अन्धाहिक (*Monopterus cuchia*), कृकणक (a kind of bird/क्रकरः), पूतिकीट (stiking insect) और गोमारिका (एक प्रकार की औषधि) इन सभी का चूर्ण यदि भल्लातक (*Semecarpus anacardium*) तथा अवल्गुका (*Psoralea corylifolia*) इन दोनों के रस को एक साथ मिलाकर किसी को दिया जाए तो वह तत्क्षण प्राणघातक होता है। इन सभी को आग में जलाने से निकला हुआ धुआँ भी सद्यः प्राणनाशक होता है[12]। ऊपर कहे गए कीटों में से यदि एक को भी अग्नि के द्वारा दहन किया जाए और उसका धुआँ घ्राण के माध्यम से शरीर में प्रवेश करे तो वह प्राणी के शरीर को सुखा देता है। यदि यह कृष्णसर्प (a very venomous black serpent) तथा प्रियङ्गु (*Callicarpa macrophylla*) द्वारा संयुक्त होता है तो वह सद्यःप्राणहारी बन जाता है[13]।

शत (शतावरी/*Asparagus racemosus*), कर्दम (यक्षकर्दम/केसर, घृतम्, कर्पूर, कस्तूरी, चन्दन), उच्चिदिङ्ग (अल्पविषयुक्त कीटभेद/a small venomous animal living in water, a crab), करवीर (*Nerium indicum*), कटुतुम्बी (*Lagenaria siceraria*/calabash or bottleguard or bitterguard) और मत्स्य (any fish) इन सभी का धूम यदि मदन (*Datura stramonium*) तथा कोद्रव (*Paspalam scromonium*) के

---

[11] कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितकगौरार्द्रबालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकाङ्कोलसारकष्ट्रोकादीनि विषाणि। – *अ*॰*शा*॰ 2.33.17

[12] चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकम्बलिशतकेन्दध्मकृकलासचूर्णं गृहगौलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गुकारसंयुक्तं सद्यःप्राणहरमेतेषां वा धूमः। – *अ*॰*शा*॰ 14.177.1

[13] कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रिङ्गुभिः। शोषयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः।। – वही

पलाल के साथ या फिर हस्तिकर्ण (*Leea macrophylla*) तथा पलाश (कच्चोरम्) इन दोनों के पलाल के साथ मिलाकर जलाने पर उसका धुआँ जहाँ तक फैलता है वहाँ तक प्राण घातक होता है[14]।

कबूतर (pigeon/*Columba*), प्लवक (पक्षी का प्रकार/a kind of bird), क्रव्याद (hawk/*Buteo*), हाथी (elephant/*Elephantidae*), और मनुष्य (human/*Homo sapiens*) इन सभी का मूत्र तथा विष्ठा; कासीस (green sulphate of iron), हिङ्गु (asafoetida/*Ferula-assa-foetida*), यवतुष (husk of *Hordeum vulgare*), तण्डुल (चावल/rice), कार्पासबीज (seed of cotton), कूचजबीज (seed of *Nerium antidysentericum*), कोशातकिबीज (seed of *Luffa pentandra*), गोमूत्रिका (तृणभेदः/a kind of grass), भाण्डीमूल (*Hydroeotyle morunga*), निम्ब (*Azadirachta indica*), शिग्रु (*Moringa oleifera*), फणिज्ज (*Citrus limon*), काक्षीव (*Moringa hyperanthera*), पीलुक (*Salvadora persica*) इन सभी वृक्षों का वल्कल तथा सर्प (snake/*Serpentes*) और शफरी (a kind of fish) का चर्म तथा हस्तिनख (powder of nails and tusk of an elephant) इन सभी का चूर्ण यदि मदनपलाल (*Ceratocaula jack*) और कोद्रवपलाल (*Paspalum scrobiculatum*) के साथ या फिर हस्तिकर्णपलाल (*Leea macrophylla*) और पलाशपलाल (*Butea monosperma*) के साथ मिलाकर धूम उत्पादन करते हैं तो वह धूम जहाँ तक फैलता है वहाँ तक प्राणिकुल का विनाश करता है[15]।

शाल्मली (*Bombax ceiba*), विदारी (*Pueraria tuberosa*), धान्य (*Oryza sativa*) इन सभी के द्वारा सिद्ध, मूल (*Piper longum*) और वत्सनाभ (विष का प्रकार) से संयुक्त तथा चचुन्दरी (the musk rat) के रक्त से लिप्त बाण यदि निक्षेप किया जाए तो वह बाण जिसका भेदन करता है वह व्यक्ति अन्य दस व्यक्तियों को काटता है। ऐसे विषयुक्त सभी पुरुष अन्य दस-दस पुरुषों को दंशन करते हैं। इस प्रकार समस्त शत्रुदल का नाश हो जाता है[16]।

भल्लातक (*Semecarpus anacardium*), यातुधान (राक्षस शब्द से प्रसिद्ध औषधि विशेष), अपामार्ग (*Achyranthes aspera*) और बाण (*Terminalia arjuna*) इन सभी वृक्षों के पुष्प से सिद्ध और एलक (*Elettaria cardamomum*), अक्षि (विभीतक/*Terminalia bellirica*), गुग्गुल (*Commiphora wightii*) तथा हलाहल विष इन सभी का क्वाथ यदि मनुष्य (*Homo sapiens*) के रक्त या बस्त (*Capra aegagrus hircus*) के रक्त के साथ मिलता है तो एक दंशयोग अर्थात् विष निर्मित होता है। यह दंशयोग (विष) यदि मनुष्य के ऊपर प्रयुक्त होता है तो वह मनुष्य विषाक्त हो जाता है। उसके बाद वह मनुष्य दूसरे मनुष्यों को दंशन करता है और उनको भी विषाक्त कर देता है। इस प्रकार विष विस्तारित होता है और सभी शत्रुओं का विनाश हो जाता है[17]।

---

[14] शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवोते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति। – *अ॰शा॰* 14.177.1

[15] पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च वीजानि गोमूत्रकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीबपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति। – *अ॰ शा॰* 14.177.1

[16] शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चचुन्दरीशोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति, स विद्धोऽन्यान् दश पुरुषान् दशति। ते दष्टा दशान्यान् दशन्ति पुरुषान्। – वही

[17] भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तं दंशयोगः। – वही

उक्त कषाय (क्वाथ) तथा अर्द्ध-धरणिक के परिमाण से मापकर सक्तु[18] और पिण्याक[19] एक साथ मिलाकर किसी जलाशय में निक्षेप किया जाए तो एकशत धनु परिमाण जलाशय दूषित हो जाता है। उस जलाशय में मछलियाँ एक-दूसरे को काटती हैं तथा परस्पर स्पर्श से भी विषयुक्त हो जाती हैं। उस जलाशय के जल का पान करने या स्पर्श करने से भी मनुष्य विषदोष से व्याप्त हो जाते हैं[20]।

लाल सरसों (red mustard seed/*Brassica juncea*) और सफेद सरसों (white mustard seed/*Sinapis alba*) के साथ किसी गोधा को तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ महीने तक उष्ट्रिका नामक मृत्पात्र में भरकर भूमि के अन्दर रखा जाए और तीन पक्ष के बाद यदि किसी वध्यपुरुष द्वारा उस मृत्पात्र को भूमि से निकाला जाए तो उसको निकालने वाले पुरुष की दृष्टि मृत्पात्र पर पड़ते ही उसकी मृत्यु हो जाती है[21]।

आधे महीने (एक पक्ष) में प्राणनाशकारी विष

धामार्गव (*Luffa foetida*) और यातुधान (राक्षस नाम से प्रसिद्ध औषधि विशेष) इन दोनों की जड़ को यदि भल्लातक (*Semecarpus anacardium*) वृक्ष के चूर्ण के साथ मिलाकर किसी को पिलाया जाए तो अर्द्ध महीने के बाद उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है[22]।

एक महीने में प्राणनाशकारी विष

व्याघात (*Cassia fistula*) नाम के वृक्ष की जड़ और भल्लातक (*Semecarpus anacardium*) पुष्प के चूर्ण के साथ उपरोक्त (चित्रभेक, कौण्डिन्यक … आदि) में कहे गए किसी कीट को यदि आग में तप्त करके इस चूर्ण को मिला दिया जाए तो उसके पान करने से एक महीने में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है[23]। इस योग को प्राणी के अनुसार भिन्न-भिन्न मात्रा में देना चाहिए। मनुष्यों के लिए इस योग का कलामात्र,[24] गधों और घोड़ों के लिए इसका दोगुनी मात्रा में तथा हाथी और ऊँट के लिए चारगुना मात्रा में प्रयोग करना चाहिए[25]।

अन्धत्वजनक विष

पूतिकीट (sticking insect), मत्स्य (fish), कटुतुम्बी (a kind of bitter gourd), शत (शतावरी/*Asparagus racemosus*), कर्दम (यक्षकर्दम/केसर घृत, कर्पूर, कस्तूरी, चन्दन), इन्द्रगोप (red velvet mite/*Trombidiidae*)

---

[18] *Saktu* refers to a food preparation (powder of fried barley, *yava*) according to *Śatapatha Brāhmaṇa* XI.1.1.8.

[19] Oil cake – *Manusmṛti* 11.92: *Bhāgavata* 5.9.11

[20] ततोऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुश्शतायासमुदकाशयं दूषयति। मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दष्टाऽभिमृष्टा वा विषीभवति। यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा। – *अ.शा.* 14.177.1

[21] रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्ट्रिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत् पश्यति, तावन्मारयति। कृष्णः सर्पो वा। – वही

[22] धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः। – वही

[23] व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णं कीटयोगो मासिकः। – वही

[24] कला अल्पोंऽशः (टी॰गणपतिशास्त्रिणा), A small part of anything (Monier-Williams).

[25] कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम्। – वही

इन सभी के चूर्ण अथवा पूतिकीट (sticking insect), क्षुद्रा (कण्टकारी/*Solanum virgininnum*), हेम (*Datura stramonium*), विदारी (*Pueraria tuberosa*) इन सभी का चूर्ण यदि बकरी के सींग तथा खुर के चूर्ण के साथ मिलाकर धुँआ किया जाए तो वह धुँआ सभी प्राणियों में अन्धत्व पैदा करता है[26]।

पूतिरञ्जक का पत्ता (*Guilandina bonducella*), हरिताल (orpiment/*Arsenic sulfide*), मनःशिला (ruby sulpher/realgar), गुञ्जा (rosary pea/*Abrus precatorius*), रक्तकार्पास (the chaff of the seeds of red cotton tree/red cotton tree/*Bombax ceiba*) का पलाल इन सभी को आस्फोट (*Careya arborea*), काच (a type of salt), और गोबर (cow dung) में मिलाकर धुँआ उत्पन्न करें तो उस धुँए से प्राणियों में अन्धत्व पैदा होता है[27]।

सर्पनिर्मोक (snake shell), गोबर (cow dung), अश्वपुरीष (horse dung), अन्धाहिक (*Monopetrus cuchia*) का मस्तक, इन सभी को जलाने से जो धुँआ उत्पन्न होता है उससे भी प्राणियों में अन्धत्व पैदा होता है[28]।

काली (*Kali tamariskinum*), कुष्ठ (*Sassurea costus*), नड (*Arundo donax*) और शतावरी (*Asparagus racemosus*) इन सभी का मूल तथा सर्प (*Serpentes*), प्रचलाक (a peacock's tail), कृकणक (a kind of bird), पञ्चकुष्ठ (कुष्ठवृक्ष का त्वक्पत्रपुष्पफलमूल/*Saussurea costus*) इन सभी के चूर्ण के साथ यदि मदनपलाल (*Ceratocaula jack*) और कोद्रवपलाल (*Paspalum scrobiculatum*) अथवा हस्तिकर्णपलाल (*Leea macrophylla*) और पलाशपलाल (*Butea monosperma*) को मिलाकर धुँआ उत्पन्न किया जाए तो उस धुँए से सभी प्राणी अन्धे हो जाते हैं[29]। यह प्रयोग जनाकीर्ण युद्धक्षेत्र में या शत्रुदेश में कर सकते हैं। इस प्रयोग से पहले अपनी आँखों को तेजोनक से जरूर आच्छादित कर देना चाहिए। चन्दन (*Santalum album*) और सालावृक के रक्त (the blood of hyaena or wild dog) से तेजोनक बनता है।

शारिका (mynah/*Acridotheres tristis*), कपोत (pigeon/*Columba*), बक (herons/*Areidae*), बलाका (विषकण्डिका/a kind of small crane) इन सभी की विष्ठा यदि अर्क (*Calotropis gigatea*), अक्षी (वृक्ष के प्रकार/विभीतक के प्रकार/ *Terminalia bellirica*), पीलुक (*Salvadora persica*) और स्नुहि (*Euphorbia neriifolia*) इन वृक्षों के दूध के साथ मिलाकर अञ्जन करने मात्र से प्राणी अन्धे हो जाते हैं। इसके प्रयोग से जल भी विषाक्त हो जाता है[30]।

उन्मादकारक विष

जौ (berley/*Hordeum*) और शालिधान (कलमादि धान्य/*Oryza sativa*) की जड़, मदनफल (*Catunaregam spinosa*), जातिपुष्प (*Jasminum officinale*) के पत्र, और मनुष्य के मूत्र (urine of human) इन सभी को यदि

---

[26] पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बीशतकर्दमेध्मेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्रारालाहेमविदारीचूर्णं वा बस्तशृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः। – *अ॰शा॰* 14.177.1

[27] पूतिकरञ्जपत्रहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः। – वही

[28] सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः। – वही

[29] कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचालककृकणपञ्चकुष्ठचुर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रे शुष्कपलाले वा प्रणीतः संग्रामावतरणवस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतिकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः। – वही

[30] शारिकाकपोतबकबलाकालण्डमर्कािक्षपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदुषणं च। – वही

प्लक्षमूल (*Ficus rumphii*) तथा विदारीमूल (*Pueraria tuberosa*) के साथ मिलाकर, उदुम्बर (cluster fig/ *Ficus racemosa*), मदन (*Catunaregam spinosa*) और कोद्रव (*Paspalum scrobiculatum*) इन तीनों के क्वाथ को साथ मिला दिया जाए अथवा हस्तिकर्ण (*Leea macrophylla*) और पलाश (*Butea monosperma*) के क्वाथ के साथ मिला दिया जाए तो वह मदनयोग बन जाता है। इसको पिलाने से मनुष्यों को चित्तविभ्रम उत्पन्न हो जाता है[31]।

शृङ्गी (मत्स्य के प्रकार/*Heteropneustes fossilis*), गौतम वृक्ष (मेद नाम के वृक्ष/?), कण्टकारि (*Solanum jacquini*), मयूरपदी (औषधि के प्रकार) इन सभी के योग, गुञ्जा (*Abrus precatorius*), लाङ्गली (*Gloriosa superba/Eglaia odorata*), विषमूलिका (कालकूटादि), इङ्गुदी (*Balantes roxburghii*) इन सभी के योग, करवीर (*Nerium indicum*), अक्षि (विभीतक/*Terminalia bellirica*), पीलुक (*Salvadora persica*), अर्क (*Calotropis gigantea*), मृगमारणी (औषधिभेद) इन सभी के योग, यह सभी योग यदि मदन (*Catunaregam spinosa*) और कोद्रव (*Paspalum scrobiculatum*) के क्वाथ के साथ या हस्तिकर्ण (*Leea macrophylla*) और पलाश (*Butea monosperma*) के क्वाथ के साथ युक्त हो जाता है तो वह मदनयोग बन जाता है। इससे मनुष्यों के चित्त में उन्मत्तता उत्पन्न हो जाती है। इस योग से तृण, काष्ठ, और जल भी दूषित हो जाते हैं[32]।

कृकलास (lizard/*Lacertilia*), गृहगोलिका (house lizard) छिपकली/गृहगोधिका, अन्धाहिक (*Monopterus cuchia*) इन सभी के स्नायु को यदि आग में पकाकर धुँआ किया जाए तो उस धुँए से प्राणियों में अन्धापन तथा उन्माद उत्पन्न होता है[33]।

विविध रोगकारक विष

कृकलास (lizard/*Lacertilia*) और गृहगोलिका/गृहगोधिका/छिपकली (house lizard) इन दोनों का धुँआ कुष्ठ रोग को उत्पन्न करता है[34]। यह योग चित्रभेक (मेंढ़कविशेष/a kind of frog) की आँत और मधु के साथ मिलाने से प्रमेह रोग को उत्पन्न करता है[35]। पुनः यह योग यदि मनुष्य के रक्त के साथ मिलता है तो क्षय रोग को उत्पन्न करता है[36]।

दूषीविष (औषधद्युपहतवीर्यं विषम्), मदन (*Catunaregam spinosa*) और कोद्रव (*Paspalum scrobiculatum*) का चूर्ण यदि उपजिह्विका (a small ant burrowing in trees) के साथ मिलता है अथवा मातृवाहक (a kind of bird), अञ्जलिकार (औषधिभेद), प्रचलाक (a peacock's tail), भेक (*Rana temporaria*), अक्षि (विभीतक/*Terminalia bellirica*), पीलुक (*Salvadora persica*) इन सभी के साथ संयुक्त होता है तो इससे विषूचिका रोग (हैज़ा) उत्पन्न होता है।[37]

[31] यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगाः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः। – *अ॰शा॰* 14.177.1

[32] शृङ्गिगौतमवृक्षकण्ठकारमयूरपदीयोग गुञ्जालाङ्गलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः। समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः। – वही

[33] कृतकण्डलकृकलासगृहगौलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति। – वही

[34] कृकलासगृहगौलिकायोगः कुष्ठकरः। – वही

[35] स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति। – वही

[36] मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम्। – वही

[37] दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विषूचिकाकरः। – *अ॰शा॰* 14.177.1

पञ्चकुष्ठ (कुष्ठ वृक्ष का त्वक्, पत्र, पुष्प, फल, मूल/*Saussurea costus*), कौण्डिन्यक (कीटभेद/a kind of insect), राजवृक्ष (*Cassia fistula*), और पुष्पमधु (मधूक/*Flower honey*) इन चारों का योग ज्वर उत्पन्न करता है।[38] भास (शकुन्त नाम के पक्षी विशेष), नकुल (mongoose/*Herpestidae*), जिह्वा (*Rubia cordifolia*) और ग्रन्थिका (*Piper longum*) इन सभी के योग को यदि गर्दभ के दुग्ध के साथ पीसकर किसी को पिलाया जाए तो वह एक या अर्द्ध महीने के अन्दर मूक तथा बधिर हो जाता है।[39] इस योग की मात्रा का भी आचार्य कौटिल्य ने निर्देश किया है। मनुष्यों के लिए यह योग एक कला के परिमाण, घोड़े और गधे के लिए उसका दोगुना परिमाण, हाथी और ऊँट के लिए चारगुना परिमाण प्रयोग करने का निर्देश प्राप्त होता है।[40] इससे भिन्न मात्रा के प्रयोग से विकृति हो सकती है।

विष की पहचान

आचार्य कौटिल्य ने राजा और सामान्य मनुष्यों को विष से रक्षा करने के लिए विविध उपाय के बारे में वर्णन किया है। विष देखकर या विष की आशंका होने पर पशु-पक्षियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया होती है। उन सभी प्राणियों की प्रतिक्रिया देखकर विष का अनुमान कर सकते हैं। यदि वस्त्र, अन्न, सूप, यूष, आर्द्रद्रव्य, धातु इन सभी में विष हो तो उसका अनुमान कैसे करें इस विषय में कौटिल्य ने जो कहा है उसकी चर्चा नीचे की गई है –

विष की आशंका में पक्षियों की प्रतिक्रिया – यदि अन्नादि में विष रहता है तो तोता (parrots), मैना (myna), भृङ्गराज (greater racket/tailed drongo) ये सभी पक्षी उच्च्य स्वर में चिल्लाने लगते हैं।[41] क्रौञ्च पक्षी विष देखकर, विष का घ्राण करके या विष के समीप आने पर विह्वल हो जाते हैं।[42] जीवञ्जीवक (a kind of common myna) नामक पक्षी खिन्न हो जाते हैं[43]। विष देखकर कोयल मर जाती है[44] और चकोर पक्षी की दोनों आँखें लाल रंग की हो जाती हैं[45]।

विषमिश्रित अन्न का ज्ञान – यदि किसी शत्रु द्वारा अन्न में विष मिश्रित किया गया हो तो उस विषमिश्रित अन्न का ज्ञान होना आवश्यक है, अन्यथा अज्ञानवश उस अन्न के भोजन से मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए राजा को भोजन देने से पहले अन्न का परीक्षण अवश्य करना चाहिए। विषमिश्रित अन्न का ज्ञान कैसे कर सकते हैं इस विषय को आचार्य कौटिल्य ने बताया है। यह उपाय अत्यन्त सरल और आज भी उपयोगी है। विषमिश्रित अन्न को अग्नि में निक्षिप्त करने से अग्नि की शिखा और धुँआ नील वर्ण का हो जाता है साथ में अग्नि से चट-चट शब्द आने लगता है। विषयुक्त अन्न का वाष्प मयूर की ग्रीवा के समान होता है। विषमिश्रित अन्न जल्द ही ठण्डा पड़ जाता है। उस अन्न को हाथ में लेकर रगड़ने से अन्न विवर्ण हो जाता है।

---

[38] पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः। – वही

[39] भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकवधिरकरो मासार्धमासिकः। – वही

[40] कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण। – वही

[41] शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशोति। – वही

[42] क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यतिः। – वही

[43] ग्लायति जीवञ्जीवकः। – वही

[44] म्रियते मत्तकोकिलः। – वही

[45] चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। – वही

पकाने के बाद भी वह अन्न अर्द्धपक्व रह जाता है[46]। यदि इस प्रकार से विष का ज्ञान नहीं हो रहा हो तो राजा को भोजन देने से पहले पक्षी आदि अन्य प्राणियों को वह भोजन देना चाहिए।

विषमिश्रित सूपादि का ज्ञान – सूपादि में यदि विष रहता है तो वह शीघ्र शुष्क हो जाता है। यदि उस सूप को अग्नि में निक्षेप किया जाए तो तक्र आदि की तरह उसमें गाढ़त्व दिखाई देता है। उसका झाग श्याम वर्ण का और विच्छिन्न होता है। उस सूप के गन्ध-स्पर्श-रूपादि का भी नाश हो जाता है[47]।

विषमिश्रित यूषादि का ज्ञान – यूष में यदि विष मिश्रित हो तो उसका रंग परिवर्तित हो जाता है। वह यूष जल में घुलता नहीं है। उसके ऊपर रेखाएं दिखने लगती हैं[48]। यदि घृत, तैल प्रभृति पदार्थ में विष रहता है तो उसके ऊपर नील वर्ण की रेखाएं दिखने लगती हैं। दुग्ध में ताम्र वर्ण की रेखाएं दिखाई देती हैं। जल में या सुरा में विष हो तो उसमें कृष्ण वर्ण की रेखाएं, दही में श्याम वर्ण की रेखाएं और मधु में श्वेत वर्ण की रेखाएं दिखाई देती हैं[49]।

आर्द्र द्रव्य में विष का प्रभाव – आम, अनार आदि फल में विष रहने से वे संकुचित और अतिपक्व हो जाते हैं। आग में पकाने से उनका रंग काला तथा भूरा हो जाता है[50]।

शुष्क द्रव्य में विष का प्रभाव – शुष्क पदार्थ में विष होने पर उसको स्पर्श करने से वे चूर्ण और विवर्ण हो जाते हैं। शुष्क कठिन पदार्थ मृदु हो जाते हैं और मृदु पदार्थ कठिन हो जाते हैं[51]। विष के समीप विचरणरत सभी जीव मर जाते हैं[52]।

वस्त्र में विष का प्रभाव – वस्त्र में विष रहने से उसमें गोल-गोल धब्बे दिखाई देते हैं। तन्तु और रेशम के वस्त्र की रूई निकलने लगती है[53]।

धातु में विष का प्रभाव – सुवर्ण, रजत, स्फटिकमणि, आदि धातु विष के प्रभाव से अपनी आभा खो देते हैं। उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है[54]।

विषप्रदानकारी पुरुष का परिचय – विषप्रदानकारी पुरुष का चेहरा शुष्क हो जाता है। उसका शरीर और मुख का वर्ण परिवर्तित हो जाता है। उसके कथन में जड़ता दिखाई देती है, वह पसीने से भीग जाता है और उसके शरीर में कम्पन होने लगता है। मन में सन्देह के कारण वह दूसरे की बातें ध्यान से सुनता है। उसका अपने कार्य में मन नहीं लगता है[55]।

---

[46] अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। – *अ०शा०* 1.18.21

[47] व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथः श्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। – वही

[48] द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छयादर्शनं फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। – वही

[49] रसस्य मध्ये नीला राजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। – वही

[50] द्रवाणामार्द्राणामाशुप्रम्लानमुत्पक्वभावः क्वाखनीलश्यामता च। – वही

[51] शुष्कानामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां च कठिनत्वं च। – वही

[52] तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च। – वही

[53] आस्तरणप्रावराणां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। – वही

[54] लोहमणिमयानां पङ्कलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्च। – वही

[55] विषप्रदस्य तु शुष्कश्यामवक्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेशः कर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति। – वही

विषवैद्य के कार्य

वैद्य को औषधालय जाकर औषधि का परीक्षण करना चाहिए। उसके बाद औषधि को राजा के समीप लाकर औषधि का सामान्य अंश पाचक और पोषक को देकर स्वयं भी खाना चाहिए। उसके बाद उस औषधि को राजा को देना चाहिए। इसी प्रकार जल और मदिरा का भी परीक्षण करना चाहिए[56]। इसलिए राजा के साथ विषज्ञानी वैद्य का होना बहुत आवश्यक होता है जो राजा का भोजन, पानीय द्रव्य, औषधि इन सभी का परीक्षण करके राजा को सेवन करने के लिए दे।

विष से आशुमृतक का परीक्षण

आशुमृतक का परीक्षण कैसे करना है इस विषय में अर्थशास्त्रकार ने ही सबसे पहले बताया है। यदि सन्देहजनक रूप में किसी की मृत्यु हो जाती है तो उस मृतदेह का परीक्षण (post mortem) अवश्य ही करनी चाहिए। इसमें मृतक के शरीर में विभिन्न लक्षणों से मृत्यु के कारण का अनुमान किया जाता है। प्राचीन काल का यह विज्ञान वर्तमान चिकित्सकों के लिए आश्चर्य का कारण है। कौटिल्य द्वारा उक्त आशुमृतक के परीक्षण के विषय में यहाँ चर्चा करेंगे। जिसका हाथ, पैर, और नाखून काले रंग का हो जाता है, जिसके शरीर का मांस, चर्म और रोम शिथिल हो जाते हैं, मुख में झाग दिखाई देता हो उसकी विष से मृत्यु हुई है[57]। यदि इस अवस्था में पूर्वलक्षण के साथ शरीर में डसने का चिह्न हो अथवा दंशित स्थान से रक्तस्राव हो रहा हो तो उस व्यक्ति की साँप या किसी विषाक्त कीट के काटने से मृत्यु हुई है[58]। यदि मृतक के वस्त्र और शरीर बिखरे हुए दिखें, साथ ही मृत्यु से पहले अतिवमन और विरेचन के लक्षण दिखें तो मदनकर रस द्वारा उसकी हत्या की गई है[59]। यदि सन्देह हो तो मृतक के शरीर से आँतें निकालकर उस का परीक्षण करना चाहिए। यदि पेट में अन्न है तो लेख के पूर्व में दिए गए उपाय से अन्न को अग्नि में डालकर उसका परीक्षण करना चाहिए। यदि उदर में अन्न नहीं है तो उसके हृदय के अंशविशेष लेकर अग्नि में डालकर परीक्षण करना चाहिए, यदि अग्नि से चट-चट ध्वनि आती है या अग्नि की शिखा इन्द्रधनुष जैसी होती है तो विष के प्रयोग से उस व्यक्ति की हत्या की गई है यह समझना चाहिए[60]।

सर्पादि विषयुक्त प्राणियों को गृह से दूर रखने का उपाय

जीवन्ती (*Feaderia faetsda/Tinospora cordifolia*), श्वेता (*Aconitum ferox*), मुष्ककपुष्प (*Schrebera swietenioides*), और वन्दाका (*Epidendrum tesselatum*) इन सभी के पत्र तथा मूल और अक्षिवृक्ष में (*Moringa concanesis*), जात अश्वत्थ (*Ficus religiosa*) के पत्र के द्वारा निर्मित माला/मणि यदि घर में रखी जाए तो सर्पादि विषयुक्त प्राणी घर से दूर रहते हैं[61]।

---

[56] भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पातकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत्। पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम्। – *अ*.*शा*. 1.18.21

[57] श्यावपाणिपाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्माणं फेनोपदिग्धमुखं विषहतं विद्यात्। – *अ*.*शा*. 4.82.7

[58] तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात्। – वही

[59] विक्षिप्तवस्त्रगात्रमतिवान्तिविरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात्। – वही

[60] विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत्। हृदयादुद्धृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिटायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात्। दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा वा। – *अ*.*शा*. 4.82.78

[61] जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। – *अ*.*शा*. 1.15.20

विष का उपचार

श्लेष्मातक (*Cordia dechotoma*), कपित्थ (*Feronia limonia*), दन्ती (*Baliospermum montanum*), दन्तशठ (*Citrus limon*), गोजी (*Lycium barbarum*), शिरीष (*Albizia lebbeck*), पाटली (*Stereospermum chelonoiades*), वला (*Sida cordifolia*), स्येनाक (*Oroxylum indicum*), पुनर्नवा (*Boerhavia diffusa*), श्वेता (*Aconitum ferox*), वरण (*Crateva nurvala*) इन सभी वृक्षों के क्वाथ के साथ चन्दन (*Santalum album*) और शालावृक (*Hyaenidae*) का रक्त मिलाकर निर्मित तेजोनक द्वारा राजभोग्य स्त्री तथा सेना के गुह्यस्थान को साफ करवाना चाहिए। इसके द्वारा विष का प्रतिकार होता है। इस प्रकार से विजिगीषु राजा अपने पक्ष के ऊपर प्रयुक्त विष का प्रतिकार कर सकता है[62]।

प्रियंगु (*Callicarpa macrophylla*), मञ्जिष्ठा (*Rubia cordifolia*), तगर (*Valerina jatamansi*), लाक्षारस (*Kerria lacca*), हरिद्रा (*Curcuma longa*), मधुक (*Madhuca longifolia*) और क्षौद्र (honey) इन सभी के योग से निर्मित औषधि द्वारा रज्जुबन्धन, पानी में डूब जाना, विषवेग, प्रहार, उच्च स्थान से पतन आदि होने पर इसका सेवन करने से अचेतन पुरुष को चेतनता प्राप्त होती है[63]। प्रियंगु आदि इस योग को यदि स्वर्ण पात्र में रखकर उसकी मणि बनाकर धारण की जाए तो इससे सभी प्रकार के विष का नाश होता है[64]।

जीवन्ती (*Feaderia faetsda/Tinospora cordifolia*), श्वेता (*Aconitum ferox*), मुष्ककपुष्प[65] (*Schrebera swietenioides*) और वन्दाका (*Epidendrum tesselatum*) इन सबसे तथा अक्षिवृक्ष (*Moringa concanesis*) में जात अश्वत्थ (*Ficus religiosa*) से निर्मित मणि सभी प्रकार के विष का नाश करती है[66]। इस औषधि से लिप्त वाद्ययन्त्र के शब्द से भी विष का नाश होता है। इस औषधि से लिप्त ध्वज के दर्शन से भी मनुष्य विषशून्य हो जाते हैं[67]।

मदनदोष का प्रतिकार

पृषन्मृग (विन्दुचित्र मृगभेद), नेवला (mongoose/*Herpestidae*), मोर (*Pavo cristatus*) और गोधा (*Lacertilia*) इन सभी के पित्त तथा सरसों के चूर्ण से मिलित योग द्वारा मदनदोष का प्रतिकार होता है अर्थात् उन्मादकारी द्रव्यों द्वारा उत्पन्न हुए मदनदोष का प्रतिकार हो जाता है। सिन्धुवारित (*Vitex negundo*), वरण (*Crateva nurvala*), वारुणी (*Cynodon dactylon*), तण्डुलीयक (*Amaranthus spinosus*), शतपर्व (*Bambusa*) के अग्रभाग और पिण्डीतक (*Tamilnadia uliginosa*) इन सभी के योग से निर्मित औषधि से भी मदनदोष का प्रतिकार होता है[68]।

---

[62] स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरिषपाटलीबलास्योनाक पुनर्नवाश्वेतावरणक्काथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजोनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्याप्रक्षलनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतिकारः। – *अ.शा.* 14.179.4

[63] प्रियङ्गुमञ्जिष्ठातगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदकविषप्रहारपतननिःसंज्ञानां पुनःप्रत्यानयनाय। – वही

[64] रक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः। – वही

[65] कुत्रापि च मुष्ककं पुष्पं च भिन्नं मत्वा पुष्पमिति औषधिभेद उच्यते

[66] जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीबे जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः। – वही

[67] तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषविनाशनः। लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः।। – वही

[68] पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीरीजिचूर्णं सिन्धुवारितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डितयोगो मदनदोषहरः। – वही

सृगालविन्ना (*Uraria picta*), मदन (*Catunaregam spinosa*), सिन्धुवारित (*Vitex negundo*), वरण (*Crateva nurvala*) और वारणवल्ली (*Piper chaba*) इन सभी के या किसी एक के मूल से निर्मित कषाय के साथ दुग्ध मिलाकर पान करने से मदनदोष दूर होता है[69]।

कैडर्य (*Myrica esculenta*), पूति (पुतिकरंज/*Caesalipina bonduc*) और तिल (*Sesamum indicum*) इन तीनों के तेल को नाक में लगाने से या नस्य कर्म द्वारा उन्माद रोग का नाश होता है[70]।

उपसंहार

विष के प्रकोप से विश्व के अधिकतर प्राणी पीड़ित होते हैं। विष के दुष्प्रभाव से बचने के लिए प्राचीन काल से ही महर्षियों ने विष और उसके प्रतिकार के विषय में वर्णन किया है। इस क्रम में विष को नष्ट करने वाले भैषज्य का प्रयोग, अरिष्टादिबन्धन, मन्त्रप्रयोग आदि का प्रयोग किया जाता था और सफल परिणाम भी मिलते थे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ यदि प्राचीन भारतीय उक्त उपचारों का वैज्ञानिक सम्मिश्रण किया जाए तो अवश्य ही अद्भुत फल प्राप्त होगा यही इस शोध-लेख का उद्देश्य है।

---

69 सृगालविन्नामदनसिन्धुवारितवरणवारणवल्लीमूलकषायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम्। – *अ॰शा॰* 14.179.4

70 कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म। – वही

वैदिक साहित्य में कृषि का स्वरूप
एक विवेचनात्मक अध्ययन

*ऋतिका**

शोधसार – इस विशाल सृष्टि में अन्न के बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। भगवान् ने प्राणियों की सृष्टि से पहले ही अन्न को तैयार कर दिया था।[1] अतः अन्न परब्रह्म कहा जाता है। अन्न[2] अनाज से भी बनता है। वह दो प्रकार के होता है – १. ग्राम्य और २. आरण्यक। *कृष्ण यजुर्वेद* में वाजपेय याग के सन्दर्भ में कहा गया है कि सात ग्राम्य औषधियाँ और सात आरण्यक औषधियाँ होती हैं।[3] जो अनाज कृषि-कर्म के बिना अरण्यों (वनों) में उत्पन्न होता है, उसको आरण्यक कहते हैं। आरण्यक अनाजों का उपयोग ऋषि-मुनियों द्वारा किया जाता है। कृषि-कर्म से उत्पन्न होने वाला अनाज ग्राम्य कहा जाता है। सभी जन ग्राम्य अनाजों को खाते हैं। खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिए कृषि की आवश्यकता होती है। कृषि की आवश्यकता के विषय में वैदिक संहिताओं में विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। उसके संक्षिप्त विवरण को प्रस्तुत करना इस शोध-लेख का लक्ष्य है।

शब्दकुञ्चिका – कृषिविज्ञान, फसलविज्ञान, कृषक, पशुविज्ञान, कृषि-अर्थशास्त्र, कृषिभूमि, कृषि-उर्वरक, कृषिकीटनाशक, कृषि-सहायक, कृषि-अर्थशास्त्र, कृषि-पारिस्थितिकी

प्रस्तावना

वेदों में कृषि सम्बन्धित अनेक प्रकरण और मन्त्र प्राप्त होते हैं। *ऋग्वेद* में पशुपालन के साथ कृषि की भी चर्चा की गई है। *ऋग्वेद* में कृषि की तुलना में पशुपालन का वर्णन कम ही है। कृषि उनकी आजीविका का मुख्य साधन था। उस समय की संस्कृति मुख्य रूप से कृषि और पशुपालन पर निर्भर थी। इसके कई प्रमाण मिलते हैं। किसी व्यक्ति विशेष को धनवान या सम्पन्न कहने के लिए उसकी गायों की संख्या से अनुमान करते थे। कन्यादान के समय उपहारस्वरूप गाय प्रदान करते थे। उस समय राजा-महाराजा भी गाय का पालन करते थे। इसका एक अद्भुत उदाहरण भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वर्तमान समय में भी पूर्वोत्तर राज्यों में "गोस्वामी" नामक गोत्र प्रचलित है। वैदिक संहिताओं में कृषि-सम्बन्धी उल्लेखों से कृषि की मानव जीवन में आवश्यकता व महत्ता स्पष्ट होती है। *अथर्ववेद* में विराट् नामक सूक्त में वर्णन है कि विराट् ब्रह्म जब मनुष्यों के पास पहुँचे तो उन्होंने उसे (अन्नसमृद्धि) इरावति कहा है[4]। वेन-पुत्र पृथु ने इसे दुहकर कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया। कृषि-विशेषज्ञों को "अन्नविद्" कहा गया है।[5] कृषि-कर्म को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। *अथर्ववेद* में कहा

---

* Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <ritikaasvri@gmail.com>

[1] अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्यात् जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥ – *मनुस्मृति* 3.76

[2] अद्यते इति अन्नम्।

[3] सप्त ग्राम्या ओषधयः। सप्तारण्याः। – *कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयब्राह्मण* 1.3.8.1

[4] सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत्तां मनुष्या ३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति। – *अथर्ववेद* 8.10.4.9

[5] यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया। – *अथर्ववेद* 6.116.1

गया है कि मनुष्य जिस अलङ्कृत-सुसंस्कृत आहुतियों को यज्ञ में देवताओं को देते हैं, उससे भूमि में उत्तम अन्न, व खाने-पीने की वस्तुओं से मरणधर्मा मनुष्य जीते (आधार पाते) हैं। वह भूमि हमारी बल, आयु की वृद्धि या उन्नति करने वाली हो अर्थात् इसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।[6] *शतपथ ब्राह्मण* में पूरे कृषि-कार्य को चार शब्दों में बताया गया है।[7] (१) कृषन्तः (कर्षण) – खेत की जुताई करना, (२) वपन्तः (वपन) – बीज बोना, (३) लुनन्तः (लवन) – पके खेत की कटाई करना, (४) मृणन्तः (मर्दन) – मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना।

कृषि का प्रारम्भ

पृथ्वी पर कृषि का विकास किस प्रकार हुआ, इस विषय में कुछ प्रमाण वेदों में प्राप्त होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में वनों की अधिकता थी। वनों को काटा गया, भूमि को समतल किया गया और फिर कृषि का कार्य प्रारम्भ हुआ। *ऋग्वेद* 1.117.21 में कृषि सीखने-सिखाने का वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ वर्णन आया है कि अश्विनी कुमार देवताओं ने मनु को हल चलाना और जौ की खेती करना सिखाया। *अथर्ववेद* 6.30.1 के अनुसार देवताओं ने कृषि का आविष्कार किया इसमें इन्द्र देवता को हल का स्वामी (सीरपति[8]) और मरुतों को किसान (कीनाशाः[9]) कहा गया है। सर्वप्रथम कृषिकर्ता इन्द्र और मरुत् है। *अथर्ववेद* 6.30.1 का कथन है कि सरस्वती नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि में माधुर्ययुक्त जौ की खेती हुई। इसमें इन्द्र कृषि-कर्म के अधिष्ठाता थे और मरुत् देवों ने किसान का कार्य किया। कृषि के लिए सर्वप्रथम सरस्वती नदी के किनारे की भूमि चुनी गई। यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। कृषि-कार्य के नियन्ता राजा (इन्द्र) थे और उनकी देख-रेख में प्रजाजनों (मरुतों) ने जौ की खेती की। इससे ज्ञात होता है कि सबसे पहले जौ ही बोया गया। *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* से ज्ञात होता है कि राजा वेन[10] के पुत्र राजा पृथु[11] कृषि-कार्य के प्रथम आविष्कारक हैं। इन्होंने ही सर्वप्रथम पृथ्वी से कृषि द्वारा विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया। *ऋग्वेद* में भी वेन-पुत्र राजा पृथु का नाम आया है।[12] *अथर्ववेद* में स्पष्ट रूप से पृथु को कृषि का आविष्कारक माना गया है।[13] इससे अगले मन्त्र में भी यह वर्णन देखने को मिलता है।[14] *महाभारत* के शान्तिपर्व में कृषि के सम्बन्ध में वर्णन है कि वेन-पुत्र पृथु एक प्रतापी राजा थे। उन्होंने ही ऊँची-नीची भूमि को समतल

---

[6] भूम्यां .... मा पृथिवी कृणोतु। – *अथर्ववेद* 12.1.22

[7] कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः। – *शतपथ ब्राह्मण* 1.6.1.3

[8] इन्द्रः सीरपतिः हलस्याधिष्ठाता स्वामी आसीत्। – *सायणभाष्य*, *अथर्ववेदभाष्य* 6.30.1

[9] कीनाशाः कर्षका आसन्। – वही

[10] देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।। – *अथर्ववेद* 6.30.1 वेनः = वेनः कान्त एतत्संज्ञो मध्यस्थानो देवः (*ऋ॰ सा॰ भाष्य* 10.123.1), वेनम् अभिकामयमानाः (*ऋ॰ सा॰ भाष्य* 10.123.3), वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः (*निरुक्त* 10.38)।

[11] एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी। इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी।।
अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः। पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः।।
इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा।। अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती।। – *श्रीमद्भागवत महापुराण* 4.15.3-5

[12] पृथी यद् वां वैन्यः। – *ऋग्वेद* 8.9.10

[13] तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम्। – *अथर्ववेद* 8.10.4.10

[14] तां पृथी वैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक्।। – वही 8.10.4.11

बनाया।[15] वहीं अगले श्लोक में कहा जाता है कि सभी मन्वन्तरों में यह पृथ्वी ऊँची-नीची हो जाती है उस समय वेन-कुमार पृथु ने धनुष की प्रत्यञ्चा द्वारा विषम भूमि से पत्थरों को निकाला और उन्हें एक स्थान पर एकत्र कर दिया।[16] इस प्रकार भूमि को समतल कृषि योग्य बनाकर कृषि-कार्य किया और सत्रह (17) प्रकार के अन्नों का उत्पादन किया। यक्षों, राक्षसों और नागों में से जिसको जो वस्तु अभीष्ट थी, वह उन्होंने पृथ्वी से प्राप्त कर ली।[17] *श्रीमद्भागवत महापुराण* (चतुर्थ स्कन्ध) में राजा पृथु के गोरूपी पृथ्वी से प्रजापालन के लिए अन्न प्राप्ति की विस्तृत चर्चा है। इन्होंने ही सर्वप्रथम कृषि के लिए पथरीली भूमि को समतल बनाया और जोतकर कृषि-कार्य किया। पूर्वोक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि कृषि के लिए वनों को काटा गया। भूमि से चट्टानों, कंकड़ों आदि को हटाया गया। तब भूमि कृषि के योग्य हुई और उसमें विविध अन्नों के बीजों को बोया गया। आज भी इसी पद्धति का प्रयोग करके उत्तम कृषि-कार्य किया जाता है।

वैदिक साहित्य में कृषि-कर्म के स्वरूप को समझने के लिए इसे निम्न विषयों में विभाजित किया जा सकता है –

1. भूमि (क्षेत्र)
2. बीज
3. उचित काल
4. साधन
5. जल
    - वर्षा के जल से सिंचाई
    - नहरों के जल से सिंचाई
    - नदियों के जल से सिंचाई
    - तालाबों के जल से सिंचाई
    - कुँए के जल से सिंचाई
6. खाद (उर्वरक)
7. कृषि के विनाशक (कीटनाशक)
8. कृषि-कर्म के सहायक (पशु)
9. वातावरण
    - अत्युग्र आतप (धूप)
    - परिवाह (बाढ़)
    - अनातप (धूप का अभाव)
    - शैत्याधिक्य
10. कृषि-कर्म करने वाला कृषक
11. कृषि-कर्म से प्राप्त होने वाले अन्न
12. कृषि-कर्म की महत्ता

खेतों की (वन्य पशुओं से) सुरक्षा आदि अनेक ऐसी आवश्यकताएं होती हैं जिनसे कृषि को अच्छी तरह से पोषित किया जा सके। प्रायः सभी संहिताओं में इनके लिए स्फुट् निर्देश प्राप्त होते हैं।

भूमि (क्षेत्र)

कृषि के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता भूमि की है। पृथ्वी ही समस्त औषधियों की माता है (*अथर्ववेद* 12.1.17)। *यजुर्वेद* में एक प्रश्न किया गया है कि बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान क्या है? इसका उत्तर दिया गया है कि भूमि ही बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान है।[18] *अथर्ववेद* में वर्णन है "भूमि भाग्य देने वाली है, इसलिए हम इसका आदर करते हैं। यह भूमि

---

[15] समतां वसुधायाश्च स सम्यगुदपादयत्। वैषम्यं हि परं भूमेरासीदिति च नः श्रुतम्।। – *महाभारत*, शान्तिपर्व 12.59.114

[16] मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही। उज्जहार ततो वैन्यः शिलाजालान् समन्ततः।।
धनुष्कोट्या महाराज तेन शैला विवर्धिताः। स विष्णुना च देवेन शक्रेण विबुधैः सह।। – *महाभारत*, 12.59.115-16

[17] तेनेयं पृथिवीदुग्धा सस्यानि दश सप्त च। यक्षराक्षसनागैश्चापीप्सितं यस्य यस्य यत्।। – वही 12.59.124

[18] किं वावपनं महत्? भूमिरावपनं महत्। – *यजुर्वेद* 23.45-46

हमें उत्तम धान्य देती रहे।"[19] इसके पश्चात् उत्तम बीज की आवश्यकता होती है, जिससे उत्कृष्ट कृषि हो सके। *यजुर्वेद* का कथन है कि उत्तम अन्न को देने वाली कृषि करो। कृषि के लिए उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम हल, बैल और किसान की आवश्यकता होती है।[20] *अथर्ववेद* में नौ मन्त्रों का एक सूक्त (3.17.1-9) कृषि-कर्म से सम्बद्ध है। इनमें से अधिकांश मन्त्र *ऋग्वेद* और *यजुर्वेद* में भी हैं। कृषि के योग्य उपजाऊ भूमि के लिए "उर्वरा" शब्द मिलता है। ऐसी भूमि को हल से जोता जाता है और उसमें उत्तम बीज बोया जाता है।[21] उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्न को "उर्वर्य" कहते हैं[22]। जिस भूमि में अन्न (बीज) नहीं बोया जाता, उसे "खल" कहते हैं। यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती है। इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को स्वच्छ किया जाता है और भूसी आदि हटाकर संग्रहण के योग्य बनाया जाता है।[23] खलिहान में रखे हुए अन्न के लिए "खल्य" शब्द का प्रयोग किया गया है।[24] खलिहान में नमी आदि के कारण कुछ कीड़े भी अन्न में लग जाते हैं, इन्हें "खलज" कहा गया है और इनको मारने का विधान है।[25] *अथर्ववेद* में अन्न के लिए उत्तम भूमि और वर्षा की आवश्यकता बताई गई है। वर्षा से पर्जन्य की पत्नी भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ती है, जिस भूमि में नियमित रूप से वृष्टि हो, सम्पूर्ण धान्यादिक उत्पन्न हों, जिससे लोगों का योग्य पालन होता हो, उस मातृभूमि को नमस्कार है।[26] इस मन्त्र में भूमि को वर्षा द्वारा पालित और "वर्षमेदस्" अर्थात् वर्षा से उर्वरा-शक्ति की वृद्धि का उल्लेख है। पृथ्वी से अन्न प्राप्त होने के कारण इसे जीवन प्रदान करने वाली भी कहा गया है, जो समृद्धि प्रदान करने के लिए वर्षा से सिञ्चित होती है।[27] "मेघ की वृष्टि से पृथ्वी पर बड़े स्रोत बहें और मेंढ़क भूमि पर आकर शब्द करें" (*अथर्ववेद* 4.15.12) इस मन्त्र से पृथ्वी की समृद्धि को बताया जा रहा है। *अथर्ववेद* का कथन है कि हल के फाल से जुती हुई उर्वरा भूमि में बोया गया बीज अच्छी प्रकार से उगता और बढ़ता है।[28] भूमि (कृषि) से ही मानव जीवन की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सकता है। इसीलिए *यजुर्वेद* में भी उर्वरा भूमि को नमस्कार किया गया है।[29] अतः उर्वरा भूमि में ही कृषि-कार्य करना चाहिए।

बीज

भूमि के पश्चात् बीज का महत्त्व है। बीज उत्तम होगा तो कृषि भी अच्छी होगी । अतएव *यजुर्वेद* में कहा गया है कि हल

[19] सीता वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा न सुफला भुवः।। – *अथर्ववेद* 3.17.8

[20] सुसस्याः कृषिस्कृधि । – *यजुर्वेद* 4.10

[21] यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। – *अथर्ववेद* 10.6.33

[22] नम उर्वर्याय। – *यजुर्वेद* 16.33; उर्वर्यः = उर्वरा सर्वसस्याढ्या भूः तत्र धान्यरुपेण भव उर्वर्यः।

[23] खले न पर्षान्। – *ऋग्वेद* 10.48.7

[24] खल्याय च। – *यजुर्वेद* 16.33; खल्यः = खलो धान्यविवेचनदेशः तत्र भवः खल्यः। "खलः कल्के भुवि धान्ये पूरे कर्णे जयेऽधमे" इत्युक्तेः।

[25] खलजाः ... तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय। – *अथर्ववेद* 8.6.15

[26] यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः। भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।। – वही 12.1.42

[27] प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः। – वही 7.18.2

[28] यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु। – वही 10.6.33

[29] नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च। – *यजुर्वेद* 16.33

आदि को व्यवस्थित करके, भूमि को योग रीति से परिष्कृत (जुताई) आदि करके उत्तम बीज बोना चाहिए।[30] *ऋग्वेद* का कथन है कि उत्कृष्ट अन्न के लिए उत्तम कोटि का बीज बोने चाहिए। अतएव किसान उत्तम बीज बोते हैं।[31] बीज बोने से पहले भू-परिष्कार आवश्यक है अर्थात् भूमि से घास-फूँस, कंकड़, पत्थर आदि को निकाला जाए और भूमि को समतल किया जाए। इसके लिए *यजुर्वेद* 12.68 में कहा गया है कि "कृते योनौ वपतेह बीजं" अर्थात् भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाए। बीज-वपन के विषय में निर्देश है कि बीज को पानी में भिगोया जाए और उसमें औषधियों को भी डाला जाए। इससे बीज में औषधियों का गुण आ जाएगा और उसकी गुणवत्ता बढ़ जाएगी।[32]

कौटिल्य ने अपने *अर्थशास्त्र* में कृषि-सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातों की चर्चा की है। बीजवपन के विषय में उनका कथन है कि धान के बीजों को सात रात तक ओस और सात दिन तक धूप में रखना चाहिए। मूँग, उड़द आदि के बीजों को इसी प्रकार तीन दिन-रात या पाँच दिन-रात ओस और धूप में रखना चाहिए।[33] इसी प्रकार बीज बोने से पहले प्रत्येक बीज को सुवर्ण से संस्पर्श हुए जल में भिगोना चाहिए।[34] बोते समय बीज की पहली मुट्ठी भरकर इस श्लोक को पढ़कर बीज बोएं जिससे अच्छी प्रकार से फसल तैयार हो सके।[35]

उचित काल

कृषि में कोई भी कार्य यदि समय से नहीं किया जाता है तो पूरा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। किसी भी बीज को ऋतु के अनुसार एवं उचित वातावरण में ही बोने पर उसका अच्छा परिणाम प्राप्त हो सकता है। कृषि-कार्य देवताओं के सहयोग से ही सम्भव होता है इसलिए केवल बीज वपन ही नहीं अपितु फसल में सही समय पर पानी डालना, निराई करना, गुड़ाई करना, कटाई करना भी बहुत आवश्यक होता है। *तैत्तिरीय संहिता* में किस ऋतु में कौन सी फसल होती है इसका वर्णन मिलता है। रस वाले (फल) फसल वसन्त ऋतु में, यव आदि ग्रीष्म ऋतु में, औषधि आदि वर्षा ऋतु में, ब्रीहि आदि शरद ऋतु में, माष (उड़द) आदि हेमन्त ऋतु में, तिल आदि शिशिर ऋतु में उत्पन्न होते हैं।[36] *तैत्तिरीय संहिता* में ही एक अन्य स्थान पर बताया गया है कि वर्ष में दो बार फसलें उत्पन्न होती हैं।[37] कौटिल्य के अनुसार इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए कि किस प्रकार की भूमि में कौन सा बीज बोया जाना चाहिए। किस ऋतु में कहाँ कौन सा बीज बोया जाए? उत्तम फसल के लिए कितनी धूप और कितनी वर्षा आवश्यक है? सिंचाई की ठीक व्यवस्था की जाए। सिंचाई की सुविधा को देखकर ही बीज बोया जाए। इसके साथ कौटिल्य ने यह भी निर्देश दिया है कि किस अन्न को वर्षा प्रारम्भ होने से पहले बोया जाए, किसे वर्षा के मध्य

---

30 युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्। – वही 12.68

31 वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः। – *ऋग्वेद* 10.94.13

32 सं वपामि समाप – *यजुर्वेद* 1.21

33 तुषारपायनम् उष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां, त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानाम्।। – *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, हिन्दी टीका आचार्य गङ्गाप्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष प्रचार, द्वितीय अधिकरण, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण, पृ. 184

34 सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत्। – वही पृ. 185

35 प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा। सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च।। – वही

36 रसमह वसन्ताय प्रायच्छयद्यवं ग्रीष्मायौषधीर्वर्षाभ्यो व्रीहीञ्छरदे माषतिलौ हेमन्तशिशिराभ्यां। – *तैत्तिरीय संहिता* 7.2.10.1

37 द्विःसंवत्सरस्य सस्यं पच्यते। – वही 5.1.7.3

में और किसे वर्षा के अन्त में बोया जाए? जिस देश में जैसी वर्षा हुई हो वैसा ही बीज बोना चाहिए।[38] सभी बीजों को ऋतु के अनुसार ही बोना चाहिए।[39]

साधन

वेदों में कृषि के संसाधनों का वर्णन इस प्रकार से मिलता है –

१. ***हल*** – हल के लिए लांगल और सीर शब्द हैं (*अथर्ववेद* 3.17.1-3)। इस लेख में जैसे पहले भी बताया गया है कि *अथर्ववेद* में इन्द्र देवता को हल का स्वामी (सीरपति[40]) भी कहा गया है। *काठक संहिता* 20.3 में हल की खूड को सीता कहा गया है।
२. ***सीता-फाल*** – हल के नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द का प्रयोग किया गया है (*अथर्ववेद* 3.17.5, 8)।
३. ***ईषा, युग, वरत्रा*** – हल में जो लम्बी लकड़ी (हलस) लगी रहती है, उसके लिए ईषा शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती है। इसके ऊपर जूआ (युग) रखा जाता है। हलस और जूए को रस्सी (वरत्रा) से बाँधा जाता है (*अथर्ववेद* 2.8.4, 3.17.6)।
४. ***अष्ट्रा*** – किसान जिस चाबुक या छड़ी से बैलों को हाँकता है, उसके लिए अष्ट्रा शब्द का प्रयोग किया गया है (*अथर्ववेद* 3.17.6)।

जल

वर्तमान समय में आधुनिक सयत्रं होने के बाद भी हम हर स्थान पर्याप्त पानी की व्यवस्था नहीं कर सकते। प्राचीन समय में भी अधिकांश कृषि-कार्य वर्षा पर ही निर्भर था। *ऋग्वेद*, *शुक्ल यजुर्वेद*, *अथर्ववेद* और *तैत्तिरीय संहिता* में सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विवरण मिलता है। *अथर्ववेद* में अतिवृष्टि और अनावृष्टि को रोकने के लिए बहुत से उपाय बताए गए हैं। शास्त्रीय विधि से आप जब अग्नि में घी से हवन करते हैं तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखे हुए धान के खेतों पर जल बरसाने लगती हैं।[41] *अथर्ववेद* के प्रथमकाण्ड में जल के भेद बताए हैं –

१. देवीः (दिव्याः) आपः (1.4.3) – आकाश अर्थात् मेघों से प्राप्त होने वाला जल। इसी का नाम वार्षिकी (1.6.4) भी है।
२. सिन्धु (1.4.3) – नदी तथा समुद्र से प्राप्त होने वाला जल।
३. अनूप्या आपः (1.6.4) – जलमय प्रदेशों में प्राप्त होने वाला जल।
४. धन्वन्या आपः (1.6.4) – मरुदेश रेतीले देश में अथवा अल्प वृष्टि वाले देश में मिलने वाला जल।
५. खनित्रिमाः आपः (1.6.4) – खोदकर बनाए हुए कुँए या बावड़ी से प्राप्त हुआ जल।

इस प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानों पर होने से विभिन्न गुण धर्मों से युक्त होता है और फसल आदि पर उसका प्रभाव भी अलग पड़ता है।

---

[38] ततः प्रभूतोदकम् अल्पोदकं वा सस्यं वापयेत्। – *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, हिन्दी टीका आचार्य गङ्गाप्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष प्रचार, द्वितीय अधिकरण, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण, पृ॰ 183

[39] यथर्तुवशेन वा बीजवापाः। – वही

[40] इन्द्रः सीरपतिः हलस्याधिष्ठाता स्वामी आसीत्। – *सायणभाष्य*, *अथर्ववेदभाष्य* 6.30.1

[41] हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु। वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।। – रघु॰ 1.62

(क) ***वर्षा के जल से सिंचाई*** (*अथर्ववेद* 4.15.1-16) – अच्छी फसल का आधार वर्षा है। वेदों में कई स्थानों पर वर्षा के जल को महत्त्वपूर्ण माना गया है। *अथर्ववेद* के एक मन्त्र में वर्णन आता है आकाश से दानरूप में आई वृष्टि जौ को बढ़ाती है।[42] *ऋग्वेद* का कथन है कि हाथ में परशु अस्त्र धारणकर्ता, और विजय के इच्छुक देवता आते हैं और वे लोगों के सहयोग से मेघों को विदीर्ण करके जलवृष्टि करते हैं। वह जल नदियों में प्रवाहित होता है। देवता जिस मेघ में जल देखते हैं उसी को विद्युत से विदीर्ण करके जलवृष्टि करते हैं।[43] वेद में इस प्रकार का वर्णन है कि वर्षा के जल से वनस्पतियाँ बढ़ती हैं।[44] *अथर्ववेद* में कहा गया है कि "वायु और सूर्य मेरे हवन को स्वीकार करें और जो जल आकाश मण्डल में है उसकी वृष्टि से इस पृथ्वी को सिंचित करें"।[45] वेदमन्त्र में आया है कि गरजते हुए बादल पृथ्वी को तृप्त करें।[46] *अथर्ववेद* में पर्जन्य को पिता और भूमि को माता का स्थान दिया गया है क्योंकि भूमि उनसे ही सिंचित और पुष्ट होती है[47]। पर्जन्य वर्षा के देव कहे गए हैं।[48]

(ख) ***नहरों के जल से सिंचाई*** – *अथर्ववेद* 20.17.7 में नदी तालाब और नाले का वर्णन आया है। *कामन्दक नीतिशास्त्र* में कहा गया है कि जल और स्थल के मार्ग में सम्पन्न बिना मेघ बरसे भी अन्न उपजाने वाली अर्थात् कूप नहर आदि से ही सींचने से अन्न प्रकट करने वाली भूमि ऐश्वर्य के निमित्त होती है।[49]

(ग) ***नदियों के जल से सिंचाई*** – *अथर्ववेद* 1.4.3 में कहा गया है कि जल की नदियां बह रही हैं जिन्हें सूर्य की किरणें शुद्ध कर रही हैं ऐसा जल हमें आरोग्यता प्रदान करे। *महाभारत* 2.5.67 में भी बिना वर्षा के जल वाली कृषि को बहुत अच्छा बताया गया है।

(घ) ***तालाबों के जल से सिंचाई*** – *अथर्ववेद* 1.6.4 के अनुसार मरुदेश का, जलमय देश का, कुँए का, वृष्टि का तथा घड़ों में भरा हुआ जल हमारा सुख बढ़ाने वाला हो।

(ङ) ***कुँए आदि के जल से सिंचाई*** – कुँए से सिंचाई[50] का पानी खींचने के लिए चरस (कोष) रस्सी (वरत्रा) और अश्मचक्र के प्रयोग किए जाने का वर्णन है। कुँए से ऊपर निकाले हुए पानी को "सुषिरासुर्मि" कहा जाता है, इससे सिंचाई का कार्य किया जाता है।

ऋग्वेद 7.49.2 में सिंचाई के काम आने वाले चार प्रकार के जल का वर्णन है –

1. ***दिव्याः*** – वर्षा का जल,

---

[42] यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना। – *अथर्ववेद* 20.17.7

[43] देवास आयन्परशूँरबिभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्। नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति।। – *ऋग्वेद* 10.28.8
कृपीटम् = उदकनामैतत्। निगूढमुदकं = तिष्ठति त इमे देवाः

[44] यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण प्रथिवीं महीम्। ओषधयः प्रजायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥ – *अथर्ववेद* 11.4.17
एवं
वृष्टिरिव वर्धया तृणम्। – *अथर्ववेद* 6.54.1

[45] यद् दिवि चक्रथुःपयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्। – *अथर्ववेद* 3.17.7

[46] महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु। – वही 4.15.1

[47] माता भूमि पुत्रोहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु। – वही 12.1.12

[48] आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्। – वही 3.31.11

[49] अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये। – *कामन्दक नीतिशास्त्र* 4.52

[50] शं नः खनित्रिमा आपः शमु या कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः। – *अथर्ववेद* 1.6.4

2. ***खनित्रिमा:*** – कुँए आदि का जल,
3. ***स्वयंजा:*** – स्रोत आदि का जल,
4. ***समुद्रार्थाः*** – समुद्र में मिलने वाली नदियों का जल।

ऋग्वेद में कुँए (अवट) द्रोण अहाव का भी उल्लेख है। *शुक्ल यजुर्वेद* 22.25 और *तैत्तिरीय संहिता* 4.5.7.1-2 में सिंचाई के इन संसाधनों का उल्लेख है – कुँआ, नहर, तालाब, नदी, जलाशय, और स्रोत का जल, आदि।

खाद (उर्वरक)

वेदों में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपयोग का उल्लेख है। खाद के लिए करीष, शकन् और शकृत् (गोबर) शब्दों का प्रयोग है। यह खाद प्रायः गाय या बैल के गोबर की होती थी, इसे प्राकृतिक और मूल्यवान बताया गया है। *अथर्ववेद* में खाद को फलवती कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि खाद का उपयोग आवश्यक है। अत्युत्तम खेती के लिए दूध, शहद और औषधियों के रस के मिश्रण से बनी खाद डालने का विधान है। *यजुर्वेद* और *अथर्ववेद* का कथन है कि बीज बोने से पूर्व जुती हुई भूमि में खाद के रूप में घी, दूध और मधु का प्रयोग किया जाए। इससे भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ती है।[51] कौटिल्य का यह भी कथन है कि बीज जब अङ्कुरित हो जाए, तब उनमें छोटी मछलियों की खाद मिलवा देनी चाहिए और उन्हें स्नुही (सेहुंड) के दूध से सींचना चाहिए।[52] कौटिल्य ने ईख के पोरों की कटी जगह पर शहद, घी या सुअर की चर्बी लगाने का विधान किया है। इसी प्रकार कन्द फलों, कपास, कटहल, आम आदि के लिए अलग-अलग खाद को उपयोगी बताया गया है। इनके बीजों को गोबर, घी, शहद, एवं हड्डी के चूरे के साथ मिलाकर बोना उपयोगी बताया गया है। इससे ज्ञात होता है कि कौटिल्य के समय में गोबर, हड्डी के चूरे आदि का खाद के रूप में प्रयोग होता था। *शतपथ ब्राह्मण* में गोमय शब्द का प्रयोग गोबर के अर्थ में हुआ है। वहाँ गोमय का प्रयोग गोबर से भूमि को लीपने के लिए है[53]।

कृषि के विनाशक (कीटनाशक)

कृषि को कीड़े-मकोड़े व टिड्डियों से भी हानि पहुँचती थी। इस सन्दर्भ में *अथर्ववेद* के एक सूक्त के तीन मन्त्रों में कृषि-नाशक तत्त्वों का उल्लेख है और इन्हें सर्वथा नष्ट करने का विधान है।[54] मन्त्र के *भाष्य* में स्वामी विद्यारण्य का कथन है कि "हे अश्विनी कुमारों! तर्द (कृषिनाशक तत्त्व – चूहा, कीट, पतङ्गादि) को नष्ट करो। बिल में रहने वाले चूहों को नष्ट करो। इनका सिर और इनकी पीठ तोड़ दो। इनका मुँह बाँध दो, जिससे ये जौ को न खा सकें।"[55] *कौशिक गृह्यसूत्र* के इन पाँच सूत्रों (51.16-21) में खेत का नाश करने वाले मूषक, पतंग, शलभ, हरिया, रुरु और शल्यादि के शान्तिकर्म को कहते हैं – जिस खेत में उक्त सस्यविनाशक जन्तुओं का आक्रमण होता है वहाँ "हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना" (*अथर्ववेद* 6.50.1) इत्यादि मन्त्रों से पत्थर को अभिमन्त्रित करके बिखेर देना चाहिए। मूषक आदि के मुख को केशों से बाँधकर समुहन करके खेत में गाड़ दें। आचार ग्रन्थ में कहा गया है कि प्रत्येक दिशाओं में "आशापतये अश्विभ्यां क्षेत्रपतये०" इत्यादि मन्त्रों से बलियों को दें और उस दिन

---

[51] घृतेन सीता मधुना……ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना।। – *यजुर्वेद* 12.70, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के सुबोध भाष्य में उद्धृत, *अथर्ववेद* 3.17.9

[52] प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण पापयेत्। – *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, हिन्दी टीका आचार्य गङ्गाप्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष प्रचार, द्वितीय अधिकरण, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण, पृ॰ 184

[53] गोमयेनालिप्य – *शतपथ ब्राह्मण* 12.4.4.1

[54] हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम्। यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय। – *अथर्ववेद* 6.50.1

[55] तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस। ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित। – *अथर्ववेद* 6.50.1.2

सूर्य भगवान् के अस्त समय तक मौन व्रत धारण करें। *अर्थशास्त्र* के अनुसार सर्प से सुरक्षा सम्बन्धित विषयों की चर्चा करते हुए आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि – सर्प की केंचुली और बिनौलों (कपास के बीज) को एक साथ मिलाकर जला दिया जाए तो जहाँ तक उनका धुँआ फैलेगा, वहाँ तक कोई सर्प नहीं रह सकेगा।[56]

कृषि-कर्म में सहायक (पशु)

कृषि करने में बैल सबसे बडे सहायक संसाधन हैं। इसी विषय को ध्यान में रखते हुए *अथर्ववेद* में बैलों के सुखों की कामना की गई है।[57] खेती में हल चलाना हो या भार ढोना हो सब कार्य में बैल सहायक होते थे। उनके लिए अनड्वान् शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है (*तैत्तिरीय संहिता* 1.8.7.1)। बैल अपने कन्धों पर हल के दण्डों को धारण करते थे (*अथर्ववेद* 3.17.1)। किसान खेती में जुताई करते समय बैलों के पीछे-पीछे चलते थे (*अथर्ववेद* 3.17.5)। *अथर्ववेद संहिता* के मन्त्रों में जुताई करने वाले बैलों के लिए "वाहा" शब्द का प्रयोग किया गया है (*अथर्ववेद* 3.17.6)। वैदिक काल में केवल दो बैलों से ही खेत नहीं जोते जाते थे, अपितु छः या आठ बैलों से भी खेत को जोतकर तैयार किया जाता था (*अथर्ववेद* 6.91.1)। *ऋग्वेद* में बैलों द्वारा जौ के खेत जोतने का वर्णन प्राप्त होता है।[58] *काठक संहिता* 15.2 में छः, आठ और बारह जूओं वाले बड़े हलों का वर्णन है[59] एक जूए में दो बैल लगते हैं। इस प्रकार बारह, सोलह, और चौबीस बैल वाले बड़े हल भी काम में आते थे।

वातावरण

कृषि को अच्छी प्रकार से बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण का होना बहुत आवश्यक है। पर्याप्त परिश्रम करने के बाद भी कभी-कभी कृषि-कर्म में इच्छा के अनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं होते। कृषि-कर्म के लिए अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही बहुत हानिकारक होती हैं। इसके बहुत से कारण हो सकते हैं।

अत्युग्र आतप (धूप) – यदि तापमान ठीक नहीं है तो अत्यधिक धूप से फसल झुलस (नष्ट हो) जाती है। तेज धूप से गेहूँ तथा सरसों की फसलों को हानि होती है। इससे खेतों में नमी बहुत तेजी से कम हो जाती है ऐसे में सिंचाई भी अधिक करनी पड़ती है और इससे खेती में लागत बढ़ने के साथ-साथ पैदावार पर भी प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है। एक मन्त्र में पर्जन्य देव से प्रार्थना की गई है कि विद्युत द्वारा सस्य को नष्ट न करें और न ही सूर्य की किरणों द्वारा खेत में खड़े अनाज को ही सुखा डालें।[60] *अथर्ववेद* में प्रार्थना की गई है कि हमारी कृषि पर अधिक सूर्य का ताप न पड़े।[61]

परिवाह (बाढ़) – जब कृषि क्षेत्रों में बाढ़ आती है, तो फसलों की रोपाई, कटाई और खेती करने में रुकावट आती है। शास्त्रों के अनुसार जहाँ वर्षा का जल प्राप्त नहीं होता वहाँ नहर आदि के जल का उपयोग करना चाहिए। जिसे अदेवमातृका (नदीपुत्रका) कहा गया है। भारवि ने भी इसका वर्णन किया है।[62]

---

56 कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत्। न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैव तिष्ठति।। – *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, हिन्दी टीका आचार्य गङ्गाप्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष प्रचार, द्वितीय अधिकरण, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण, पृ. 185

57 शुनं वाहा। – *अथर्ववेद* 3.17.6

58 गोभिर्यवं न चर्कृषत् – *ऋग्वेद* 1.23.15

59 इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः। तेना ते तन्वो रपोपाचीनमपव्यये। – *अथर्ववेद* 6.91.1 एवं *काठ. सं.* 15.2

60 सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य। – *अथर्ववेद* 7.11.1

61 न घ्रंस्तताप न। – वही 7.18.2

62 सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः। वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति॥ – *किरात.* 1.17

अनातप (धूप का अभाव) – सूर्य की किरणों से फसल (सस्य) को बहुत पोषण मिलता है। यदि पर्याप्त मात्रा में सस्य को धूप नहीं मिलती है तो सस्य पीली हो जाती है और सूर्य से मिलने वाले पोषक-तत्त्वों का अभाव हो जाता है।

शैत्याधिक्य – वायुमण्डल में नमी अधिक होने से ओस बर्फ़ में बदल जाती है। पाले की यह अवस्था कृषि को सर्वाधिक हानि पहुँचाती है। शीतता (पाला) की अधिकता होने पर सस्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है। अत्यधिक पाला (सर्दी) हमारी कृषि को पीड़ित न करे।[63]

कृषि-कार्य करने वाला कृषक

कृषकों में इन्द्रदेव (सीरपति) और मरुत् देवों (कीनाशाः) का अग्रणी स्थान है। कृषि का कार्य पूर्णरूप से कृषक पर आश्रित था। कृषक कुछ संसाधनों के सहयोग से अन्न उत्पादन का कार्य किया करते थे। जो कृषिविद्या में निपुण होते थे, उन्हें कृष्टराधि और उपजीवनीय (सफल आजीविका वाला) कहा जाता था।[64] कृषकों को आदेश दिया गया है कि वे मृदुभाव से बैलों के पीछे चलें।[65] *ऋग्वेद* 8.20.19 में कई स्थानों पर कृषक को "कृषीवलः" भी कहा गया है। *अथर्ववेद* 6.30.1 में कृषकों को सीरपति एवं कीनाश नामों से भी उच्चारित किया गया है। वहाँ इन्द्र देवता (सीरपति) को हल का स्वामी और मरुद्गणों को खेती (कीनाशाः) करने वाला बताया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस कार्य को देवता जन करते हैं उस कार्य को सर्वसाधारण मनुष्यों को करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। *अथर्ववेद* में कृषि करने वाले नरों के सुख की कामना की गई है।[66]

कृषि-कर्म से प्राप्त होने वाला अन्न

यजुर्वेद की *तैत्तिरीय संहिता* में अन्न की उत्पत्ति को दो प्रकार से बताया गया है[67] –

1. ***कृष्टपच्याः*** – कृष्टपच्याः कर्षणेन फलिताः अर्थात् जो अन्न क्षेत्र को जोतकर उत्पन्न होता है।

2. ***अकृष्टपच्याः*** – अकृष्टपच्याः स्वयं जाताः अर्थात् जो अन्न बिना क्षेत्र को जोते उत्पन्न होता है।

अन्न के अन्य भेद भी दिए गए हैं[68] — 1. *वर्ष्य* – वर्षा से उत्पन्न होने वाले अन्न। 2. *अवर्ष्य* – जो कुँए, नहर आदि की सिंचाई से उत्पन्न होते हैं। *अथर्ववेद* में अधिक रस वाले अन्न को उत्पन्न करने वाले देव का वर्णन है। इन्द्रदेव और पर्जन्यदेव अपरिमित धान्य उत्पन्न करते हैं।[69] अन्न की समृद्धि की कामना करता हुआ एक सूक्त यव के विषय में वर्णित है (*अथर्ववेद*

---

[63] न घंस्तताप न हिमो जघान। – *अथर्ववेद* 7.18.2

[64] ते कृषिं च सस्यं च मनुष्याऽउपजीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति। – *अथर्ववेद* 8.10.24 (12)

[65] शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्। – वही 3.17.5

[66] शुनं वाहा शुनं नरः। – वही 3.17.6

[67] अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्चमेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । – *यजुर्वेद* 18.14, *तैत्तिरीय संहिता* 4.5.1-2

[68] नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्राय चातप्याय च नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च। – *यजुर्वेद* 16.38

[69] वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु। – *अथर्ववेद* 3.24.2

6.14.2)। *ऋग्वेद* में यव[70] और धान्य[71] का बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है। भूमिसूक्त में भी यव और व्रीहि को उगाने का वर्णन मिलता है।[72] *अथर्ववेद* में भोज्य अन्न के रूप में कई अन्न के नाम देखने को मिलते हैं जैसे माष (उड़द) और तिल।[73] *शुक्ल यजुर्वेद* और *तैत्तिरीय संहिता* में बारह अनाजों के नाम प्राप्त होते हैं।[74] वे इस प्रकार हैं – १. व्रीहि, २. यव, ३. माष, ४. तिल, ५. मुद्ग, ६. खल्व, ७. प्रियंगु, ८. अणु, ९. श्यामाक, १०. नीवार, ११. गोधूम, १२. मसूर। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में वाजपेय याग के सन्दर्भ में – 1. ग्राम्य,[75] और 2. आरण्यक[76] दो प्रकार के अन्न[77] के नाम प्राप्त होते हैं। जो अनाज कृषि-कर्म के बिना वनों में उत्पन्न होता है, उसको आरण्यक कहते हैं जिसमें १. वेणु, २. गवेधुक्, ३. जर्तिल, ४. श्यामाक, ५. नीवार, ६. मारकटक, ७. गार्मुत (कुलुत्थ) अनाज आते हैं। कृषि-कर्म से उत्पन्न होने वाले अनाज को ग्राम्य कहा जाता है। जिसमें १. अणु, २. व्रीहि, ३. गोधूम, ४. यव, ५. माष. ६. तिल, ७. प्रियंगु अनाज आते हैं। आरण्यक अनाजों का उपयोग ऋषि-मुनियों द्वारा किया जाता है। ग्राम्य अनाजों को सभी जन खाते हैं। इसके अतिरिक्त *तैत्तिरीय संहिता* में कुछ अन्य अनाजों के भी नाम मिलते हैं। जैसे – १. कृष्णव्रीहि – काला धान (इसका छिलका काला होता है परन्तु चावल लाल होता है)। २. आशुव्रीहि – जल्दी पकने वाला धान। यह सम्भवतः साठी धान है। कौटिल्य ने इसको शालिव्रीहिः[78] (६० दिन में पकने वाला) कहा है। ३. महाव्रीहि – यह बड़े दाने वाला चावल है। इसको बासमती चावल कहा जा सकता है। ४. गवेधुक् यह जंगली गेहूँ है। *शतपथ ब्राह्मण* में इसे गवेधुक् कहा गया है। इसको हिन्दी में गड़हेरुआ या वैजवन्ती कहते हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद्* में दस प्रकार के ग्राम्यधान्यों का वर्णन मिलता है।[79] अन्नों को तीन भागों में बाँटा जाता है। अन्न, दाल और तिलहन के रूपों में १. अन्न – चावल, गेहूँ, और जौ आदि। २. दाल – मूँग, उड़द, और मसूरादि। ३. तिलहन – तिलादि।

कृषि-कर्म की महत्ता

अथर्ववेद आदि संहिताओं में कृषि-कर्म (अन्न प्राप्ति) से सम्बन्धित अनेक प्रार्थनाएँ प्राप्त होती हैं। वैदिक साहित्य में कृषि के स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि कृषि-कार्य को गौरव का कार्य माना जाता है, इसलिए इन्द्र और पूषा देवों को कृषि-कार्य दिया गया।[80] राज्य में कृषि की समस्त व्यवस्थाएँ राजा ही किया करते थे। तभी कहा गया है कि भाग्यवान्

---

[70] *ऋग्वेद* 1.23.15, 1.117.21, 1.135.8, 5.85.3, आदि।

[71] वही 5.5.13, 6.13.4, 10.94.13, आदि।

[72] यस्यामन्नं व्रीहियवौ – *अथर्ववेद* 12.1.42

[73] व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो भाषमथो तिलम्। – वही 6.140.2

[74] व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। – *यजुर्वेद* 18.12

[75] सप्त ग्राम्या ओषधयः। – *तैत्तिरीय ब्राह्मण* 1.3.8.1

[76] सप्तारण्याः। – वही

[77] सप्तान्नहोमान् जुहोति। सप्त वा अन्नानि। – वही

[78] *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, हिन्दी टीका आचार्य गङ्गाप्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष प्रचार, द्वितीय अधिकरण, अध्याय 24, सीताध्यक्ष प्रकरण, पृ॰ 183।

[79] दशग्राम्यानि धान्यानि। – *बृह॰उ॰* 6.3.13

[80] इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु। सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।। – *अथर्ववेद* 3.17.4

राजा हमारी कृषि का विस्तार करें।[81] समाज की सुख और समृद्धि को कृषि द्वारा ही सम्भव बताया गया है।[82] *अथर्ववेद* में कृषि के माहात्म्य को स्वीकार करते हुए कृषि को मनुष्य जीवन निर्वाह का मुख्य साधन माना गया है।[83]

उपसंहार

कृषि का स्वरूप बहुत विस्तृत है यह शोध-लेख उसका छोटा सा प्रारूप है। इसमें वैदिक वाङ्मय के आधार पर कृषि की आवश्यकता, कृषि-योग्य भूमि, कृषि-योग्य बीज, सस्यानुकूल समय, उपकरण, उर्वरक, कीटनाशक, वातावरण, कृषक आदि विषयों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। एक गहन अनुसन्धान के लिए प्रेरित करना और विषय-वस्तु को सामने लाने का प्रयास इसमें किया गया है।

[81] भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु। – वही 3.12.4

[82] कृषिसूक्त। – वही 3.17

[83] ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति। – वही 8.10.24 (12)

Kṛmi-3
(कृमिभञ्जनम्)

*S. Sudarsana Sarma**

The 23rd *sūkta* of 5th *kāṇḍa* in *Atharvaveda Saṁhitā* gives us the methods of treating viral/bacterial infections. There are thirteen *mantra*s (*ṛk*s) in this *sūkta*. *Ṛk*s 10-12 of this *sūkta* are identical with the *ṛk*s 3-5 of *Atharvaveda* II.31.

The utility of this *sūkta* is described in treating the diseases of *kṛmi* (viral/bacterial infections) in different manners:

1. Uttering this *sūkta*, the root of *karīra* tree (a variety of *Phoenix dactylifera*) is tied to the body.
2. The stick of *karīra* is reeled with the hairs cow-tail and pounded. Later, the power is heated and put into fire. The chanting of this *sūkta* should continue while doing all these rites.
3. Collect the dust in the street of the village with left hand and scatter around facing south. Chanting of *mantra*s should continue.
4. Collect the dust and put it on the infected area, uttering the *mantra*.
5. The *samidhā*s (stakes) of शान्ति वृक्ष (possibly शमी वृक्ष/*Prosopis spicigera* or *Mimosa suma*) are offered to the sacred fire, uttering the *mantra*s.
6. In paediatric treatment, the child is placed in the lap of mother who sits on the western side of the sacred fire. The jaws of the child are touched with the pestle anointed with butter (and heated in the sacred fire), so that it feels the heat, while uttering the *mantra*. This should be repeated thrice.
7. The seeds of drumstick *Moringa oleifera* anointed with butter should be put on patient uttering this *sūkta*
8. Twenty-one roots of the fragrant grass उशीर (*Andropogon muricatum*) are powdered and offered to the sacred fire chanting these *mantra*s.
9. The roots of उशीर are put in a pot full of water and the water is sprinkled on the patient chanting the *mantra*s.

* Former Director, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <asvusasusarma@gmail.com>

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ।। 1 ।।

In front of me are the upper-world/sky and earth, Sarasvatī (who rules through her voice), Indra (the superpower) and Agni (the power of anything to ashes). They all destroy the *kṛmi* with their separate efforts.

Lead: The utterance of this *mantra* blocks the movements of the *kṛmi*s in the space between the earth and sun, where the rays of sun are present.

In order to make the chanting of *mantra* powerful the grace of the Goddess of Speech (Sarasvatī) is invoked.

In the protocol, permission of Indra the king is needed and hence it is obtained to destroy the *kṛmi*s.

Finally, the *kṛmi*s are burnt out with Agni the fire.

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ।। 2 ।।

Oh Indra! the king of different kinds of wealth! Please destroy the *kṛmi*s in the body of this boy. All the enemies (*kṛmi*s) are dead due to my fervent utterance of the *mantra*.

Lead: This *mantra* has a particular utility in treating the paediatric viral/bacterial infections. The vibrant efficacy of *mantra* is emphasized.

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ।। 3 ।।

We kill the *kṛmi* which moves at the eyes, nose and that which lives in between the teeth.

Lead: Every word gives a clue.

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ।। 4 ।।

The two identical and the two contrasting *kṛmi*s, the two black coloured, the two red coloured, the brown coloured, the one with reddish brown coloured ears, the eagle-looking/eagle-like (fond of flesh) and the wolf-looking/wolf-like (torture-killer) all of them are dead by my chanting of the *mantra*.

Lead: Every word of this *mantra* gives clues.

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ।। 5 ।।

Those *kṛmi*s with white sides/flanks, those black in colour, those having white hands and those multicoloured – we kill them all with our chanting of *mantra*.

Lead: Every word of this *mantra* gives clues.

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ।। 6 ।।

The sun who is visible to all, who destroys the invisible and the visible is rising from the east killing all the visible and invisible *kṛmi*s totally.

Lead: The power of rising sunrays in killing the *kṛmi*s is once again revealed.

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ।। 7 ।।

The *kṛmi*s that eat and paddy *yava* or who look like the *yava* grain, who bite and generate pain, who always tremble or sting and generate trembling, who pierce the skin enter into the body causing skin; whether visible or invisible, are killed by my utterance of *mantra*.

Lead:

1. Some *kṛmi*s look like the grain *yava*.
2. Or, they contaminate the food grains the consumption of which causes diseases. The word *yava* represents all the other grains.
3. *Yava* is identified with barley or *il mull*.
4. Some of them have a tendency to bite.
5. Some of them be always trembling. They sting and cause trembling.

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो **नदनिमो**त ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ।।

Killed is the *kṛmi* which resembles the paddy grain *yava* or generates diseases by contaminating the *yava*. So is the *kṛmi* that makes a buzzing sound. I pestle all these *kṛmi*s like the Bengal gram grains in the mortar.

Lead: Some of the *kṛmi*s make buzzing sound.

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ।। 9 ।।

I damage the sides of the three-headed, the three-humped, the multicoloured and the white or transparent coloured *kr̥mi*s. Further, I cut-off their heads, with this *mantra*.

*अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्।। 10।।

I kill the *kr̥mi*s like Atri, Kaṇva, and Jamadagni with my *mantra* powerful as that of Agastya. I thrash them all.

*हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा।। 11।।

Killed is the king of *kr̥mi*s and so is their prime minister. All the *kr̥mi*s are killed along with their mothers, brothers and sisters.

*हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः।। 12।।

I destroy the birthplaces of the *kr̥mi*s along with their residences and hideouts. I kill all the *kr̥mi*s in whatever (egg, larva, etc.) stage they are.

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्।। 13।।

I break the heads of all the male and female *kr̥mi*s with stone and I roast their faces.

Lead: *Kr̥mi*s are available in both male and female genders.

* These *r̥ks* occur also in *Atharvaveda* II.32

अग्नितत्त्व

*सुमन्त कुमार सिंह**

अग्नि प्रकृति के मुख्य पाँच तत्त्वों में परिगणित है जो हमारे जीवन के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितने अन्य तत्त्व (आकाश, जल, वायु, तथा पृथ्वी)। सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने, आवश्यकतानुसार उष्णता प्रदान करने, शरीर को पुष्ट करने, समस्त औषधियों को पुष्पित-पल्लवित करने, युद्ध कार्यों में परमाणु-बम से नगर-नगर की आबादी को नष्ट करने से लेकर जीवन के अन्तिम पड़ाव तक अग्नि का ही संयोग प्रतिष्ठित है।

भविष्य पुराण में अग्नि के विविध नाम

भविष्य पुराण (मध्यम पर्व 2.1.17.1-16) में अग्नि के विविध कर्मों के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम वर्णित हैं। सूत जी कहते हैं कि हे ब्राह्मणों! शास्त्रसम्मत विधि से किए गए अनेक यज्ञों में अग्नि के नामों का वर्णन करता हूँ। शतार्द्ध होम में पाँच सौ संख्या तक के आहुति वाले यज्ञ में अग्नि का नाम काश्यप, आज्य होम में विष्णु, तिल याग में वनस्पति, सहस्र याग में ब्राह्मण, अयुत याग में हरि, लक्ष्य होम में वह्नि, कोटि होम में हुताशन, शान्ति कर्मों में वरुण, मारण कर्म में अरुण, नित्य होम में अनल, प्रायश्चित्त में हुताशन तथा अन्नयज्ञ में लोहित नाम वर्णित हैं। देवप्रतिष्ठा में लोहित तथा वास्तु याग, मण्डप एवं पद्मक याग में प्रजापति, प्रपा याग में नाग, महादान में हविर्भुक्, गोदान में रुद्र, कन्यादान में योजक एवं तुला-पुरुष-दान में धातारूप से अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वृषोत्सर्ग में अग्नि का सूर्य, वैश्वदेव-कर्म में पावक, दीक्षा-ग्रहण में जनार्दन, उत्पीड़न में काल, शवदाह में क्रव्य, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डिक, गर्भाधान में मरुत, सीमन्त में पिङ्गल, पुंसवन में इन्द्र, नामकरण में पार्थिव, निष्क्रमण में हाटक, प्राशन में शुचि, चूड़ाकरण में षडानन, व्रतोपदेश में समुद्भव, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनञ्जय, उदर में जठर, समुद्र में वडवानल, शिखा में विभु एवं स्वरादि शब्दों में सरीसृप नाम है। अश्वाग्नि का नाम मन्थर, रथाग्नि का जातवेदस्, गजाग्नि का मन्दर, सूर्याग्नि का विन्ध्य, तोयाग्नि का वरुण, ब्राह्मणाग्नि का हविर्भुक् तथा पर्वताग्नि का नाम क्रतुभुक् है। दावाग्नि को सूर्य के नाम से जाना जाता है। दीपाग्नि का नाम पावक, गृहाग्नि का धरणीपति, घृताग्नि का नल एवं सूताग्नि का नाम राक्षस है।

अग्नि के विविध रूपों तथा व्युत्पत्तियों के आधार पर ही वर्णन करते हैं। *अमरकोष* (स्वर्गवर्ग 53-55) में अग्नि के चौतीस नाम वर्णित हैं जो निम्न हैं –

अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः।
कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्।।

बर्हिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः।
आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः।।

* Former Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <sumantsinghbui@gmail.com>

लोहिताश्वो वायुसखः शिखावानाशुशुक्षणिः।
हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः।।

सप्तार्चिर्दमुनाः शुक्रश्चित्रभानुर्विभावसुः। शुचिरप्पितम्...।

1. अग्नि, 2. वैश्वानर, 3. वह्नि, 4. वीतिहोत्र, 5. धनञ्जय, 6. कृपीटयोनि, 7. ज्वलन, 8. जातवेदस्, 9. तनूनपात्, 10. बर्हि, 11. शुष्मन्, 12. कृष्णवर्त्मन्, 13. शोचिष्केश, 14. उषर्बुध, 15. आश्रयाश, 16. वृहद्भानु, 17. कृशानु, 18. पावक, 19. अनल, 20. रोहिताश्व, 21. वायुसख, 22. शिखावत्, 23. आशुशुक्षणि, 24. हिरण्यरेतस्, 25. हुतभुग्, 26. दहन, 27. हव्यवाहन, 28. सप्तार्चिष्, 29. दमुनस्, 30. शुक्र, 31. चित्रभानु, 32. विभावसु, 33. शुचि, 34. अप्पित्त।

अग्नि पद की व्युत्पत्ति

अग्नि की व्युत्पत्ति निरुक्तकार यास्क, विद्यारण्य तथा पाश्चात्य विद्वानों के मत में विविध रूपों में प्राप्त होती है। जिसका विवरण अधोलिखित है –

1. ***आचार्य सायण*** **–** सायणाचार्य ने *ऋग्वेद संहिता* के प्रथम मन्त्रगत व्याख्या में अग्नि शब्द की देवतापरक व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में निम्नलिखित व्याख्या की है –
   i. देवसेनामग्रे स्वयं नयतीत्यग्रणी – अर्थात् देवताओं की सेनाओं को स्वयं आगे ले जाने के कारण अग्नि अग्रणी है।
   ii. अग्निर्देवानां सेनानी – अर्थात् अग्नि देवताओं का सेनापति है।
   iii. अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम् (*तैत्तिरीय ब्रा*॰ 2.4.3.3) – अर्थात् अग्नि सृष्टि के आरम्भ से देवताओं का प्रधान है।
   iv. अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम् – अर्थात् अग्नि देवताओं में प्रधान तथा मुखरूप है ।
2. ***आचार्य यास्क*** **–** अग्नि की व्याख्या यास्क ने *निरुक्त* में सर्वप्रथम की है जिनका निर्वचन अधोलिखित है –
   i. अग्रणी भवति – अग्नि समस्त देवताओं में अग्रणी होता है अथवा सभी कार्यों में अपने को आगे ले जाता है। वेदों में सर्वप्रथम स्तुत्य होना, यज्ञ में मुख्य भूमिका निभाना, देवताओं का सेनापति होना, आदि अग्रणी होने के प्रमाण हैं।
   ii. अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते – यज्ञों में आगे ले जाया जाता है। अग्नि द्वारा ही यज्ञ कार्यों का आरम्भ होता है, इसलिए इनकी संज्ञा अग्नि है।
   iii. अङ्गं नयति सन्नममानः – यह नमन अर्थात् झुकता हुआ अंगों को ले जाता है।
3. ***आचार्य स्थौलाष्ठीवि*** **–** यह अक्नोपन (नीरस) होता है। स्निग्ध (आर्द्र) नहीं करता। आशय यह है कि सम्पूर्ण द्रव पदार्थों को सुखा देता है अथवा रुक्ष बना देता है इसलिए इसका नाम अग्नि है।
4. ***आचार्य शाकपूणि*** **–** इनके अनुसार अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति तीन धातुओं से मिलकर होती है, पहली गत्यर्थक "इण्" धातु से, दूसरी व्याप्तार्थक "अञ्ज" धातु से या दाहार्थक "दह्" धातु से तथा तीसरी प्रापणार्थक "णीञ्" धातु से। इसमें इण् गतौ से अ, अञ्ज् या दह् से ग एवं नी धातु से न ग्रहण करके अग्नि शब्द की सिद्धि होती है।
5. ***आचार्य शौनक*** **–** अग्नि का जन्म सभी प्राणियों के पूर्व में हुआ था, वह यज्ञ में अग्रणी है, इसलिए ऋषिगण उनकी अग्नि नाम से स्तुति करते रहते हैं।

जातो यदग्रे भूतानाम् अग्रणीरध्वरे च यत्।
नाम्ना संनयते वाङ्ग स्तुतोऽग्निरिति सूरिभिः ।।
– *बृहद्देवता* 2.24

अग्नि के विभिन्न स्वरूप होने के प्रमाण

कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय की द्वितीय वल्ली के मन्त्र 9 में अधोलिखित प्रमाण मिलता है –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

एक ही अग्नि विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है तथा एक ही आत्मा विभिन्न रूपों में बाहर प्राप्त होती है । यह तो सामान्यतः इसका अर्थ हुआ परन्तु वैज्ञानिकता यह है कि अग्नि को ऊर्जा का स्वरूप माना गया है वही ऊर्जा के विभिन्न स्वरूप गति (motion), शक्ति (force), सामर्थ्य (power), ऊर्जा (energy), प्रकाश (light), ताप (heat), विद्युत (electricity) अग्नि के ही रूपान्तरण हैं। अतः उपरोक्त पद्य वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

ऋग्वेद के आठवें मण्डल में अग्निदेवता का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें अग्नि का मुख्य रूप एक ही बताया गया है लेकिन कर्म भेद से इन्हें वडवाग्नि, वैद्युताग्नि, जठराग्नि, भूताग्नि, धात्वग्नि, इत्यादि अनेक नाम प्राप्त होते हैं।

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं विबभूव सर्वम्।।
– *ऋग्वेद* 8.58.2

वैश्वानर अग्नि

वास्तव में शरीर के समस्त अवयव अन्नादि द्वारा विकास को प्राप्त होते हैं यदि अन्न ग्रहण न किया जाए तो प्राणी के अंग-प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं। अन्न ग्रहण के पश्चात् वैज्ञानिक रूप से पाचन का कार्य वैश्वानर अग्नि करता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* 15.14 में वैश्वानर अग्नि के महत्त्व को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है –

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि मैं प्राणियों के शरीर में जठराग्नि अर्थात् पेट की अग्नि के रूप में प्राण तथा अपान वायु के संयोग से चार प्रकार के अन्नों जैसे "भक्ष्य" दाँतों से चबाए जाने वाले भुने चने आदि, "भोज्य" रोटी, चावल आदि, "लेह्य" गुड़, रबड़ी आदि तथा "चूष्य" गन्ना इत्यादि को पचाता हूँ।

प्रश्नोपनिषद् 1.7 में भी वैश्वानर के विषय में निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होता है –

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते।

भावार्थ यह है कि प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच वायुओं में निहित वैश्वानर अग्नि शरीर के अवयवों के संवर्द्धन हेतु पाचन-क्रिया करती है जिससे सभी प्राणी प्राणवान होते हैं।

जातवेद अग्नि

सामवेद 1.1.1.8 में वर्णित निम्नलिखित ऋचा इस अग्नि को बहुत ही सुन्दर ढंग से दर्शाती है –

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।।
– *कठोपनिषद्* 2.1.8

रगड़-मन्थन द्वारा सभी पदार्थों में पाई जाने वाली जिसके द्वारा ऐश्वर्यादि प्राप्ति की जा सकती है, सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने वाली जिसे प्रत्येक मनुष्य पाने की इच्छा रखता है वह जातवेद अग्नि है। उपरोक्त मन्त्र का आशय यह है कि गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा सुचारु रूप से गर्भ धारण के समान अरणियों में रहती है। वही अग्नि जाग्रत् होकर अनुष्ठान में प्रतिदिन स्तुत होती है। यह अग्नि जल में वडवाग्नि, उदर में जठराग्नि, एवं पृथ्वी पत्थर, धातु काष्ठ्यादि में विभिन्न गैस कार्बनडाईआक्साईड आदि तथा (calcium carbonate) $CaCO_3$ के रूप में विद्यमान रहती है।

अग्नि द्वारा स्वयं को जातवेद बताना

केनोपनिषद् 3.4 में जब इन्द्रादि देवताओं द्वारा यक्ष के विषय में पता लगाना होता है तब यक्ष से वार्तालाप के समय अग्नि अपना परिचय देते हुए कहते हैं –

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा।
अहमस्मीत्य ब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ।।

भावार्थ यह है कि इन्द्रादि देवताओं के कहने पर यक्ष का परिचय पूछने के लिए गए हुए अग्नि के साथ वार्तालाप के समय यक्ष ने ही अग्नि का परिचय पूछा तो अग्नि ने उत्तर दिया कि मैं प्रसिद्ध अग्नि हूँ तथा मुझे लोग रहस्यमय जातवेद के नाम से जानते हैं।

त्रिणाचिकेत अग्नि

कठोपनिषद् 1.1.17 में यमराज द्वारा अग्नि का फल बताया गया है जो अधोलिखित है –

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं, त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मयज्ञं देवमीड्यं विदित्वा, निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।।

त्रिणाचिकेत अग्नि का तीन बार चयन करने वाला पुरुष माता-पिता और आचार्य तीनों से सम्बन्ध प्राप्त होकर जन्म-मृत्यु को पार कर जाता है। और ब्रह्म से उत्पन्न हुए ज्ञानवान् और स्तुतियोग्य देव को जानकर उसे अनुभव करके अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

आचार्य चरक के मत में तेरह अग्नियां

जठराग्नि एक प्रकार की, भूताग्नि पाँच प्रकार की, तथा धात्वग्नि सात प्रकार की हैं। प्रत्येक अग्नि वैज्ञानिक रूप से शारीरिक प्रत्यंगों में सुचारु रूप से काम करता है। मनुष्य के शरीर की रचना प्रकृति के पाँच अनमोल तत्त्वों पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु तथा आकाश के सम्मिश्रण से की गई है। ये पञ्चभौतिक शरीर के ऐसे वैज्ञानिक संघटक हैं जो आत्मा के साथ मिलकर स्थूल शरीर का निर्माण करते हैं। जब वायु और आकाश मिलते हैं तो वात, अग्नि तथा जल मिलकर पित्त एवं पृथ्वी के साथ

जल का संयोग होने पर कफ़ बनता है। उपरोक्त तेरह प्रकार की अग्नियां उपविभाग में हैं। परन्तु प्रमुख रूप से तीन प्रकार की अग्नियां ही (1. जठराग्नि, 2. भूताग्नि, तथा 3. धात्वग्नि) वर्णित हैं; जिनका परिचय अधोलिखित रूप में देखा जा सकता है –

जठराग्नि

शरीर में निहित जठराग्नि सभी अग्नियों में प्रमुख एवं सर्वोत्तम है। जठर का अर्थ पेट से है, इस प्रकार जठराग्नि का अर्थ पेट में निहित अग्नि से है। भोजनोपरान्त सर्वप्रथम पाचन की प्रारम्भिकी क्रिया को नियन्त्रण करना तथा पोषण और ऊर्जा के रूप में प्राथमिक पाचन द्वारा सहयोग करना है। यदि यह अग्नि सन्तुलित एवं स्वास्थ्यपूर्ण है तो शरीर की अन्य अग्नियां भी सन्तुलित ही रहती हैं। आपके पेट में यदि थोड़ी भी अग्नि नहीं होगी तो आप जो भोजन करते हैं, उसे पचा नहीं पाएंगे। भोजन तो ईंधन के रूप में काम करता है। जिसके जलने या पचने से आपके शरीर को ऊर्जा मिलती है, जिसकी हमें नितान्त आवश्यकता होती है। यदि आपकी जठराग्नि को सुचारू रूप से ईंधन मिल रहा है, तो स्वास्थ्य में गिरावट आने की सम्भावना न के बराबर रहती है।

भूताग्नि

भूत का अर्थ पञ्च-महाभूतों से है। यही अग्नि हमारे भौतिक अस्तित्व का भी कारण है जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश के रूप में पृथक्-पृथक् विद्यमान रहती है। प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व की अपनी अग्नि होती है जो शारीरिक संरचना निर्माण में संयुक्त रूप से कार्य करती है।

पार्थिवाग्नि – पृथ्वी तत्त्व में निहित अग्नि को पार्थिवाग्नि की संज्ञा दी गई है। यह भूताग्नि के उपविभाग में परिगणित प्रथम अग्नि है। *सामवेद* में पार्थिव अग्नि के रूप में और्वभृगु तथा अप्रवान अग्नियों का वर्णन प्राप्त होता है जो सर्वथा ग्राह्य एवं उपयुक्त है –

और्वभृगुच्छुचिमप्रवानवदाहुवे अग्निं समुद्रवाससम्।
– *ऋग्वेद* 8.102.4

> और्वभृगु अग्नि भूमि के अन्दर सम्पूर्ण पदार्थों में परिपाक करती है तथा अप्रवान अग्नि रसों एवं औषधियों में रहते हुए रस, अम्ल, क्षार रूप में प्रकट होती है यही इसकी वैज्ञानिकता है।

आप्याग्नि – जल तत्त्व के भीतर छिपी हुई अग्नि का नामकरण आप्याग्नि है, जो भूताग्नि के अन्तर्गत आने वाली द्वितीय अग्नि है।

तैजसाग्नि – तेज में अन्तर्निहित अग्नि को तैजसाग्नि कहा जाता है। तथा भूताग्नि के उपसमूह में शामिल यह तृतीय एवं अतिमहत्त्वपूर्ण अग्नि मानी जाती है। अग्नि की सत्ता भिन्न-भिन्न पदार्थों में होने के कारण नामकरण भी भिन्न-भिन्न ही हैं। न्याय–वैशेषिक दर्शन में तेज का लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार है –

> उष्णस्पर्शवत् तेजः। तच्च द्विविधं, नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुरूपम्। अनित्यं कार्यरूपम्। पुनः त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति। विषयः चतुर्विधः, भौम-दिव्य-औदर्य-आकरजभेदात्। भौमं वह्न्यादिकम्। अभिन्धनं दिव्यं विद्युदादि। भुक्तस्य परिणामहेतुरौदर्यम्। आकरजं सुवर्णादि।

> अर्थात् तेज वही कहलाता है जिसमें उष्ण (गरम) स्पर्श हो। तेज भी दो प्रकार का होता है – नित्य और अनित्य। परमाणु रूप तेज नित्य है और कार्य (वह्नि आदि) रूप तेज अनित्य है। पुनः कार्यरूप अनित्य तेज शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से तीन प्रकार का होता है। तैजस् शरीर आदित्य (सूर्य) लोक में है। रूप का प्रत्यक्ष (ज्ञान) कराने वाली चक्षु-इन्द्रिय जो

कि नेत्र के अन्दर काली पुतली (कृष्ण-तारा) के अग्रभाग में रहती है वही तैजस् इन्द्रिय है। तैजस् का विषय चार प्रकार का होता है – भौम, दिव्य, उदर्य, और आकरज अग्नि आदि भौम तेज है, क्योंकि वह भूमि से उत्पन्न होता है। जल से प्रादुर्भूत होने वाली बिजली दिव्य तेज है। खाई हुई चीजों को पचाने वाली पेट की अग्नि उदर्य तेज है। खादनों से उत्पन्न सुवर्ण, रजतादि आकरज तेज है।[1]

वायव्याग्नि – वायु के तत्त्वों में समाहित अग्नि तत्त्वों का नाम वायव्याग्नि है, जो हवा के साथ मिश्रित रूप धारण कर दाहकता उत्पन्न करने में समर्थ होती है, साथ ही साथ भूताग्नि के अंगभूत चतुर्थ स्थान पर परिगणित होती है।

नाभसाग्नि – अन्तरिक्ष तत्त्व के भीतर रहने वाली अग्नि का नाम अन्तरिक्षाग्नि या नाभसाग्नि है, जो भूताग्नि के अंग के रूप में परिगणित पञ्चम अग्नि है।

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान 15.11 में वर्णित पञ्च भूताग्नियों को बहुत ही कौशलपूर्ण ढंग से दर्शाया गया है , जो निम्न हैं –

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः।
पञ्चाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीन्पचन्ति हि।।

धात्वग्नि

जैसा कि नाम से ही पता चलता है कि ये अग्नि धातुओं या ऊतकों की अग्नि है, जिसकी सम्पूर्ण शरीर के रूप, संरचना तथा स्वास्थ्य को सन्तुलित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शरीर में पाए जाने वाली सात प्रकार की धातुओं से निर्मित अग्नि धात्वग्नि के नाम से जानी जाती है। 1. रस, 2. रक्त, 3. मांस, 4. मेद, 5. अस्थि, 6. मज्जा, और 7. शुक्र, उक्त इन सात धातुओं से सात अग्नियाँ शरीर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण अवयवों को दर्शाती हैं।

रस धात्वग्नि – हमारे शरीर में यह रस धातु प्राथमिक होती है जो खाद्य संवाहन का कार्य करती है। प्रमुखता की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें जल का उपादान होता है।

स्वाद के आधार पर छः प्रकार के रस प्राप्त होते हैं, जो क्रमशः 1. मधुर (मीठा), 2. अम्ल (खट्टा), 3. लवण (नमकीन), 4. कटु (चरपरा), 5. तिक्त (कड़वा), तथा 6. कषाय (कसैला) हैं। रस जल का स्वाभाविक गुण है। रसों की उत्पत्ति तब होती है जब पञ्च-महाभूतों का मिश्रण प्रत्येक रस में भिन्न-भिन्न रूपों में प्राप्त होता है। जिसका वर्णन निम्नवत् है –

पृथ्वी + जल = मधुर रस,	पृथ्वी + अग्नि = अम्ल रस
जल + अग्नि = लवण रस,	वायु + अग्नि = कटु रस
वायु + आकाश = तिक्त रस,	वायु + पृथ्वी = कषाय रस

रक्त धात्वग्नि – रक्त आक्सीजन तथा पोषक तत्त्वों को कोशिकाओं तक सहजता से पहुँचाने वाला वह तरल पदार्थ है जिससे हमारा शरीर अच्छे ढंग से क्रियान्वित होता है। साथ ही साथ कार्बनडाइआक्साइड एवं अन्य अपशिष्ट उत्पादों को शरीर से बाहर करने में अपनी मुख्य भूमिका निभाता है। इसमें रक्त-निर्माण तथा रक्त-सञ्चरण प्रमुख है। विज्ञान के अनुसार स्वस्थ मनुष्य के शरीर में रक्त (blood) लगभग 4.5 लीटर से 5 लीटर तक होता है तथा Ph मान 7.4 होता है। हमारा शरीर रक्त के सञ्चार के कारण ही गतिमान तथा स्फूर्तिमान होता है। ये सारी प्रक्रिया रक्तधातु में अग्नि होने का पूर्ण प्रमाण है।

---

[1] गोविन्दवैजापुरकर, 1941, *तर्कसङ्ग्रह*, द्रव्यलक्षणनिरूपण, पृ॰ 8-9।

मांस धात्वग्नि – इसमें शरीर की मांसपेशियों के निर्माण के साथ-साथ उनकी संरचनाओं को सम्यक् बनाने में मदद मिलती है। आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार मांस धातु का मुख्य कार्य शरीर के आन्तरिक अंगों को बाहरी तथा पर्यावरणीय कारकों से सुरक्षा प्रदान करना है –

लेपः उपदेहो मांसस्य कर्म। तदुपलिप्तन्यास्थिनि चेष्टं क्षमन्ते।[2]

मेद धात्वग्नि – यह धात्वग्नि स्नायु एवं त्वचा की सुरक्षा के साथ-साथ पदार्थ निर्माण एवं विस्तार कार्य में सहयोग करती है।

अस्थि धात्वग्नि – इसका कार्य शरीर की हड्डियों का निर्माण करना तथा उनकी संरचना को बनाए रखना है।

मज्जा धात्वग्नि – यह धातु हड्डियों में पाई जाने वाली मज्जा धातु है जो हड्डियों का निर्माण करती हुई हमारे शरीर को मजबूत बनाती है।

शुक्र धात्वग्नि – इस धात्वग्नि के कारण पुरुषों में शुक्राणुओं का निर्माण होता है तथा प्रजनन की क्षमता मजबूत होती है।

तनूनपात् (अग्नि)

अग्नि को तनूनपात् के नाम से भी जाना जाता है। यह शब्द *ऋग्वेद* में आठ बार आया है। यज्ञों में अग्नि का आह्वान होता है, जिसमें विभिन्न नामों से आहुतियां दी जाती हैं। *निघण्टु* 5.2 में तो यह शब्द स्वतन्त्र रूप से वर्णित है।

उपनिषदों में तनूनपात् तो सूक्ष्मस्वरूपात्मा है जिसका वर्णन *कठोपनिषद्* 1.3.12 में है –

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

तनूनपात् को कुमार रूप में दर्शाया गया है। उपनिषदों में आध्यात्मिक अवलोकन करें तो कुमार अङ्गुष्ठमात्र पुरुष अधूमक ज्योति के समान है वे भूत-भव्य के ईशान, वर्तमान, भूत, एवं तनू के अन्दर मध्वद या मधुभोजी जीवात्मा के रूप में विद्यमान हैं।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।।
– *कठोपनिषद्* 2.1.13

तनूनपात् के लिए *ऋग्वेद* में वर्णित ऋचा 1.142.2 निम्नवत् है –

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात्।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः।।

हे तनूनपात्! मेधावी, स्तुतिकर्ता, हव्यदाता मेरे जैसे यजमान के घृत तथा मधु से सम्पन्न यज्ञ में आकर पूर्ण होने तक निवास करें।

क्रव्यभुक् अग्नि

वह अग्नि जो क्रव्य (मांस) का भक्षण करती है, उसे क्रव्यभुक् के नाम से जाना जाता है। आशय यह है कि जो अग्नि अन्त्येष्टि

---

[2] *अष्टाङ्गहृदयम्*, सूत्रस्थानम् 11.4 (आनन्दगिरिटीका)।

संस्कार में शव दहन करती है, वह क्रव्यभुक् कहलाती है। वेदों में अनेक ऋचाएं प्राप्त होती हैं, जो इस अग्नि के कार्यों को दर्शाती हैं –

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।
– *ऋग्वेद* 10.16.9

प्रसंगवश अग्नि का वर्णन आता है तो ऋषि कहते हैं कि मैं मांस जलाने वाली तेज अग्नि को दूर करता हूँ। पाप को वहन करने वाली वह अग्नि यम देश में चली जाए, ऐसा समझकर हम देवों के लिए हव्य ले जाते हैं।

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स धर्ममिन्वात्परमे सधस्थे।।
– *ऋग्वेद* 10.16.10

मांस जलाने वाली चिताग्नि तुम्हारे घर में प्रवेश कर गई है, इन्हें मैं घर से निकालता हूँ, अन्य जातवेद अग्नि को मैं देखता हुआ उत्तम स्थान में यज्ञ के लिए प्राप्त करता हूँ। यह अग्नि हमारे यज्ञ को स्वर्ग में पहुँचाए।

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ।।
– *ऋग्वेद* 10.16.11

मैं उन्हीं के पास हवन सामग्री ले जाता हूँ, जो अग्नि श्राद्ध सामग्री को पितरों तक वहन करने वाले तथा देवपितरों का यज्ञ करने वाले हैं।

अथर्ववेद संहिता में वर्णित ऋचाओं के कुछ उदाहरण अधोलिखित हैं जो क्रव्यभुक् अग्नि से सम्बन्धित हैं –

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम्।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्यग्निम्।।
– 3.21.8

जिनके हाथ में स्तोताओं को देने के लिए सुवर्ण रहता है, ऐसे सविता, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र, अग्नि, तथा विश्वेदेवों का मैं अंगिरा ऋषि आह्वान करता हूँ, वे सब इस मांस भक्षण करने वाली अग्नि को शान्त करें।

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः।
अथो यो विश्वदाव्यऽस्तं क्रव्यादमशीशमम्।।
– 3.21.9

सविता आदि देवताओं की कृपा से क्रव्यभुक् अग्नि शान्त हो, पुरुषों को हिंसित करने वाली अग्नि सुखकारी हो, जो सबको जलाने वाली क्रव्यभक्षणकारी अग्नि है उसे मैं शान्त कर दिया हूँ।

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः।
वातः पर्यन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।
– 3.21.10

सोमलता जिन पर प्रवर्तमान है, इस प्रकार के मूञ्जवान आदि पर्वत पर शयन करने वाले जल, वायु, तथा बादलों ने मांसभक्षक अग्नि को शान्त कर दिया।

उपसंहार

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेख के अन्तर्गत विविध प्रकार की अग्नियों का वर्णन अंकित है। नानाविध अग्नियां जैसे – तनूनपात्, क्रव्यभुक्, वैश्वानर, जातवेद, त्रिणाचिकेत, जठराग्नि, भूताग्नि (पार्थिवाग्नि, आप्याग्नि, तैजसाग्नि, वायव्याग्नि, नाभसाग्नि), धात्वग्नि (रस धात्वग्नि, रक्त धात्वग्नि, मांस धात्वग्नि, मेद धात्वग्नि, अस्थि धात्वग्नि, मज्जा धात्वग्नि, तथा शुक्र धात्वग्नि) का संक्षेप में वर्णन है। भविष्यपुराणोक्त विविध अग्नियों के नाम सन्निहित हैं जो विभिन्न कार्यों के आधार पर नानाविध नामों से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अग्नि को एक होते हुए भी कार्य विभिन्नता के कारण यथासम्भव अलग-अलग दर्शाया है। आशा है कि इससे अधिकाधिक सहृदयों को लाभ होगा।

जल प्रदूषण समस्या के वैदिक उपाय

*बृहस्पति पाण्डेय**

शोधपत्र सार – वेद भारतीय संस्कृति, चिन्तन और विज्ञान की आदिकालीन धरोहर हैं। इनमें जीवन के लौकिक और पारलौकिक सभी पक्षों को समाहित करते हुए, मानव और प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध को गहराई से समझाया गया है। वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार जल केवल भौतिक संसाधन नहीं, अपितु दिव्यता और जीवन-शक्ति का प्रतीक है। अतः वेदों में जल की महिमा, पवित्रता, उपयोगिता एवं शुद्धता बनाए रखने के लिए अनेक सूक्तियाँ उपलब्ध हैं। *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* में जल को रोगनाशक, आरोग्यप्रद तथा शान्तिदायक तत्त्व के रूप में वर्णित किया गया है। साथ ही, जलप्रदूषण से उत्पन्न नैतिक, सामाजिक एवं भौतिक संकटों की पूर्वकल्पना भी मिलती है। वर्तमान शोधकार्य का उद्देश्य यह है कि वैदिक ग्रन्थों में वर्णित जलविज्ञान के आधार पर आधुनिक युग की जलप्रदूषण समस्या को समझा जाए और समाधान के मार्ग खोजे जाएँ। स्मृतियों तथा पुराणों में उल्लिखित व्यवहारिक उपाय, यज्ञ, मन्त्र, जलाशयों की स्वच्छता, वनरोपण, तथा जल का सदुपयोग आदि विषयों पर विचार कर यह अध्ययन दर्शाता है कि वैदिक परम्परा में निहित ज्ञान आज भी पर्यावरण-संरक्षण हेतु मार्गदर्शक हो सकता है। प्रस्तुत शोध न केवल वैदिक स्रोतों की वैज्ञानिकता को स्पष्ट करता है, अपितु यह भी सिद्ध करता है कि आधुनिक संकटों के निवारण में प्राचीन भारतीय चिन्तन पर्याप्त सक्षम है।

शब्दकुञ्जिका – जलतत्त्व, जलभेद, जलशोधनोपाय, जलप्रदूषण, जलप्रदूषण का कारण, जल के औषधीय गुण, जलमहिमा।

भूमिका

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वंदे विद्यातीर्थं महेश्वरम्।।[1]

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (*मनुस्मृति* 2.6) भारतीय चिन्तन परम्परा का आधार "वेद" है। वेद में निहित सम्पूर्ण ज्ञान एवं विज्ञान को समझने के लिए सर्वप्रथम उनके षडङ्गों[2] का अध्ययन करना चाहिए। वेद के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए आचार्य विद्यारण्य कहते हैं –

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः[3]।

अर्थात् आधिभौतिक,आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों रूपों में सुख की प्राप्ति तथा इन्हीं तीनों रूपों में दुःख कि निवृत्ति का अलौकिक उपाय बताने वाला ग्रन्थ "वेद" है।

वेदार्थावबोधन के सम्बन्ध में आचार्य यास्क कहते हैं – "न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा" (*निरुक्त* 13.10) अर्थात्

* Former Research Fellow, Ashok Singhal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <pandeyvrihaspati@gmail.com>

[1] *ऋग्वेदभाष्यभूमिका*, मङ्गलाचरण, मन्त्र 2।

[2] छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, एवं व्याकरण।

[3] *तैत्तिरीय संहिता*, प्र० खण्ड, प्र०भाग, भट्टभास्करभाष्य-सायण (विद्यारण्य) भाष्यसमेता, पृ०2।

जो ऋषि या तपस्वी नहीं होगा अर्थात् जो ऋषिवत् आचरण नहीं करेगा उसको वेदमन्त्रों के अर्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि मन्त्रों में कुछ गूढ़ और रहस्यात्मक बातें रखी गई हैं। जो कठोर परिश्रम करेगा वही उस रहस्य को समझ सकेगा। वेद ही मानव मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति के स्रोत हैं। विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को ही है। वेद ही विश्वबन्धुत्व, विश्व-कल्याण और विश्व-शान्ति के प्रथम उद्घोषक हैं। वेद ही मानव मात्र के लिए विकास का मार्ग प्रशस्त करते हुए सुख और शान्ति की स्थापना कर सकते हैं । वेदों में जहाँ धर्म, आचार शिक्षा, नीति शिक्षा, सामाजिक जीवन, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेदादि विषयों से सम्बन्धित पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं; वहीं विज्ञान के विविध अङ्गों से सम्बद्ध सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वेदों में भौतिक, रसायन, वनस्पति, जन्तु विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि, गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वृष्टि विज्ञान, पर्यावरण एवं भूगर्भ विज्ञान से सम्बद्ध सामग्री बहुलता से प्राप्त हैं। प्रस्तुत लेख "जल प्रदूषण समस्या के वैदिक उपाय" में *ऋग्वेद* एवं *अथर्ववेदा*दि सहित स्मृति एवं पुराणादि ग्रन्थों में प्राप्त जल सम्बन्धित कुछ तथ्यों को समझकर यथामति जल प्रदूषण मुक्त करने के उपाय पर प्रकाश डाला गया है।

जल शब्द का निर्वचन एवं प्रथम सृष्टि के रूप में वर्णन

जल शब्द "जल घातने" धातु से बना है "घातनं तैक्ष्ण्यम्" इति वृत्तिः। जलति शीतं भवति । यद्वा, जायत् इति ज: ।

जै: जाते: प्राणिभिः लायते आदीयते इति जलम्। जायतेऽस्माल्लीयतेऽस्मिनिति जलम्[4]

अर्थात् जल से ही सृष्टि होती है तथा सृष्टि का लय भी इसी में हो जाता है।

जल शब्द अप: का ही पर्याय रूप है। अप् शब्द "आप्लृ व्याप्तौ" धातु से बना है, जिसका अर्थ है सर्वत्र व्याप्ति।

वैदिक वाङ्मय में जल की प्रथम सृष्टि के सन्दर्भ में बहुत से उद्धरण प्राप्त हैं। *ऋग्वेद* के एक मन्त्र "तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्" (10.129.3) में सर्वप्रथम सृष्टि के पूर्व की अवस्था को अन्धकारमय बताया गया है। उस समय सर्वत्र "अप्रकेत" सलिल था। आचार्य विद्यारण्य ने अप्रकेत का अर्थ अप्रज्ञायमान (जो बुद्धि का विषय नहीं है) किया है। *ऋग्वेद* में सलिल के अम्भस्, आपस्, समुद्र आदि अनेक पर्यायवाची शब्द उपलब्ध हैं। *तैत्तिरीय संहिता* भी प्रारम्भ में जल (सलिल) कि सत्ता स्वीकार करती है – "आपो ह वा इदमग्रे सलिलमासीत्" (5.7.5, 7.1.5.1) इसके अतिरिक्त *बृहदारण्यक उपनिषद्* 5.5.1 में भी कहा गया है कि पहले जल ही था, जल ने सत्य का सृजन किया, सत्य ने ब्रह्म का तथा ब्रह्म ने प्रजापति का – "आप एवेदमग्र आसुस्ता आप: सत्यमसृजन्त, सत्यं ब्रह्म, ब्रह्म प्रजापतिम्"। सृष्टि के उत्पत्ति-क्रम का उल्लेख *तैत्तिरीय उपनिषद्* 2.1.1 में भी प्राप्त है जहाँ अग्नि से जल की उत्पत्ति बताई गई है –

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत:। आकाशाद्वायु: । वायोरग्नि:। अग्नेराप:। अद्भ्य: पृथिवी। पृथिव्या ओषधय:। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुष: (*तैत्तिरियारण्यक* 8.1 में भी)

स्मृति एवं पुराणादि ग्रन्थों में भी जल की प्रथम सृष्टि के रूप में उल्लेख प्राप्त है –

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।।[5]

अर्थात् परमात्मा ने अपने शरीर से विभिन्न प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से संकल्प करके पहले जल की सृष्टि की।

---

[4] *निरुक्तम् निघण्टु*, प्रथम अध्याय, पृ॰148।

[5] *मनुस्मृति* 1.7

जल का दूसरा नाम है "नार" क्योंकि जल की उत्पत्ति भगवान् "नर" से हुई है। वह पूर्व काल में भगवान् का अयन हुआ, इसलिए वे नारायण कहलाते हैं –

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदष्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।।[6]

ऐसे अनेक प्रमाण वेदादि ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

जल का महत्त्व

ऋग्वेद एवं *अथर्ववेद* आदि ग्रन्थों में जल के महत्त्व एवं प्रशंसा से सम्बन्धित अनेक मन्त्र उपलब्ध हैं। जल सभी जीवों के जीवन का आधार है। इसलिए कहा जाता है कि जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है। जल से ही जैविक सृष्टि का आरम्भ हुआ। जल से ही हमें अन्न, औषधि इत्यादि की प्राप्ति होती है। जल आज विश्व के विभिन्न शोध संस्थानों में शोध का एक विषय बना हुआ है। वैज्ञानिकों का समूह पृथ्वी से अन्य मंगल आदि ग्रहों पर जल की खोज में सक्रिय है। किन्तु उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। केवल पृथ्वी ग्रह पर ही पीने योग्य जल प्राप्त है इसलिए इस जल का महत्त्व मानव जाति को समझना होगा। सनातन संस्कृति जल को देवता-रूप में देखती है तथा नदियों तथा तीर्थों के जल का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसी का उल्लेख करते हुए महाकवि भवभूति अपनी रचना *उत्तमरामचरितम्* 1.13 में कहते हैं – "तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः"। हमारा पवित्रीकरण, प्रोक्षण और आचमन जल से ही आरम्भ होता है। हमारा कोई भी संकल्प जल लिए बिना पूर्ण नहीं होता। *ऋग्वेद* के एक मन्त्र "अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥" (1.23.19) में आचार्य सायण जल के महत्त्व के विषय में चर्चा करते हुए कहते हैं कि – हे मनुष्यों! अमृत-तुल्य तथा गुणकारी जल का सही प्रयोग करने वाले बनो। जल की प्रशंसा और स्तुति करने के लिए सदैव ही तैयार रहो।

नारायणोपनिषद् में भी जल की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि –

आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोऽमृतमापोऽन्नमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दांस्यापो ज्योतींष्यापो यजुंष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवस्सुवराप ओम् – *नारायणोपनिषद* 14.1

अर्थात् जल ही सम्पूर्ण जगत् है। जल ही सम्पूर्ण भूत है। जल ही प्राण है। जल ही पशुगण है। जल ही अमृत है। जल ही अन्न है। जल ही सम्राट् (सम्यक् राजतीति सम्राट् – लोकों का स्वामी ब्रह्मा आदि) है। जल ही विराट् (विशिष्य राजतीति विराट् व्यूह आदि) है। जल ही स्वराट् (स्वयमेव राजतीति स्वराट्) स्वतन्त्र राजा है। जल ही छन्द है। जल ही प्रकाशक है। जल ही सत्य (निर्विकार) है।

गीता 7.8 में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि – "रसोऽहमप्सु कौन्तेय" (जल में जो रस है वो मैं ही हूँ)। पुराणों में भी जल के महत्त्व का विशेष रूप में वर्णन प्राप्त होता है –

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः ।
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ।।
– *लिंग पुराण* 54.67

[6] *मनुस्मृति* 1.10

जल संरक्षण के सन्दर्भ में *ऋग्वेद* 7.49.2. में कहा गया है कि –

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।

अर्थात् जो जलधाराएँ आकाश में उत्पन्न या सूर्य, विद्युतादि से उत्पन्न और जो बहती हैं, जो खनित्रिमा (खोदकर) प्राप्त की जाएं और जो स्वयं भूमि से उत्पन्न हुई हों, जो समुद्र, आकाश से आने वाली या समुद्र को जाने वाली शुद्ध पवित्र करने वाली जलधाराएँ हैं; वे उत्तम गुणों से युक्त होकर इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें।

जल तत्त्व में औषधीय गुण

अथर्ववेद के मन्त्रों (19.2.1-3) में जल के दस विभिन्न स्रोतों का वर्णन प्राप्त होता है जो औषधीय गुणों से युक्त एवं मानव जीवन के लिए कल्याणकारी हैं –

शं त आपो हैमवती: शमु ते संतूत्स्या:।
शं ते सनिष्यदा आप: शमु ते संतु वर्ष्या:।।

शं त आपो धन्वन्या३: शं ते सन्त्वनूप्या:।
शं ते खनित्रिमा आप: शं याः कुम्भेभिराभृता:।।

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपस:।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि।।

1. **हैमवती आप**: – "हिमवत: पर्वतादागताः" अर्थात् हिमयुक्त पर्वत से बहने वाला जल। एक मन्त्र में वर्णन प्राप्त होता है कि हिमयुक्त पर्वतों से बहकर विभिन्न औषधियों से युक्त समुद्र में एकत्र होने वाले जल हृदय की जलन को शान्त करते हैं अर्थात् हृदय रोग का शमन करते हैं।[7]
2. **उत्स्या आप:** – "उत्स: प्रस्रवणम् तत्र भवाः" अर्थात् मूल स्रोत से प्राप्त जल। इस जल के सेवन से प्राणी विकार रहित होता है। जब जल के गुणों के प्रतिकूल कार्य किया जाता है तब जल हानिकारक होकर विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है।
3. **सनिष्यदा आप:** – "सर्वदा स्यन्दमानाः सततं स्रवन्त्य आपः" अर्थात् निरन्तर बहने वाला जल । शास्त्रों में जल का स्वभाव ही प्रवहमान बतलाया गया है। प्रवहमान जल सर्वदा शुद्ध एवं लाभकारी होता है।
4. **वर्ष्या आप:** – "वर्षासु भवा आपः" अर्थात् वर्षा का जल। विभिन्न शास्त्रों में वर्षा के जल को सबसे शुद्ध एवं कल्याणकारी बतलाया गया है।
5. **धन्वन्या आपः** – "धन्वनि मरुदेशे भवा आपः" अर्थात् मरुभूमि (मरुस्थल-रेतीले प्रदेशों) से प्राप्त जल।
6. **अनूप्या आपः** – "अनुगता आपो यास्मिन् देशे। अनूपे जल समृद्धे भवा आपः" अर्थात् अनूप देश का जल, ऐसे प्रदेश का जल जहाँ दलदल अधिक हो।

---

[7] *अथर्ववेद* 6.24.1 (*विद्यारण्यभाष्य* सहित)।

7. **खनित्रिमा आपः** – "खननेन निर्वर्त्याः कूपतटाकादिस्था आपः" अर्थात् खनन के द्वारा प्राप्त कुआँ-तालाब आदि में स्थित जल। प्राकृतिक जल सेवन से रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।

8. **कुम्भेभिराभृता आपः** – "कुम्भेभिः कुंभैः आभृताः आहृताः आनीता या आपः" अर्थात् वह जल जो मटको (घड़ों) द्वारा लाया और ले जाया जाता है।

9. **अनभ्रय आपः** – "अभ्रिः खननसधानं कुद्दालादि तद्रहिताः संतः" अर्थात् किसी यन्त्र से निकाला गया जल।

10. **भिषक्तराः** – "भिषजो हि औषधानि अन्यतः समानीय चिकित्सन्ति। अपां तु मध्ये भेषजानि विद्यंत इति लौकिकेभ्यः चिकित्सकेभ्याः विशिष्टा वैद्याः।" चिकित्सक कहीं और से औषधि लाकर उपचार करते हैं किन्तु जल में स्वयं औषधीय गुण हैं। इसलिए जल को वैद्यों का वैद्य कहा जाता है।

उपर्युक्त वर्णित विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले जल देवता से ऋषि प्रार्थना करते हैं कि वे जल हमारे लिए कल्याणकारी हों। ऐसा तभी सम्भव है जब हम जल को उसी रूप में ग्रहण करेंगे, जिस रूप में उसकी महत्ता है।

अथर्ववेद के ही एक और मन्त्र "अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम। अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनी:"[8] की व्याख्या करते हुए आचार्य विद्यारण्य कहते हैं कि – जल में अमृत तत्त्व है एवं सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने का औषधीय गुण भी है।औषधियों में प्राप्त रस ही रोगों का शमन करते हैं और वे रस जल ही हैं । उदाहरणस्वरूप कहा गया है –

1. "मूर्छितस्य उदकावसेकेन उत्क्रान्तानामपि प्राणानां पुनः शरीरे प्रवेशदर्शनात् अप्सु अमृतममरणसाधनमस्तीति गम्यते।" अर्थात् जिस प्रकार मूर्च्छित प्राणियों में जल के छिड़काव से दूर गया हुआ प्राण भी शरीर में पुनः प्रवेश होते दिखता है, इसमें जल के अमृत तत्त्व का स्पष्ट स्वरूप दिखता है।
2. जल के उचित प्रयोग से हम रोगों को रोकने वाले बनते हैं और उत्पन्न रोगों को नष्ट भी कर सकते हैं।
3. जलों के प्रशस्त गुणों से अश्व शक्तिशाली बनते हैं तथा गाएं शक्तिशालिनी होती हैं। यहाँ अश्व पुरुष का प्रतीक है और गावः स्त्री का प्रतीक है। पुरुष और स्त्री इन जलों के ठीक प्रयोग से ही शक्ति-सम्पन्न बनते हैं। वस्तुतः जल ही शरीर में शक्ति के रूप में निवास करते हैं। पुरुष में यही जल वीर्य और स्त्री में रज रूप में रहते हैं। शक्ति ही मनुष्य को निरोग बनाती है और अगली सन्तति को जन्म देकर यह शरीर के दृष्टिकोण से भी अमर बनाती हैं।

अथर्ववेद में ही एक स्थान पर जल के कार्यों द्वारा उनके पाँच अलग-अलग गुणों का वर्णन प्राप्त होता है – "आपो यद वो तपः, हरः, अर्चिः, शोचिः, तेजः .... यं वयं द्विष्मः"।[9]

तपः – गर्म होना, गर्मी देना, ताप और सन्ताप।

हरः – दोष या मल को दूर करना।

अर्चिः – तपाना, रगड़ से विद्युत् उत्पादन और उत्तेजना देना।

शोचिः – प्रकाश देना, दाहकत्व और शोधकत्व।

---

[8] *अथर्ववेद* 1.4.4, *तैत्तिरीय संहिता* 5.6.2.2।

[9] *अथर्ववेद* 2.23.1-5 (*विद्यारण्यभाष्य* सहित)।

तेजः – तेज, कान्ति, सौन्दर्य, लावण्य और प्रसन्नता देना।

उपर्युक्त पाँचों गुणों के आधार पर जल देवता हमारे सभी रोगों का शमन करते हुए हमें आरोग्य प्रदान करते हैं।

जल प्रदूषण के मुख्य कारण

1. शहरीकरण जैसे अधिक मात्रा में वृक्षों को काटना।
2. सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज़ों का दुरुपयोग।
3. नदियों के प्रवाह को रोकना।
4. वायु प्रदूषण।
5. जनसंख्या वृद्धि।
6. बड़े-बड़े औद्योगिक यन्त्रों का प्रयोग।
7. शुद्ध जल में मल इत्यादि का प्रवाह।

जल शुद्धिकरण के उपाय

ऋग्वेद एवं *अथर्ववेद* में प्राप्त मन्त्र "अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्" ।[10] की व्याख्या में प्रदूषित जल को शुद्ध किए जाने के क्रम में कहा गया है कि वायु तथा सूर्य दोनों जल को शुद्ध करते हैं। सूर्य की किरणें जल में प्राप्त हानिकारक कीटाणुओं को नष्ट कर जल को शुद्ध करती हैं। जो जल सूर्य के सम्पर्क में निरन्तर रहते हैं, वे गुणयुक्त एवं प्रदूषण मुक्त तथा मानव जीवन के लिए आरोग्य प्रदान करते हैं। सूर्य के सम्पर्क में स्थित जलों के इस गुण का इतना महत्त्व है कि वे प्रयुक्त होने पर हमारी यज्ञीय भावना की वृद्धि करते हैं। वे जल जो सदा अन्धकार वाले प्रदेश में होते है, उनमें शरीर व मन को निर्दोष बनाने के गुणों में भी कमी आती है । नदियों के जल का यही महत्त्व है कि वे सदा सूर्य-किरणों के सम्पर्क में हैं, इससे उस जल के रोग-कृमियों का नाश हो जाता है और उनमें प्राणदायी तत्त्व की स्थापना हो जाती है।

एक अवान्तर प्रकरण में जल सम्बन्धित विषय पर चर्चा करते हुए आचार्य चाणक्य कहते हैं – "नास्ति मेघसमं तोयं" (*चाणक्यनीति* 5.17) अर्थात् बादलों से बरसते हुए जल के समान कोई दूसरा स्वच्छ जल नहीं होता किन्तु वर्तमान परिस्थिति में इसका ह्रास हो रहा है, वायु प्रदूषण के कारण वर्षा का अभाव देखने को मिल रहा है जिसके कारण जल अत्यधिक रूप में प्रदूषित हो रहा है। जल प्रदूषण दूर करने के लिए सर्वप्रथम वायु प्रदूषण को रोकना होगा। वहीं एक स्थान पर आचार्य चाणक्य कहते हैं कि "शुचि भूमिगतं तोयम्" (*चाणक्यनीति* 8.17) अर्थात् भूमि के अन्दर का जल शुद्ध होता है।

जल शुद्धिकरण सम्बन्धित विषय पर चर्चा करते हुए आचार्य मनु कहते हैं – "नदी वेगेन शुद्ध्यति" (*मनुस्मृति* 5.108) अर्थात् निरन्तर अपने वेग से बहने वाली नदियां स्वयं स्वच्छ होती रहती हैं इसलिए नदियों के प्रवाह को रोकने का प्रयास कभी नहीं करना चाहिए। आधुनिक यन्त्रों द्वारा बाँध इत्यादि बनाकर जल के प्रवाह को रोकने का जो प्रयास हो रहा है; भविष्य में उसके अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं । *ऋग्वेद* के एक मन्त्र "अपो देवीरुप ह्वये यत्र गाव: पिबन्ति न:। सिन्धुभ्य: कर्त्वं हवि:"[11] में कहा गया है कि नदियों आदि के जल को प्रदूषण मुक्त रखने का उपाय है "यज्ञ"। वेदों में कहा गया है कि

---

[10] *अथर्ववेद* 1.4.2, *ऋग्वेद* 1.23.17 (*विद्यारण्यभाष्य* सहित)।

[11] *ऋग्वेद* 1.23.18 (*विद्यारण्यभाष्य* सहित)

यज्ञ ही वह विधि है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाया जा सकता है। *शतपथ ब्राह्मण* में यज्ञ को प्रजापति की संज्ञा दी गई है और सभी जीवों का रक्षक भी कहा गया है "यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति" (9.4.1.11) इसलिए इसको भुज्यु कहा गया है। श्रुतियों में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है – "यज्ञोवै श्रेष्ठतमं कर्म" (1.7.1.15)। यज्ञ से जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं शारीरिक रोगों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। *यजुर्वेद* में कहा है कि यज्ञ सृष्टिचक्र का केन्द्र है "यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः" (*तैत्तिरीय ब्राह्मण* 3.9.5.5)। यज्ञ ही है जो सम्पूर्ण विश्व में सन्तुलन बनाए रखता है, आज ग्लोबल वार्मिंग के कारण मौसम चक्र असन्तुलित हो रहा है। वर्षा के अभाव में भू-जल स्तर नीचे जा रहा है। *छान्दोग्योपनिषद्* में यज्ञ को परम पवित्रकारी एवं पर्यावरण प्रदूषण के निवारण का सर्वोत्तम साधन बताया गया है – "एष ह वै यज्ञो योऽयं पव त एष ह यन्निदँ सर्वं पुनाति। ... तस्मादेष एव यज्ञः" (4.16.1)। यज्ञ पर्यावरण को सन्तुलित कर प्रदूषण को समाप्त करता है। पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए वैदिक ऋषियों ने जिस मार्ग का अन्वेषण किया, उसकी महत्ता आज भी उतनी ही है जितनी तब थी । प्रकृति प्रेम वेदों की वह शिक्षा है जिसे अपनाकर मानव विषाक्त हो चुके पर्यावरण को अमृतमय बना सकते हैं। यज्ञ की सुगन्धित वायु जल के प्रदूषण को नष्ट करती है। उन जल देवताओं को हवि प्रदान करना चाहिए जो निरन्तर बहती हुई आ रही हैं जिस जल का पान नदी आदि तटों पर हमारी गाएं कर रही हैं। यहाँ हवि प्रदान करने से स्पष्ट होता है कि जब हम यज्ञादि करते हैं तो हमारा वातावरण शुद्ध होता है और नदियों का प्रवाह भी निरन्तर शुद्धता से होता रहता है।

पद्म पुराण के क्रियायोगसार खण्ड में अध्याय 8 के श्लोक 8-10 में जल प्रदूषण समस्या के मुख्य कारण सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए गए हैं जिनमें कहा गया है कि –

मूत्रं वाथ पुरीषं वा गङ्गातीरे करोति यः ।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।

श्लेष्माणं वापि निष्ठीवं दूषितं वाश्रु वा मलम् ।
गंगातीरे त्यजेद्यस्तु स नूनं नारकी भवेत् ।।

उच्छिष्टं च कफं पित्तं गङ्गागर्भे तु यस्त्यजेत्।
स याति नरकं घोरं ब्रह्महत्या च विन्दति।।

अर्थात् जल में थूकना, मूत्र विसर्जित करना, कूड़ा-करकट डालना, गन्दा जल डालना तथा नदियों के किनारे शौच आदि करना महापाप है। ऐसा करने वाला नरक में जाता है और उसे ब्रह्म-हत्या का दोष लगता है।

आचार्य मनु अपनी *मनुस्मृति* (11.63-66) में कुछ ऐसे विषयों का प्रतिपादन करते हैं, जिनको न करने पर प्रकृति का संरक्षण और प्रदूषण की विभिन्न समस्याओं का समाधान किया जा सकता है –

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम्।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ।।

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ।।

अनाहिताग्निना स्तेयमृणानामपनपक्रिया।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ।।

धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं *चोपपातकम्*।।

1. **बड़े-बड़े यन्त्रों का प्रयोग करना** – बड़े-बड़े कारखानों एवं यन्त्रों को प्रदूषण का कारण मानते हुए इन्हें लगाना पाप माना है। इनसे वायु प्रदूषण के साथ ही जल प्रदूषण भी होता है। कारखानों का गन्दा पानी नदी-तालाब आदि को दूषित कर प्रदूषण फैलाता है।
2. **ईंधन के लिए हरे पेड़ों को काटना** – वृक्षों का यह विशेष गुण है कि वह मनुष्यों से उत्सर्जित कार्बन-डाईऑक्साइड को ग्रहण कर उन्हें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे इन वृक्षों के काटने से अब वातावरण में कई प्रकार की ज़हरीली गैसें व्याप्त हो चुकी हैं, जिसके कारण वायु प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। वायु प्रदूषण भी जल प्रदूषण का एक कारण है, इसको कम करने पर ही जल प्रदूषण को कम किया जा सकता है। इसलिए वृक्षों के रक्षण का विधान शास्त्रों में है।
3. **यज्ञ करने में उपेक्षा भाव रखना** – यहाँ यज्ञ का तात्पर्य श्रेष्ठ कर्म से है, जो वातावरण के अनुकूल हो। इनकी उपेक्षा करने पर वातावरण की हानि होती है।
4. **असत् (मिथ्या) शास्त्रों को पढ़ना** – ऐसे शास्त्रों के अध्ययन से मनुष्य धर्म-अधर्म के ज्ञान से अवगत नहीं हो पाता। धर्म के पालन से सभी भूतों (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी) का रक्षण तथा अधर्म के पालन से ही पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

उपरोक्त वर्णित निन्दनीय कार्य करने वाला प्राणी सदैव प्रकृति के प्रतिकूल कार्य करता है, इसलिए ऐसे प्राणी उपपातक कहलाते हैं और इनके प्रायश्चित्त का भी विधान किया गया है।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* 2.36.28 में जलाशय आदि को दूषित करने पर अलग-अलग दण्ड का विधान किया गया है –

पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डा:। मुत्रष्वर्धदण्डा:।

1. राजमार्गों पर मल त्याग करने वालों पर एक पण दण्ड का विधान किया गया है।
2. पवित्र तीर्थ स्थलों पर मल त्याग करने वालों पर दो पण दण्ड का विधान किया गया है।
3. जलाशयों पर मल त्याग करने वालों पर तीन पण दण्ड का विधान किया गया है।
4. देवालयों पर मल त्याग करने पर चार पण दण्ड का विधान किया गया है और इन्हीं स्थानों पर कोई व्यक्ति मूत्र विसर्जित करे, तो उस पर इन सबका आधा दण्ड किया जाना चाहिए।

वर्तमान समय को देखते हुए यदि कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में वर्णित दण्ड के विधान को अपनाया जाए तो धीरे-धीरे प्रदूषण समस्या का निवारण किया जा सकता है।

सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 45.12 में जलशुद्धिकरण विषय पर चर्चा करते हुए आचार्य सुश्रुत कहते हैं –

व्यापन्नस्य चाग्निक्कथनं सूर्यातपप्रतापनं तप्तायःपिण्ड़सिकतालोष्ट्राणां वा निर्वापणं प्रसादनञ्च कर्तव्यं नागचम्पकोत्पलपाटलपुष्पप्रभृतिभिश्चाधिवासनमिति।

1. जल को अग्नि पर उबालना – जल को अग्नि पर उबालने से उसमें स्थित सर्व-विकारी जीवाणु तथा कृमि नष्ट हो जाते हैं; जिसके कारण जल शुद्ध हो जाता है।
2. तपे हुए लोहे के पिण्ड, बालू तथा मिट्टी या ईंट के पिण्डों को जल में बुझाने से उसका प्रसादन (शोधन) हो जाता है एवं उस पानी को नागकेशर, चम्पा के पुष्प, कमल, पाटला (केतकी) आदि पुष्पों से अधिवासित (सुगन्धित) करना चाहिए।

एक स्थान पर अपनी संहिता में ही आचार्य सुश्रुत प्रदूषित (कलुषित) हुए जल को शुद्ध करने के लिए सात महत्त्वपूर्ण विधियों का निर्देश करते हैं –

1. **निर्मली के फल** (water filter tree) – जल से भरे बर्तन में निर्मली को पीसकर डालने से जल की गन्दगी नीचे बैठ जाती है; जिससे जल निर्मल या शुद्ध हो जाता है इसलिए इसका नाम निर्मली है।
2. **गोमेद मणि** – यह एक प्रकार का शरबती रंग का रत्न होता है, इस रत्न को दूषित जल में डाल देने से कुछ समय बाद जल स्वच्छ हो जाता है।
3. **विसग्रन्थि (कमल नाल)** – कमल की जड़ से भी जल शुद्ध होता है।
4. **शैवालमूल** – दूषित जल में शिवाल वृक्ष की जड़ डालने से जल कुछ समय बाद स्वतः निर्मल होता है।
5. **वस्त्र से छानना** – जल को हल्के मोटे सूती वस्त्र से छानने पर उसमें समाहित अपद्रव्य तथा जन्तु जल से अलग हो जाते हैं, जिसके कारण जल उपयोग करने योग्य हो जाता है।
6. **मुक्ता (मोती) प्रक्षेप** – मोती को जल में डालने से जल शुद्ध होता है।
7. **स्फटिक प्रक्षेप** – मरकत मणि और जल में प्राप्त शंख, सीप आदि से भी जल निर्मल होता है। उपरोक्त विधियों का प्रयोग कर जल प्रदूषण समस्या को कम किया जा सकता है।

तैत्तिरीय आरण्यक 1.26 में जल को शुद्ध रखने का स्पष्ट वर्णन प्राप्त है –

नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात्। न निष्ठीवेत्। न विवसन: स्नायात्।

मनुस्मृति में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है –

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।[12]

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वज प्रकृति को स्वच्छ रखने के लिए निरन्तर प्रयासरत थे। आचार्य यास्क कृत *निरुक्त* 2.7 में जल के एक सौ एक नाम (एकशतमुदकनामानि) उनके अलग-अलग कार्यों द्वारा दिए गए हैं। इन नामों का अर्थ समझने से जल में "देवता" की भावना उत्पन्न होती है। जब जल तत्त्व में हम देवत्व का भाव रखते हैं तो उनके प्रयोग पर नियन्त्रण रखते हैं। दैवीय गुणों के आधार पर उनका प्रयोग आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तथा तीनों लोकों (पृथ्वीलोक,अन्तरिक्षलोक, द्युलोक) में किया जाता है। जल के अनेक रूप प्राप्त हैं कहीं "आपो वै वज्र:" कहा गया है यहाँ वज्र के रूप में आकर जल हमारे शत्रुओं (रोगों) का नाश करता है तथा कहीं "आपोमयः प्राण:" (*छान्दोग्योपनिषद्*

[12] *मनुस्मृति* 4.56

6.5.4) के रूप में आकर हमारे शरीर को प्राण (शक्ति) प्रदान कर हमें शक्तिशाली एवं ऊर्जावान बनाता है। आचार्य चाणक्य पृथ्वी पर प्राप्त बहुमूल्य रत्नों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि – "पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्" (*चाणक्यनीति* 13.21) अर्थात् पृथ्वी पर तीन बहुमूल्य रत्न हैं – जल, अन्न तथा मधुर एवं हितकारी वचन। यहाँ स्पष्ट है कि जल हमारे जीवन का कितना महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। जल में सभी देवताओं का निवास होता है "आपो वै सर्वा देवता:" (*तैत्तिरीय ब्राह्मण* 3.2.4.3) समय-समय पर देवतत्त्व अपना कार्य करते रहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य देवी-देवताओं को पवित्र रखते हैं उसी प्रकार जल को भी पवित्र रखना चाहिए।

आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में वैदिक शिक्षा-पद्धति का प्रभाव

*विश्वनाथ माहात**

शोध-पत्र सार – "विद्यया विन्दतेऽमृतम्" (*केनोपनिषद्* 2.4) अर्थात् विद्या से अमृत तथा परम आनन्द की प्राप्ति होती है। इसलिए समाज में शिक्षा का क्रम किस रूप में व्यवस्थित किया जाए यह बात प्रत्येक युग में शिक्षा के आदर्श पर निर्भर करती है। शिक्षा जिस प्रकार की होगी, मानव जीवन भी उसी प्रकार का होगा।

वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा-प्रणाली का विकास हुआ। जिसमें धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति, राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार भारत की वैदिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे। वैदिककालीन शिक्षा-प्रणाली एक सुव्यवस्थित एवं उन्नत संस्कृति पर आधारित थी और उस संस्कृति से हम अलग नहीं हो सकते। आज भी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान-विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। वैदिक शिक्षा-प्रणाली और आधुनिक काल की शिक्षा-प्रणाली में जो अन्तर है वह है मानव व्यवहार, शिक्षणाभ्यास, विकास के क्रम में परिवर्तन।

प्रस्तुत शोध-पत्र में आध्यात्मिकता, नैतिकता, सामाजिकता तथा शिक्षा के क्षेत्र में वेदों के अध्ययन की उपयोगिता का अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा। साथ ही वैदिक शिक्षा के आलोक में अध्ययन व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा के सन्दर्भ में प्रासङ्गिकताओं का मूल्याङ्कन करने का प्रयत्न किया जाएगा।

मुख्यशब्द – वैदिक शिक्षा, प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली, आधुनिक शिक्षा, आध्यात्मिकता, गुरु–शिष्य परम्परा, राष्ट्रीय संस्कृति, व्यवहार ज्ञान, मानव मूल्यबोध, राष्ट्रनिर्माण चिन्तन।

भूमिका

"वेद" विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वेद ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। आधुनिक समाज में रहने वाले लोग वेदों को धार्मिक ग्रन्थ के रूप में ही स्वीकार करते हैं। परन्तु वास्तव में वेद वैदिककालीन समय के ज्ञानकोश हैं। जो भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान के सूत्र रूप में संगृहीत हैं। माँ सरस्वती की वन्दना से लेकर गुरुकुल में योग्य गुरुओं से, मौखिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों के इस देश में शिक्षा का कितना महत्त्व है यह सर्वविदित है। जो शिक्षा मनुष्य को आदिकाल से ही प्रभावित करती आई है उसी शिक्षा के द्वारा मनुष्य ने अपने समाज और अपनी संस्कृति का विकास किया है। जिसके परिणामस्वरूप आज का आधुनिक समाज है। प्रख्यात भाषाविद् F.W. Thomas ने कहा है –

> There has been no country except India where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful influence.[1]

---

* Research Fellow, Ashok Shinghal Vedic Research Institute, Gurugram, Haryana. e-mail: <biswanath.mahata14@gmail.com>

[1] Cited in Suresh Chandra Ghosh, 1995, *The History of Education in Modern India 1757-1986,* New Delhi: Orient Longman, p. 6.

अर्थात् भारत में ज्ञान के प्रति प्रेम प्राचीन समय से प्रारम्भ हो गया था, भारत ने ज्ञान का जितना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया है उतना अन्य किसी देश ने नहीं किया।

शिक्षा शब्द की परिभाषा

विभिन्न शिक्षाविदों ने समाज की आवश्यकतानुसार शिक्षा-तत्त्वों के विवेचन द्वारा मानव-जीवन में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। शिक्षा ही जीवन है और जीवन ही शिक्षा है। दोनों के इस अभेद्य सम्बन्ध को स्वीकार करने के कारण ही "सा विद्या या विमुक्तये" अथवा "सा विद्या या ब्रह्मगतिप्रदा" के द्वारा विद्या (ज्ञान) के महत्त्व को पूर्वाचार्यों ने विवेचित किया है, जिसमें व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों की अभिवृद्धि के साथ-साथ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों की शिक्षा भी वर्णित है। सायणाचार्य ने इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार हेतु अपौरुषेय शब्दावली को वेद-राशि के रूप में निरूपित किया है।[2] वेद-शब्द की प्रकृति की "विद्" धातु "घञ्" प्रत्यय करके निष्पत्ति हुई है। "विद्" धातु के चार अर्थों को विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् लाभे और विद् विचारणे अथवा विद् चेतनाख्याननिवासेषु द्वारा स्पष्ट किया गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान कोई बाह्य-वस्तु नहीं है, जिसे शिक्षा-रूपी साधन के द्वारा शिक्षार्थी पर आरोपित किया जा सकता है।

"शिक्षा" शब्द की निष्पत्ति "शिक्ष् विद्योपादाने" धातु से "टाप्" प्रत्यय करके हुई है। जिसका अर्थ है सीखना या ज्ञान। आँग्लभाषा में शिक्षा के लिए "education" शब्द प्राप्त है, जिसकी निष्पत्ति लेटिन के "educatum" शब्द से मानी गई है। "Educatum" शब्द "e+duco" से बना है। जिसका अर्थ अन्तर्निहित शक्ति को विकसित करना है। भारतीय दर्शनशास्त्र में ज्ञान के लिए वर्णित है "ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्" (*तैत्तिरीयोपनिषद्* 2) अथवा "प्रज्ञानं ब्रह्म।" (*ऋग्वेद, एतरेयोपनिषद्* 3.3)। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।" (*तैत्तिरीयोपनिषद्* 2.1)। *शुक्ल यजुर्वेद* के *ईशावास्योपनिषद्* में विद्या–अविद्या, परा–अपरा नामक ज्ञान के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व मिलते हैं। जहाँ आत्म-तत्त्व और शास्त्रीय विषय को सम्मिलित रूप से जानने का निर्देश दिया है।[3] वैदिक काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान, विज्ञान, विद्या, विनय और अनुशासन के पर्यायों के रूप में किया जाता था। विद्यार्थी इस ज्ञान मार्ग पर चलकर प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल करना, समाज-स्वीकृत आचरण करना, व्यक्तित्व का विकास करना, आदि विषयों में दक्षता अर्जन कर लेते थे।

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य

"ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः" (*चाणक्यनीति* 17.17) मानव के दोष-गुण निवारण के लिए महर्षियों ने संस्कारों में विद्यारम्भ और उपनयन आदि षोडश संस्कारों का विधान किया है। वैदिककालीन शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव को संस्कारी बनाना, आत्मतत्त्व, ईश्वरतत्त्व, आदि का विस्तार करना अविद्या-अहंकार, दुःखत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) का विनाश करना था। ऋषियों ने षोडश संस्कारों में व्यक्तित्व विकास के लिए श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान का उपदेश दिया है।

"आचरण की शुद्धता" के लिए "यम-नियम" के पालन का उपदेश दिया है। आचार्य याज्ञवल्क्य ने यम-नियम के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए कहा है – ब्रह्मचर्य (सभी इन्द्रियों का संयम) या क्षमा, दान, सत्य भाषण, सरलता, अहिंसा, चोरी न करना, माधुर्य (मधुर वचन बोलना) और दम (इन्द्रियों का दमन) – यम कहे गए हैं। स्नान, मौन रहना, उपवास, देव-पूजा, स्वाध्याय, इन्द्रिय का निग्रह, गुरु की सेवा, पवित्रता, अक्रोध और प्रमाद का त्याग – ये सभी नियम कहलाते हैं।[4]

---

[2] इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः – *सायणभाष्य* (*तैत्तिरीय संहिता भाष्य* भूमिका)

[3] विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। – *ईशावास्योपनिषद्* 11

[4] ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्पना ।

→

यम-नियम के बिना कोई भी अभ्यासी योग का अधिकारी नहीं हो सकता। समाजोचित आचरण के लिए सप्त-मर्यादाओं के अनुपालनों का उपदेश दिया है, यथा – चोरी न करना, व्यभिचार न करना, ब्रह्म-हत्या न करना, गर्भपात न करना, सुरापान न करना, बारम्बार दुराचार न करना और पाप होने पर असत्य बोलकर उसको न छिपाना इन सात मर्यादाओं के अनुरूप मानव जाति को आचरण करने का निर्देश दिया है। इन मर्यादाओं में से एक का भी उल्लंघन मनुष्य को पापी बना देता है।[5]

"शारीरिक सुम्पुष्टि" वैदिककालीन शिक्षा का एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। शरीर को स्वस्थ बनाए रखना आवश्यक है। स्वस्थ शरीर से ही सभी धर्मपालन सम्भव हैं। अत: शरीर की रक्षा और उसे निरोगी रखना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है – "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" (*कुमारसम्भवम्* 5.33)। *यजुर्वेद* में भी शारीरिक सौष्ठव की ओर ध्यान देते हुए निर्देश दिया है – हे शिष्य! तुम स्वयं शम-दमादि गुणों को धारण करते हुए अपने शरीर का निर्माण करो।[6]

"सामाजिकता और राष्ट्रानुराग" *ऋग्वेद* में वर्णित ऋषि वाक्य के अनुसार बिना संगठित भाव के मानव-समुदाय का उत्कर्ष सम्भव नहीं है इसलिए पारिवारिक जीवन में एकरूपता लाने के साथ समाज और राष्ट्र में भी उन्हीं भावों को विकसित करना चाहिए। वेद में समाज के साथ संगठित होकर मिलकर चलना, व्यवहार करना और सोचने का उपदेश दिया है।[7]

ऋग्वैदिक महर्षियों द्वारा प्रतिपादित एकता और संगठनात्मक ऋचाओं का अनुसरण करते हुए अथर्ववेदीय ऋषियों ने संज्ञान सूक्त में कहा है कि साथ-साथ चलने, कार्य करने वाले एवं एक समान गति वाले जनों का मन स्वाभाविक रूप से समान हो जाता है। अमरत्व या दीर्घायुष्य की रक्षा करती हुई दिव्य शक्तियों का मनोभाव, जिस प्रकार एक जैसा शुभ होता है, उसी प्रकार समान भावना वाले देशहित के एक उद्देश्य में निरत जनों का मनोभाव भी शुभ ही हो।[8] इस मन्त्र में सामाजिक भावना को विकसित किया है। ऋषि ने जैसे एक परिवार में सौमनस्य और सामञ्जस्य की कामना की है, वैसा ही सौमनस्य और सामञ्जस्य विश्वपरिवार में भी आकाङ्क्षित है।

राष्ट्रवाद की परिकल्पना को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से *अथर्ववेद* 12.1.12 में कहा है – "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

पाठ्यक्रम

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक–शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम की उपयोगिता सम्बन्धित विचार कोई नया विचार नहीं है । वैदिक काल

← अहिंसा स्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः।।
स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः।
नियमा गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता ।। – *याज्ञवल्क्यस्मृति*, प्रायश्चित्ताध्याय, 312-13

[5] सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ।। – *ऋग्वेद* 10.5.6, *अथर्ववेद* 5.1.6

[6] स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्वं स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।। – *यजुर्वेद* 23.15

[7] सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।। – *ऋग्वेद* 10.191.2

[8] सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोभ्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ।। – *अथर्ववेद* 3.30.7

में महर्षि शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए उच्च वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते थे। *छान्दोग्योपनिषद्* 7.1.3 में वर्णित है "सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि" जहाँ भगवान् नारद को पाठ्य विषयों का ज्ञाता होने के कारण "मन्त्रविद्" शब्द से अभिहित किया गया है। पाठ्यक्रम के रूप में *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद*, *सामवेद*, *अथर्ववेद* और इतिहास-पुराण की परिगणना की गई है –

> ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां...। – *छान्दोग्योपनिषद् 7.1.2*

उच्च शिक्षास्तर पर संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। *शाङ्करभाष्य* के अनुसार *महाभारत* सहित चारों वेदों के अध्ययन के लिए "व्याकरण" का ज्ञान होना अनिवार्य है।[9]

जगत् में प्रकृति, जीव और ईश्वर तीन तत्त्व हैं। वेद ने निर्देश दिया कि इन तीन विषयों को पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए। वैदिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार इन तीनों विषयों का जब तक ज्ञान न हो जाए तब तक शिष्य को गुरुकुल में रखकर शिक्षा दी जाती थी –

> आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
> तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।
> – *अथर्ववेद* 11.5.3

यहाँ रात्रि शब्द अज्ञानान्धकार का सूचक है।

छान्दोग्योपनिषद् में एक स्थान पर महर्षि सनतकुमार के पूछने पर महर्षि नारद कहते हैं कि मैंने *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद*, *सामवेद*, *अथर्ववेद*, इतिहास, पुराण, वेदों के अर्थ-विधायक ग्रन्थ, पितृविद्या (श्राद्धकल्प), राशिविद्या (गणित), दैवविद्या (उत्पातज्ञान), निधिविद्या, वाकोवाक्यविद्या(तर्कशास्त्र), एकायनविद्या (नीतिशास्त्र), भूतविद्या, क्षत्रविद्या (धनुर्वेद), नक्षत्रविद्या और सर्पविद्याओं का अध्ययन किया है।

प्रारम्भिक वैदिक काल में वैदिक साहित्य के विभिन्न विषय यथा कर्मकाण्ड, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान, सैनिक शिक्षा, कृषि, पशुपालन, कला-कौशल, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र (geography) और गणितशास्त्र की शिक्षा प्रचलित थी। उद्देश्य के अनुसार शिष्यों की मनोवृत्ति, भावना को ध्यान में रखते हुए उचित शिक्षा दी जाती थी।

शिक्षण-पद्धति (Teaching Method)

ऋषि-मुनियों ने मौखिक एवं प्रश्नोत्तर विधि द्वारा सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया को स्वीकार किया है। वेदाध्ययन के लिए गुरुमुखोच्चारण परम्परा की विधि का उल्लेख *ऋग्वेद-प्रातिशाख्य* में मिलता है, जिसमें आचार्य शौनक ने वर्ण-पद-सन्धि-स्वर-छन्द और क्रम-पाठ से सम्बन्धित सिद्धान्त वर्णित किए हैं। वैदिक वाङ्मय के संरक्षण, संवर्द्धन एवं अग्रिम पीढ़ी को हस्तान्तरित करने के उद्देश्य से मौखिक विधा का सृजन किया था। इस प्रणाली के माध्यम से गुरु–शिष्य सम्बन्ध में घनिष्ठता, शिष्य की उपस्थापन शैली में वृद्धि और आनन्द के साथ अध्ययन-अध्यापन में सहयोग एवं वृद्धि होती थी।

स्वाध्याय और प्रवचन वैदिक शिक्षण विधि का एक और महत्त्वपूर्ण शिक्षण अभ्यास था। इस प्रणाली में गुरु के सान्निध्य का महनीय योगदान है और प्रश्नोत्तर विधि इस प्रणाली पर आधारित है। उदाहरणस्वरूप *प्रश्नोपनिषद्* 1.2 द्वारा शिष्य (जिज्ञासु) परब्रह्मतत्त्वस्वरूप परमात्मा के विषय में अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए महर्षि पिप्पलाद् से सान्निध्य

---

[9] भारतपञ्चमानां वेदं व्याकरणमित्यर्थः। व्याकरणेन हि पदादिविभागश ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते। – *छान्दोग्योपनिषद् (शाङ्करभाष्य)* 7.1.2

प्रदान करने की विनती करते हैं।[10]

मन्त्रद्रष्टा महर्षियों ने सृष्टि के प्रारम्भ से ही स्वाध्याय और प्रवचन की अनिवार्यता पर बल दिया है, क्योंकि प्रवचन से ही अधिगम के उद्देश्य की प्राप्ति होती है और स्वाध्याय से कण्ठस्थीकरण अर्थात् आत्मानुशीलन होता है। इससे अध्येता को विषय-वस्तु का अर्थ-बोध होता है। इसके अतिरिक्त श्रवण, मनन और निदिध्यासन प्रभृति प्रणालियों का प्रयोग किया जाता था।

शिक्षण संस्था

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में और उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों में होती थी। नगर के कोलाहल से गुरुकुलीय शिक्षण संस्थाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़े इसीलिए शिक्षण संस्थाएं प्रायः घनी आबादी और नगरों से दूर शान्त, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर एवं प्राकृतिक वातावरण में स्थित होती थीं। *यजुर्वेद* 26.15 के अनुसार पर्वतों के निकट और नदियों के संगम स्थल पर गुरुओं की प्रज्ञा और क्रिया-कुशलता द्वारा मेधावी विद्वानों का निर्माण होता था – "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रोऽजायत॥" *ऋग्वेद* में भी सामान्य शाब्दिक परिवर्तन के साथ यह मन्त्र उपलब्ध है।[11] सुरम्य दृश्यों से आवृत्त इन गुरुकुलों में छात्रों का प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता था। जिसके कारण उनके मानसिक व शारीरिक विकास पर अत्यन्त स्वस्थ प्रभाव पड़ता था। विश्वकवि रबीन्द्रनाथ टैगोर ने गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति का समर्थन किया था और शान्तिनिकेतन में इसका सफल प्रयोग भी किया। इन गुरुकुलों के सन्दर्भ में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है – "भारत के वनों में सभ्यता की जो धारा प्रवाहित हुई उसने सम्पूर्ण भारत को आप्लावित किया है।" आज भी देश के अनेक बड़े विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा संस्थान इन आदर्शों के अनुरूप नगरीय-कोलाहल से दूर स्थापित किए गए हैं। यह स्थापन आदर्श शिक्षा को बढ़ावा देने और छात्रों को एक अच्छी शिक्षा प्रदान करने में सहयोग करता है।

शिक्षक और विद्यार्थियों का सम्बन्ध

"आचार्यः आचारं ग्राह्यति" (*निरुक्त* 1.2) अर्थात् जो आचार को शिष्य के चरित्र में उतार देता है, उसे आचारवान् बना देता है, वही आचार्य, गुरु और शिक्षक है। *ऋग्वेद* के मन्त्र में "शिक्षक" के लिए "शाक्त"[12] शब्द का उल्लेख किया गया है। शिक्षक के लिए "आचार्य" शब्द का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में अनेक बार हुआ है।[13]

वैदिक काल में वेदाध्ययन गुरुमुखोच्चारण विधा पर आधारित होने के कारण गुरु-शिष्य सम्बन्ध गाम्भीर्य को दर्शाता है। *पारस्करगृह्यसूत्र* 1.8.8 में वर्णित है कि गुरु शिक्षार्थी को आत्मानुगामी करने के लिए प्रतिज्ञा वाक्य के द्वारा आदेश देता था – "ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु।" गुरु–शिष्य सम्बन्धों के बीच कोई व्यवधान उपस्थित न हो जाए, इसके लिए शिक्षणाभ्यास के समय दोनों के लिए यथोचित आसनादि, बैठने की दिशा का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में मिलता है।[14] *अथर्ववेद* 11.5.3 में वर्णित आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन कर, उसे गुरुकुल में प्रविष्ट करके मानों अपने गर्भ

---

[10] तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ।

[11] उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।। – *ऋग्वेद* 8.6.28

[12] शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः। – *ऋग्वेद* 7.103.5

[13] आचार्यो ब्रह्मचारिणः प्रजापतिः। – *काठक ब्राह्मण*, उपनयन ब्राह्मण-1

[14] पारायणं वर्तयेद् ब्रह्मचारी गुरु शिष्येभ्यस्तदनुव्रतेभ्यः।
अध्यासीनो दिशमेकां प्रशंस्तां प्राचीमुदीचीमपराजितां वा।। – *ऋग्वेद-प्रातिशाख्य* 15.1

में रख लेता है – "आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।" इससे बड़ी उपमा गुरु–शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध में और क्या हो सकती है? जैसे मातृगर्भ में रहते हुए बाहर का कोई प्रभाव उस बालक पर सीधा नहीं पड़ सकता। बच्चे की सर्वांगीण पुष्टि, वृद्धि, उन्नति की चिन्ता माता को रहती है। वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध वैदिक काल में गुरु–शिष्य का होता था।

निःशुल्क एवं सार्वभौमिक अनिवार्य शिक्षा

वैदिक काल में बालक-बालिका को शिक्षा प्राप्त करने का निःशुल्क एवं अनिवार्य अधिकार था। निःशुल्क होने के कारण शिक्षा सार्वभौमिक थी। भगवान् मनु का कथन है कि यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करने के बाद, शिक्षक को सबसे पहले शिष्य को व्यक्तिगत शुद्धि, आचरण, अग्नि-पूजा और सन्ध्या उपासना के नियमों की शिक्षा देनी चाहिए –

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षायेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्यौपासनमेव च।।
– *मनुस्मृति* 2.69

यह श्लोक *मनुस्मृति* में शिक्षा के प्रति समग्र दृष्टिकोण को रेखाङ्कित करता है, और यह भी कहा कि गुरु नित्य कहे या न कहे, परन्तु अध्ययन और आचार्य के हित के लिए शिष्य को सदा यत्न करना चाहिए –

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च।।
– *मनुस्मृति* 2.191

छात्रों को पारम्परिक रूप से व्यक्तिगत शुद्धि, उचित आचरण और आनुष्ठानिक प्रथाओं की मूल बातें सिखाई जाती थीं।

यजुर्वेद के *शतपथ ब्राह्मण* 14.6.10.5 के अनुसार बच्चे एक आयु तक अपनी माता के पास, एक आयु तक पिता के पास और एक आयु तक आचार्य के प्रभाव में रहते थे – "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।"

आचार्य को शिष्य का पोषण के करने के कारण "औषधि", सर्वाङ्गीण विकास के कारण "पयस" कहा गया है – "आचार्यो मृत्युर्वरूणः सोम ओषध्यः पयः।" (अथर्ववेद 11.7.14) इससे यह सङ्केत मिलता है कि चिकित्सा तथा खाने-पीने, आवास एवं वस्त्रादि की निःशुल्क व्यवस्था गुरु स्वयं करते थे। वैदिक काल में शिक्षा-व्यवस्था राज्य के नियन्त्रण से मुक्त थी। गुरुकुलों की आय का स्रोत, समाज के धनिक वर्ग के लोग (राजा-महाराजा, वणिक इत्यादि) स्वेच्छा से अन्न, वस्त्र, भूमि, पात्र और मुद्रा गुरुकुल के लिए गुरु को भेंट स्वरूप देते थे। गुरुकुल चलाने के लिए शिष्यों द्वारा भिक्षावृत्ति भी एक माध्यम थी। इसके अतिरिक्त गुरु-दक्षिणा के माध्यम से भी गुरुकुल चलाते थे। इसका उदाहरण "रघु-कौत्स संवाद" में प्राप्त होता है (*रघुवंश महाकाव्य* 5.20-32)। जिसमें कौत्स ने अपने गुरु महर्षि वरतन्तु को 14 कोटि मुद्राएँ गुरु-दक्षिणा के रूप में प्रदान की थी।[15]

स्त्री-शिक्षा

किसी भी राष्ट्र में नारियों की स्थिति से उसकी उन्नति एवं श्रेष्ठता का पता चलता है। वैदिक कालीन भारतीय समाज प्रायः पुरुष प्रधान था तथापि नारियों को पुरुष के समान सम्मानजनक स्थान प्राप्त थे। जिसका प्रधान कारण स्त्री-शिक्षा ही था। वैदिक काल में शिक्षा समान रूप से छात्र और छात्राओं के लिए प्रचलित थी। पुत्र-पुत्री में कोई भेद-भाव नहीं था। *ऋग्वेद*

[15] निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्यम् अचिन्तयित्वा गुरुणाहम् उक्तः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।। – *रघुवंश महाकाव्य* 5.21

9.67.11 में पूषा देवता से श्रेष्ठ और सुलक्षणी कन्याओं को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं –

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि। आ भक्षत्कन्यासु नः ।।
अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु। आ भक्षत्कन्यासु नः ।।

अथर्ववेद 11.5.18 में स्त्रियों के ब्रह्मचर्य अर्थात् ज्ञानोपार्जन के लिए गुरुकुल में जाने का उल्लेख मिलता है। उसमें कहा गया है कि कन्या ब्रह्मचर्य द्वारा युवा पति को प्राप्त होती है – "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुत्र की भाँति कन्याओं को भी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करके विद्याभ्यास द्वारा ज्ञानार्जन करने अधिकार था। यही कारण है कि वैदिक युग में बहुत सी विदुषी स्त्रियों का जन्म हुआ था और उनमें से कुछ मन्त्रद्रष्ट्री भी थीं यथा – अपाला, गोधा, घोषा, विश्ववारा, ब्रह्मजाया (जुहु), अगस्त्यभगिनी, अदिति, इन्द्राणी, इन्द्रमाता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदी, यमी, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्रि, सूर्या, सावित्री आदि (*बृहद्देवता* 2.82.84)। इन सब उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग में स्त्री-शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। प्रायः वैदिककालीन समाज के अन्तर्गत उच्च स्तर की कन्याओं का उपनयन संस्कार भी होता था। स्मृति वचनों के अनुसार – "पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।"[16] उपनयन के अनन्तर तत्कालीन कन्याओं के बौद्धिक विकास तथा ज्ञान के लिए सुव्यवस्थित शिक्षण की व्यवस्था थी। इस तथ्य के आधार पर कह सकते हैं कि आधुनिक शिक्षाशास्त्र पर वैदिक शिक्षण विधा का प्रभाव है और आधुनिक शिक्षाशास्त्र वैदिक शिक्षण परम्परा से अनुप्राणित है।

उपसंहार

विश्वगुरु के नाम से प्रसिद्ध भारत देश की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास विश्व में श्रेष्ठ है। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अन्धानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शों को विस्मृत करते जा रहे हैं। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए हमें वैदिककालीन शिक्षा के ग्रहणीय तत्त्वों को ग्रहण कर अपनी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को प्रभावी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" (*ईशावास्योपनिषद्* 1), "वसुधैव कुटुम्बकम्।"[17] जो शिक्षा मन्त्रों के द्वारा ऋषियों ने दी वह सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के साथ आधुनिक भारत तथा पूरे विश्व में शान्ति की स्थापना में सहायक हो सकती है। संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्य में शान्ति, मानवता, विश्व-बन्धुत्व और भ्रातृत्व की ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं, जिनको न केवल भारत के पाठ्यक्रम में वरन् सब देशों के पाठ्यक्रमों का अभिन्न अंग होना चाहिए। श्रवण, मनन, चिन्तन, निदिध्यासन, स्मरण, प्रवचन, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, वाद-विवाद जैसी शिक्षण विधियों का प्रयोग करके भारत की आधुनिक शिक्षा में जो विकृतियाँ हैं इनको दूर कर सकते हैं। वैदिक काल में आचार्य, गुरु, शिक्षक के चरित्र में सत्य, तप, ज्ञान, त्याग आदि व्यक्तित्व का प्रभाव होता था। आधुनिक शिक्षा के क्रम में आदर्श शिक्षक की धारणा में वैदिक गुरु या आचार्य के व्यक्तित्व को अपनाया जा सकता है, जिससे शिक्षार्थी की मानसिकता, शिक्षक–शिक्षार्थी मधुर सम्पर्क की अभिवृद्धि करके शिक्षकों के प्रति अधिक श्रद्धाशील भाव जागृत कर सकें। आधुनिक शिक्षा में प्राचीन सनातन आदर्शों को सम्मिलित करके इससे अतीत की भाँति विदेशी छात्रों को भी अपनी ओर आकर्षित करके पुनः भारत को विश्वगुरु के रूप में गौरवान्वित किया जा सकता है।

---

[16] *वेदार्थ कल्पलता* (भूमिका, पृ॰ 116-18)।

[17] *ऋग्वेद*, *महाउपनिषद्* 6.72।

सहायक ग्रन्थ-सूची

The History of Education in Modern India, 1757-1986, Suresh Chandra Ghosh, New Delhi: Orient Longman, 1995.

अथर्ववेद, गङ्गा सहाय शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।

ईशादिदशोपनिषद् (vol. I), गोविन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017।

ऋग्वेद संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2016 ।

ऐतरेयोपनिषद् (*सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित*), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000।

केनोपनिषद् (*सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित*), आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे, 1985।

कृष्णयजुर्वेदीय-तैत्तिरीयसंहिता, मण्डन मिश्र कृत, श्रीपरमेश्वरानन्द शास्त्री, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली, 2009।

छान्दोग्योपनिषद् (*सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित*), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000।

निरुक्त, उमाशङ्कर शर्मा, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2021।

बृहद्देवता, रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1904।

मनुस्मृति, हरगोविन्द शास्त्री एवं नेन गोपाल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2024।

याज्ञवल्क्यस्मृति, गङ्गासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2017।

रघुवंशम्, *खेमराज श्रीकृष्णदास*, श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, 1964।

Environmental Conservation in Ancient India
A Historical Study based on Dharmaśāstric Sources

Arooshi Nigam*, Avadhesh Pratap Singh#, Subhash Chandra$

Abstract: Environmental conservation formed a foundational element in the thoughts and governance practices of ancient Indian rulers, scholars, and administrators, contributing significantly to the sustainability of society. During the Dharmaśāstric era, individuals exhibited a strong awareness of ecological principles, resource utilization, and methods of environmental preservation. Ancient Indian civilization held nature in high esteem, integrating the protection of natural resources with religious rituals and ethical conduct — serving as practical tools for environmental regulation. The spiritual bond between traditional Indian society and nature fostered a naturally sustainable and eco-conscious lifestyle. Dharmaśāstra texts, along with other classical Indian literature, are rich with references related to ecological harmony, climate patterns, rainfall, water cycles, and natural resource conservation. Core values such as environmental health, hygiene, public cleanliness, and sustainable resource management are deeply rooted in these works. Structured as manuals for societal governance, Dharmaśāstra texts emphasize community development through disciplined conduct (*ācāra*). The ecological insights found in these texts continue to hold relevance today, offering traditional yet effective frameworks for tackling modern environmental issues. This study seeks to explore the ecological foresight of ancient Indian sages by critically examining authentic Dharmaśāstric references.

Keywords: Ancient Indian literature, Dharmaśāstra, environment protection, natural resource preservation

Introduction

Ancient Bhārata is the custodian of a remarkably rich and expansive intellectual legacy, encompassing an array of scientific and technological domains. This formidable corpus of traditional knowledge was systematically codified in the Sanskrit language through an extensive array of treatises collectively referred to as Śāstras. These texts span an impressive spectrum of disciplines, including poetics, dramaturgy, linguistics, philosophy, world literature, various sciences, legal jurisprudence, and ritual practices. The persistent and

* Research Scholar, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, email: anigam@sanskrit.du.ac.in

Assistant Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, email: apsingh@sanskrit.du.ac.in

$ Corresponding Author: Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, email: schandra@sanskrit.du.ac.in

profound influence of Sanskritic thought continues to shape India's literary, philosophical, political, economic, and cultural trajectories. Notably, the enduring integration of classical values such as *ṛta* (cosmic order), *satya* (truth), and *ahiṁsā* (non-violence) within India's social, educational, and political institutions underscores the dynamic perpetuation of its Vedic, philosophical, and theological foundations.

Historical and philological inquiries confirm that Sanskrit was not merely a liturgical language but a widely spoken medium of discourse in ancient times. Pollock (2001) affirms the indigenous origin of Sanskrit in the Indian subcontinent and highlights its contemporary global revitalization through the phenomenon of Sanskritization. Beyond its cultural significance, Sanskrit continues to serve as an essential linguistic tool in retracing the historical evolution of scientific thought. Foundational scientific texts such as the *Caraka Saṁhitā* and *Suśruta Saṁhitā* in medicine, *Āryabhaṭīya* in mathematics, *Siddhānta Śiromaṇi* by Bhāskara in astronomy, *Arthaśāstra* by Kauṭilya in political science and administration, and *Aṣṭādhyāyī* by Pāṇini in grammar represent landmark contributions to the development of modern science and logical reasoning (Biswas & Banerjee 2016).

Regarded as a cradle of civilizational advancement, ancient Bhārata not only nurtured spiritual and cultural traditions but also pioneered diverse branches of scientific inquiry. These encompassed disciplines such as economics and financial governance, management theories, psychology, Āyurveda, metallurgy, mineralogy, geology, oceanography, climatology, sanitation and public health, forestry, agriculture, and hydrology. Traditional knowledge systems — intimately woven into the sociocultural fabric — manifested through community-specific lifestyles, regional languages and dialects, distinctive clothing, culinary habits, and therapeutic practices. Furthermore, the civilizational ethos of ancient Bhārata emphasized the judicious and sacred stewardship of natural resources — including water, air, soil, and minerals — revealing a profoundly ecological world view committed to sustainability and environmental equilibrium.

The intricate relationship between environmental conditions and human health has long been acknowledged within the intellectual traditions of ancient Bhārata, wherein both are viewed as inherently interconnected and mutually sustaining. Bhārata stands as the cradle of traditional health systems such as Āyurveda, Naturopathy, Yoga, and the observance of seasonal dietary regimes, all of which

emphasize holistic well-being rooted in ecological harmony. From antiquity, the subcontinent has served as an invaluable site for the study of indigenous cultures, offering profound insights into a range of disciplines including art, music, literature, sculpture, drama, poetry, and particularly, natural healing systems and environmental stewardship, such as conservation and afforestation practices. The theological traditions of India embody a rich repository of indigenous knowledge, reflective of the customs, belief systems, and ecological wisdom preserved within local communities. The continued engagement with scriptural texts has given rise to the adaptation of this knowledge in contemporary life — shaping practices related to diet, sanitation, environmental adaptability, and the ethical use of natural resources. According to Dharmaśāstric literature, the process of mental and spiritual purification is intricately tied to personal discipline and environmental hygiene. This includes daily bathing, abstension from intoxicants and non-vegetarian food, sexual restraint, and the cultivation of internal purity through righteous thought, speech, and conduct. Such prescriptions are seen as essential not only for individual health but also for maintaining societal and ecological balance.[1] The *Yogasūtra* accordingly enumerate sanitation (*śauca*) as one of the foundational observances (*niyama*s) critical for spiritual development (Sridhar 2020), a sentiment echoed in the *Yājñavalkyasmṛti* (*YS*),[2] which likewise upholds cleanliness and purity as integral to *dharma* and well-being.

The Dharmaśāstra corpus represents a sophisticated confluence of traditional wisdom and early scientific thought, encompassing a wide spectrum of disciplines, including theology, jurisprudence, social conduct, health, and environmental ethics. As foundational texts of Hindu law and moral philosophy, Dharmaśāstra literature offers a comprehensive framework for the regulation of individual and societal life, grounded in the principle of *dharma*. According to Olivelle (2004), *dharma* occupies a central position in Indian intellectual traditions, informing key social institutions such as marriage, inheritance, legal contracts, personal conduct, and judicial practices. These texts serve as some of the earliest and most systematic articulations of the social, political, economic, and spiritual fabric of ancient Indian society (Narayanaswamy 1981).

---

[1] शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । — *पतञ्जलियोगसूत्रम्* २.३२

[2] अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥ — *याज्ञवल्क्य स्मृति* १.१२२

The thematic structure of Dharmaśāstra literature, traditionally categorized into *ācāra* (conduct), *vyavahāra* (legal procedure), and *prāyaścitta* (penance), reveals an intrinsic concern for societal harmony and environmental well-being (Dhole 2017). The conceptualization of *dharma* as a framework for governance, personal ethics, and environmental responsibility constitutes one of the Dharmaśāstra tradition's most enduring contributions (Bobade 2019). These texts not only prescribe normative social behaviour but also embed detailed ecological sensibilities. They underscore the sanctity of natural resources — particularly water, land, and forests — and establish ethical and punitive measures for their protection. For instance, the disposal of waste into water bodies is explicitly condemned and categorized as a punishable offence, illustrating the sages' ecological foresight and their understanding of resource scarcity.

The Dharmaśāstra tradition also provides elaborate guidelines on hygiene, sanitation, and health, emphasizing physical and mental purity as integral to *dharma*. Cleanliness of the body and surroundings is particularly emphasized within the *brahmacarya āśrama*, forming part of the ten essential characteristics of *dharma*[3] (Kumar, Mohapatra, & Singh 2019). Topics such as proper defecation practices, water usage, dietetics, and the role of *yoga* and physical exercise in promoting holistic well-being are extensively discussed, reflecting an advanced environmental and health-conscious world view. The *Manusmṛti* (*MS*), for example, promotes sustainable living through ethical codes that foster ecological harmony and community welfare (Bobade 2019). Thus, the Dharmaśāstra literature remains a significant reservoir of indigenous environmental wisdom, offering critical insights for contemporary discourses on sustainability and ethical ecology.

Objectives

This research endeavours to engage critically with the escalating global concerns of natural resource exhaustion and environmental degradation by re-examining them through the profound lens of ancient Indian ecological wisdom. Central to this investigation is the exploration of sustainable frameworks articulated in classical Sanskrit texts, with a special focus on the Dharmaśāstra corpus. The study aims to identify and analyse both explicit and nuanced references to environmental conservation, ecological harmony, and resource stewardship embedded within these texts. A key component

[3] धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ — *मनुस्मृति* ६.९२

of the research involves the methodical compilation and evaluative indexing of such references, thereby constructing a reliable and academically rigorous repository of environmental knowledge preserved in the Dharmaśāstric tradition. Further, the study seeks to illuminate ancient perspectives on environmental sustainability by delving into traditional Indian methodologies encompassing natural healing systems, climatological observations, conservation ethics, and practices of resource preservation. Ultimately, this inquiry aspires to forge a meaningful dialogue between traditional ecological knowledge and contemporary environmental challenges, offering innovative, culturally rooted approaches to sustainability that draw from the philosophical and practical foundations of India's intellectual heritage.

Environmental Preservation as Highlighted in Dharmaśāstric Literature

In Indian philosophical thought, the cosmos is understood as a complex integration of subatomic particles, collectively forming the five fundamental elements known as *pañca-mahābhūta*s — sky (*ākāśa*), air (*vāyu*), fire (*agni*), water (*āpa*), and earth (*pṛthvī*). These elements constitute the ontological foundation of all animate and inanimate existence, both sentient and insentient. Central to this metaphysical framework is the intrinsic correspondence between each element and the five sensory faculties, reflecting a profound synthesis of the macrocosm (the universe) and the microcosm (the individual self). Each of the *mahābhūta*s embodies not only distinct physical characteristics but also a progressive acquisition of sensory qualities from its predecessors. *Ākāśa* (sky), identified with sound, correlates to the auditory organ (ear). *Vāyu* (air) encompasses sound and touch, relating it to the skin as the tactile organ. *Agni* (fire), embodying sound, touch, and form (visual perception), corresponds to the eyes. *Āpas* (water) integrates sound, touch, form, and taste, thus aligning with the tongue. Finally, *pṛthvī* (earth), as the densest and most complete element, possesses all five qualities — sound, touch, form, taste, and smell — and is associated with the nose, the organ of olfaction. This intricate interrelation signifies the philosophical coherence between the physical universe and human perception, illustrating an ontological unity that positions the environment not merely as an external entity but as an extension of the human experiential system. The *pañca-mahābhūta*s are not only the constituents of creation but also the sustaining forces of life. Upon death, these elements undergo a process of decomposition, returning to their elemental origins; a cyclical dissolution that exemplifies the eternal rhythm of birth and decay.

Within this framework, the environment is conceived as a holistic system encompassing all physical and biological conditions that affect living beings. It aligns with the modern ecological notion of the biosphere — a dynamic, interdependent continuum constituted by the "hydrosphere" (water bodies), "atmosphere" (air and gaseous layers), and "lithosphere" (earth's solid crust). This world view underscores the ethical imperative of maintaining equilibrium within and among the elements that sustain all forms of life.

The term "environment" originates from the combination of two Sanskrit words: *pari* or *paritaḥ*, meaning ubiquitous, and *āvaraṇa*, signifying to cover, hover, or enclose. Thus, the environment can be understood as the natural cover surrounding us, within which living organisms exist and sustain life. It represents the external manifestation of the presiding deity of nature. Broadly speaking, the environment encompasses the entirety of conditions that influence the existence and development of organisms, forming the foundation for life and growth. The way environment is embodied in human life, it has been realized very beautifully in *Rāmacaritamānasa*.[4] Environment and organisms are inextricably linked. It is implausible to ratiocinate an organism isolated from the environment. According to Webster (Mishra 2002), the totality of external conditions and influences affecting a being or a group of masses is called environment. Elements found on the land and in the foetation of the earth, water, air, medicines, and all the things that help the living beings are included in the purview of the environment. *Atharvaveda* 18.1.17[5] states that water, air and medicinal herbs are the constituent elements of the environment. The external ecosystem of the earth can mainly be divided into three major life-supporting elements. First, the lithosphere includes islands, continents, mountains, hills, plains, small rivers, plateaus, forests, deserts, etc. Second, the seven oceans, glaciers, ice caps, lakes, rivers and underground water makes up the hydrosphere and third, the atmosphere, is the shield that protects the earth. The biosphere lies between the earth and the atmosphere.[6] The mixture of gases present in the atmosphere in proper quantity is important for human life. The paper is primordially, an attempt to demonstrate the references of life-sustaining elements, practices and ideas related to nature and the environment as found in the Dharmaśāstra texts.

---

4 छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥ — किष्किन्धाकाण्ड १०.२

5 त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् । आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ — अथर्ववेद १८.१.१७

6 ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योम दिशश् चाऽष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ — *मनुस्मृति* १.१३

The Dharmaśāstra texts emphasize the sanctification and purification of sacred rivers, highlighting the timeless importance of rivers, ponds, and fountains for nature, the environment, and humanity. Water, being a fundamental necessity for survival, and rivers, as primary sources of natural water, were revered in ancient times. Rivers were treated as goddesses and sanctified for their vital role in sustaining life and supporting socio-environmental balance. Therefore, the rivers were treated as goddesses and were sanctified in ancient times for their life-sustaining qualities and for maintaining the socio-environmental movements. Similarly, the concept of the Kātyāyana Vrata is also innovated in *Bhāgavata Purāṇa* to protect water resources such as River Ganga, Yamuna, and Kālindī through the performing of ablutions in the honour of the holy water of the rivers (Shastri & Tagare 1978). Trees are also substantive components of nature. Few trees such as *baṭa, pīpala, aśoka, āma, pākad, gūlara, nīma, āmalā*, etc. are treated to be godlike and empyrean because they produce higher contents of oxygen, provide shade and food. Hence, highlighting the need to protect them. Due to medicinal properties, the plants like *tulasī, nīma,* etc. are extremely sacred and revered. Fruits, flowers, and leaves are considered auspicious and thus, offered in every *pūjā*, plantation of trees on auspicious occasions, air purification by performing daily *yajña* and *havana*, daily bathing and worshipping of rivers, fasting rituals, etc. are indicative of the fact that our theological texts are enthusiastic towards the environmental protection. *Manusmr̥ti* 5.105 illustrates knowledge, penance, fire, food, soil, mind, water, *upalepana*, deeds, air, sun, and time as the dominant sources of purification.[7]

Endearment and attachment of humans towards nature[8] are reflected in the entire Sanskrit literature, which clearly indicates their extreme level of awareness for the conservation and protection of the environment. The ancient *ācārya*s took significant measures to protect nature, ensuring that the true essence of the environment was never compromised. In the Dharmaśāstra texts, nature is depicted in various forms depending on the context, with emphasis on the importance of pilgrimage practices, proper conduct in defecation, the prohibition of waste disposal, and the legal consequences for harming nature and water sources. These regulations were implemented to prevent pollution and maintain ecological harmony (Mishra 2002). In the following section, the major references to protecting the nature are discussed.

---

[7] ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन् मनो वार्युपाञ्जनम् । वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥ — *मनुस्मृति* ५.१०५

[8] ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ — *अथर्ववेद संहिता* १.१.१

CLEANLINESS AND SANITATION

The primacy of environmental consciousness has been deeply ingrained in ancient Indian culture, where nature was revered not only as a life-sustaining force but also as a sacred entity. The Vedic age, regarded as one of the earliest and most intellectually prolific periods in human history — is notable for its expansive corpus of literature, which serves as a comprehensive repository of scientific and philosophical knowledge. Vedic scholars exhibited a profound awareness of ecological principles, the vital role of natural resources, and the imperatives of environmental stewardship. The ethos of public sanitation and ecological protection was intricately woven into the sociocultural fabric of ancient India.

Archaeological findings from pre-Vedic civilizations further affirm the existence of sophisticated civic planning, public hygiene, and environmental management systems long before the codification of Vedic knowledge. These insights are reinforced by the Dharmaśāstra literature, which contains extensive discussions on environmental conservation, ecological equilibrium, the seasonal and hydrological cycles, and related phenomena. The presence of such references within the Dharmaśāstra corpus underscores the advanced level of ecological awareness exhibited by the sages of that era (Padhy, Dash, & Mohapatra 2006).

Environmental consciousness, especially the notion of cleanliness, is not a modern construct but one deeply embedded in the Indian intellectual tradition. Numerous Dharmaśāstra texts and classical Sanskrit scriptures delineate the importance of sanitation and hygiene. The *Manusmṛti*, in particular, categorizes cleanliness as an essential aspect of ethical and ritual conduct, distinguishing between *bāhya śaucam* (external cleanliness) and *āntara śuddhi* (internal purity). This dual emphasis reflects a holistic understanding of environmental and personal health. Contemporary research, such as that by Pushpangadan et al. (1987), corroborates the enduring relevance of these traditional ecological insights in understanding indigenous methods of environmental protection. Thus, ancient Indian environmental philosophy, as articulated in both Vedic and Dharmaśāstric traditions, offers a timeless and integrated model of ecological responsibility.

Vedavyāsa, in his commentary on the *Yogasūtra*, describes external defecation as the removal of impurities from objects using mud and water whereas, internal

defecation as the cleanliness of the body, to remove impurities from the mind[9] (Sridhar 2020). According to *Manusmr̥ti*, external defecation refers to cleanliness in relation to a person's body, various objects that come in contact with a person and the surrounding environment. On the other hand, internal defecation refers to the purity of one's actions, speech, and thoughts.

The entire chapter 5 of *Manusmr̥ti* (5.111-12 and 5.114)[10] is dedicated to the concept of external cleanliness and sanitation. *Manusmr̥ti* have given various measures on how to sanitize and purify the vessels made of valuable natural resources. The instructions state that utensils made from materials such as copper, brass, bronze, rhinestones, gemstones, and ivory can be cleaned with ash, soil, or water. However, utensils and pots made of gold should be washed exclusively with water. Items made of iron, *rāṅgā*, and lead require proper purification with ash, water, or acidic water. The rationale behind using ash and soil for cleaning is that it helps preserve the natural coating of the utensils and prevents them from decaying. Similarly, ornaments made of silver, pearl, ivory, conch shells, and crystals should only be cleaned with water. The slight peeling of wooden utensils is considered a form of purification. Grass, wood and straw are purified by the ingestion of water particles.[11] Purification of very fine clothes and products made of conch shells, horns, elephant bone or ivory should also be cleaned with yellow mustard residue. Clothes made of silk and sheep's hair should be cleaned with saline soil. *Manusmr̥ti* 5.113[12] discusses the scientific and chemical methods of preservation and enhancement of natural resources such as gold and silver. The refinement of gold and silver is more virtuous with its own cause using water and fire. Strict rules are maintained in the law compendium of Manu. In *Manusmr̥ti* 9.286,[13] it is clearly specified that the punishment given to the offender guilty of adulteration of unadulterated commodities, valuable gems and natural resources, is the first level of amercement.

---

9 अद्भिर् गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर् ज्ञानेन शुध्यति ॥ — *मनुस्मृति* ५.१०९

10 तैजसानां मणीनां च सर्वस्याऽश्ममयस्य च । भस्मनाऽद्भिर् मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥
निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति । अब्जमश्ममयं चैव राजतं चाऽनुपस्कृतम् ॥ — वही ५.१११-१२

ताम्राऽयःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथाऽर्हं कर्तव्यं क्षाराऽम्लोदकवारिभिः ॥ — वही ५.११४

11 प्रोक्षणात् तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुध्यति । मार्जनोपाञ्जनैर् वेश्म पुनःपाकेन मृन्मयम् ॥ — वही ५.१२२

12 अपामग्नेश् च संयोगाद् धैमं रौप्यं च निर्बभौ । तस्मात् तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥ — वही ५.११३

13 अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ — मनुस्मृति ९.२८६

The ancient houses and floors were generally made of specific earthen materials and it needs to be purified using specific types of soils. *Manusmṛti* 5.124[14] elucidates the traditional methods of cleaning the floor and sanitizing the residential areas by sweeping, by a coating of soil liquids by sprinkling water, by scratching or raking and by the abode of cows for one whole day and night. *Manusmṛti* has imparted a fair share of importance to the cleanliness of roads, pathways, streets and alleys. *Manusmṛti* 9.282[15] considered squalor and filth a payable offence. It is further asserts in *Manusmṛti* 9.283[16] that anyone who drops filth on roads shall be reprimanded and will have to clean that place. Anyone who destroys the roads or lands or walls of a town or breaks the town gate shall be instantly banished from that particular area.

Internal Cleaning and Naturopathy

The ancient masters emphasized living a healthy and joyful life by adhering to hygienic practices and ethical principles, which eventually evolved into customs and value-driven traditions. Williams (1997) noted the significance of the Śrīphalakṛcarā fast, which advocates the planting of trees. The *bilva* fruit, known for its medicinal properties, contains *Aegle marmelos*. Ancient *ācārya* Suśruta recognized the therapeutic value of *bilva*, categorizing it as a vegetable rather than a fruit. Its leaves are so nourishing and sustaining that one could survive on them for days or even months. The Śaiva devotees survived for days only by the drinking the essence prepared by grinding the *bilva* leaves with water. Similarly, the trees associated with the Parṇakṛcchra fast hold profound significance across a wide spectrum of scriptural references, Dharmaśāstric texts, and indigenous medicinal literature in India. The leaves of these trees are recognized for their exceptional therapeutic value, often regarded as vital resources capable of sustaining human life during periods of scarcity or distress. Their medicinal efficacy is complemented by their ecological contributions — releasing oxygen, purifying the atmosphere, offering shade, and mitigating psychological stress.

These trees form an integral component of traditional Indian healing systems, where they are employed not only in medicinal formulations but also in natural therapies designed to enhance holistic well-being. The sanctity of rivers further

---

14 सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च । गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः ॥ — *मनुस्मृति* ५.१२४

15 समुत्सृजेद् राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥ — वही ९.२८२

16 आपद्गतोऽथवा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा । परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ — वही ९.२८३

amplifies the healing potential of such environments. The serene, tree-lined riverbanks — imbued with spiritual energy — have long been revered as ideal settings for introspection, naturopathy, and the restoration of mental and physical equilibrium. Ancient Indian wisdom thus affirms a deeply symbiotic relationship between environmental stewardship, therapeutic practices, and spiritual health.

Dharmaśāstra has laid great emphasis on religious worship, fasts and paying tribute to natural resources in the form of godlike creations. The *Matsya Purāṇa* talks of a fasting ritual called Mandāra Saptamī (Wilson 1983) which requires its performer to procure eight *mandāra* flowers in order to worship the God Sun. The *mandāra* tree, botanically identified as *Erythrina variegata* or *Erythrina indica*, holds a distinguished place in both religious and medicinal traditions of ancient India. While its blossoms — often associated with *Hibiscus rosa-sinensis* — are revered in Hindu rituals for their spiritual symbolism, their pharmacological significance is equally noteworthy. Rich in therapeutic properties, *mandāra* flowers have been traditionally used in treating ailments such as hypertension, cardiovascular disorders, and even certain forms of cancer. These curative attributes likely contributed to their dual role in religious worship and ancient healing practices.

The importance of the continuous cultivation, conservation, and ritual use of the *mandāra* tree is extensively emphasized in Hindu scriptures, Dharmaśāstra texts, and classical poetic literature, underscoring its sacred and ecological relevance. Furthermore, one of the notable healing methodologies from ancient Indian tradition involves hydrotherapy — particularly cold-water treatments — to alleviate high fevers. Among the various prescribed cold remedies, immersion in clean, cool river water, lotus-laden streams, or deep reservoirs is frequently mentioned. Such natural water sources, believed to possess inherent medicinal properties, not only aid in physiological recovery but also promote overall rejuvenation and vitality.

NATURAL RESOURCE PROTECTION

The foundational elements of the environment — such as the sun, moon, flora, medicinal herbs, water, air, energy, soil, heat, fuel, and minerals — are esteemed in ancient Indian texts as invaluable natural resources essential for sustaining life. *Manusmṛti*, in particular, articulates an ecological world view that closely aligns with the modern principle of "live and let live", thereby reflecting a deep-rooted awareness of the interdependence

between humanity and nature. *Manusmṛti* 5.45[17] explicitly prohibits acts of violence and the killing of animals, underscoring a moral framework grounded in non-violence (*ahiṁsā*) and coexistence.

Wildlife, recognized as a crucial component of the natural resource system, is accorded significant attention in Dharmaśāstric literature. The preservation of biodiversity and ecological equilibrium is highlighted through directives that protect animals not merely for their utilitarian roles — as providers of dairy products (cows, goats, sheeps) or as agents of labour and transportation (oxen, camels, elephants, horses) — but also for their intrinsic value within the broader ecosystem. Dharmaśāstra tradition unequivocally condemns poaching and animal slaughter, deeming such acts not only unlawful but also sinful.

Yājñavalkyasmṛti in its verse 2.19.226[18] explicitly criminalizes the slaughter of cows and the killing of animals like camels and elephants, particularly for the exploitation of leather and ivory, and prescribes punitive measures against such transgressions. Similarly, *Manusmṛti* 9.280[19] mandates the capital punishment for those found guilty of injuring or stealing animals such as elephants and horses, further reinforcing the sanctity attributed to animal life. Moreover, *Manusmṛti* 5.46-47[20] extol non-violence as a supreme virtue, positioning it as a cornerstone of righteous living and ecological harmony. These scriptural injunctions collectively reflect an advanced ethical consciousness aimed at the preservation of life and natural resources through regulated conduct and reverence for the environment.

Protection of Water Sources

In the classical Indian knowledge tradition, the centrality of water to human health, ecological balance, and cultural life is unequivocally affirmed. The Āyurvedic *ācārya*s have long emphasized the indispensable role of pure water in sustaining life and preserving physical well-being. Water, as a natural resource, is regarded as the most fundamental element for all living organisms — not only for physiological survival but also for purification, cleanliness, and the promotion of a hygienic environment. Dharmaśāstra

---

17 योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥ — *मनुस्मृति* ५.४५

18 लिङ्गस्य छेदने मृत्यौ मध्यमो मूल्यमेव च । महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणो दमः ॥ — *याज्ञवल्क्यस्मृति* २.२२६

19 कोष्ठागाराऽऽयुधागारदेवताऽगारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तॄंश् च हन्यादेवाऽविचारयन् ॥ — *मनुस्मृति* ९.२८०

20 यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति । स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥
यद् ध्यायति यत् कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥ — वही ५.४६-४७

texts assign both practical and sacred dimensions to water, with rivers occupying a particularly revered position. These water bodies are not only geographical entities but are also imbued with deep religious and spiritual significance. The rivers of ancient Bhārata were considered sacred and were central to the civilizational ethos, forming the lifeblood of the nation's economic and cultural systems. Their perennial flow was seen as a symbol of prosperity and spiritual continuity, deeply embedded in the collective consciousness of the people.

Historically, the location of major urban settlements along riverbanks attests to the critical role played by water sources in shaping early urban planning, transportation networks, and pilgrimage traditions. Riverine routes served as vital arteries of commerce and communication in ancient times. To this day, many of India's prominent pilgrimage sites remain situated on the banks of rivers, lakes, or oceans — demonstrating the enduring sanctity and environmental centrality of water bodies in the Bhāratīya tradition.

Manusmṛti 5.128[21] puts a great emphasis on the conservation of water and states that in order to clean and purify the impure substances, only a limited amount of water, sufficient enough to satiate the thirst of a cow, should be used. Similarly, a very minuscule amount of sand and water is required for cleansing the body organs from which urine and faeces are ejected. The rules and regulations were formulated to preserve and protect the water sources such as ponds, rivers, etc. *Manusmṛti* has considered the punishable offence for polluting or destroying sources of water. *Manusmṛti* 9.279, 9.281 and 9.285[22] state that anybody who breaks or destructs the water dam or spoils a water sources offender shall be slayed by completely drowning in water or liable to repair the damage done to that particular water source and made to pay the highest amercement. Capital punishment was prescribed for individuals who deliberately contaminated or polluted water sources, reflecting the critical importance of water in ancient times. Additionally, offenders who illegally extracted or stole water from a tank or disrupted the water supply were subjected to the first level of amercement as a penalty. These stringent measures, as outlined in Dharmaśāstric literature, emphasize the profound value and indispensability of water, both as a vital resource and a sacred element in society.

[21] आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर् भवेत् । अव्याप्ताश् चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ — *मनुस्मृति* ५.१२८

[22] तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा । यद् वाऽपि प्रतिसंस्कुर्याद् दप्यस् तुत्तमसाहसम् ॥ — वही ९.२७९
यस् तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् । आगमं वाऽप्यपां भिन्द्यात् स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ — वही ९.२८१
सङ्क्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः । प्रतिकुर्याच् च तत् सर्वं पञ्च दद्याच् छतानि च ॥ — वही ९.२८५

Air Quality Protection

Air is an essential component for human life. Every living organism is dependent on the oxygen present in the atmosphere. Therefore, the polluted air creates huge problem in respiration. *Manusmṛti* 4.61 describes the construction of appropriate residential areas and states that the residential areas must be located in a distance from the śūdra dwellings because the majority śūdras work on tasks like leatherwork, pesticides, burying the corpse and unhygienic labour works. The *Manusmṛti* 4.49-50[23] states that defecation must be done in the south direction of the residential areas and everyone must cover the place of defecation with soil, sand, sticks, clods, leaves and grass. Similarly *Manusmṛti* 3.75-77[24] clearly render that the air can be purified through performing the various *yajña* by households (*gṛhastha*) on daily basis. Performing of *yajña* in the sacrificial fire by lighting firewood and offering holy *sāmagarī*, it releases beneficial fumes which mixes in the atmosphere and makes the environment free from impurities.

Protection of Vegetation

Trees have been an integral part of human life since ancient times, serving as a vital source of food, shelter, and ecological balance. They play a crucial role in maintaining environmental equilibrium. In ancient India, trees were revered with great affection and devotion, often being worshipped for their sacred significance. Practices such as *jalābhiṣeka* (ceremonial water offering to trees) were a regular part of daily life, symbolizing respect and reverence. In modern terms, *jalābhiṣeka* translates to the simple yet significant act of watering trees and plants. Forests, as an extension of this ecological reverence, have always played a vital role in environmental conservation and protection. *Viṣṇu Purāṇa* is one of the oldest text of Dharmaśāstra, it elucidates an expiatory fast known as Śrīphalakṛcarā Vrata (Krishnamacharya 1953) observed by the Śaiva (devotees of Śiva). In this fasting ritual the performer has to survive on *śrīphala* (*bilvaphala* or wood-apple) for a month. This fruit is considered significant in worshipping the Lord Śiva. In order to worship and revere the lord, the Śaiva devotees began to plant and grow *bilva* trees in their homes as well as in all Śiva temples in India. They also

---

23 तिरस्कृत्योच्चरेत् काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना । नियम्य प्रयतो वाचं संवीताऽङ्गोऽवगुण्ठितः ॥
मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुङ्मुखः । दक्षिणाऽभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥ — मनुस्मृति ४.४९-५०

24 स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दैवे चैवेह कर्मणि । दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥
अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज् जायते वृष्टिर् वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः । तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ — वही ३.७५-७७

preserved the forest plantations and forests for *śrīphala* cultivation. This ancient practice of worship is exemplary in showcasing the protection of trees and forests. *Viṣṇusmṛti* presents another example of an expiatory fast known as Parṇakṛcarā Vrata (Krishnamacharya 1953), which prescribes its performers to subsist for seven days on seven different kinds of leaves of trees like *palāśa*, *udumbara* (*Ficus glomerata*), *padmā*, *śaṅkhāpuṣpī*, *brāhmī,* and others. These trees are still respected and planted all across the Bharata. The *Matsya Purāṇa* refers to a festival of nature celebrated by planting trees and worshipping them called Vṛkṣotsava. In this, the performer of the ritual should plant the trees and water them. This is a wonderful religious festival prescribed to be celebrated even when there is no dearth of trees but the value of trees, their plantation and preservation was recognized which has become an environmental duty for all. Likewise, the *Rājamārtaṇḍa*, a literary digest on Jyotiṣa and Dharmaśāstra is ascribed to the famous and illustrious king Bhoja, depicts a fasting ritual called Araṇyaṣaṣṭhī. In this fasting ceremony, all the women enjoin and visit the forest, on the sixth of the bright half of Jyeṣṭha lunar month. It is to be noted that "Araṇya" symbolizes the bountiful forest, nature, the greenery and signifies fertility, resources, and prosperity. The hidden indication is the maintenance of the forest for all kinds of resources, trees, leaves, herbs, forest products, animals and the environment (Bharadwaj 2021).

Major Environmental Issues

There are various factors which harm the environment like improper waste management, manufacturing industries and their effluents, an affluent lifestyle of the people, global warming, air and water pollution, overuse of fertilizers, the negative implication of the use of plastic and polythene, etc. Modern industrialization and population growth have exerted immense pressure on global natural resources. While advancements in machinery, fertilizers, pesticides, and high-yielding crop varieties have led to significant increases in agricultural productivity, they have also caused severe damage to land quality. Overgrazing, extensive deforestation, and intensive farming practices have transformed once-productive regions into barren landscapes. The disposal of waste, release of toxic chemicals and pesticides into water sources, deforestation, desertification, urbanization, and the pollution of air with harmful gases are some of the major environmental challenges facing the world today. The great epic *Mahābhārata* also identified environmental pollution to be detrimental for the whole society and the

major reason for various diseases caused because of improper waste management. Waste has been generated for as long as human beings have dwelled on this planet. Solid waste is the unwanted or useless solid materials generated from residential, industrial, and commercial activities of a particular area. It is categorized according to its origin such as domestic, industrial, commercial, construction or institutional or according to its contents like organic material, glass, metal, plastic paper, etc. or according to its hazard potential, i.e. toxic, non-toxin, flammable, radioactive, infectious, etc.

The relentless pollution of rivers poses a grave environmental concern in contemporary times. The construction of large-scale dams has significantly disrupted natural water flow, leading to the alarming depletion of perennial river systems that once carried abundant water throughout the year. Many of these rivers are now witnessing severe reduction in water levels and drying of tributaries. Urban settlements and industrial establishments located along riverbanks exacerbate the crisis by discharging untreated sewage and petrochemical effluents directly into these sacred water bodies.

Despite ongoing efforts to curb pollution through technological and mechanical means, the outcomes have not met the desired expectations. This failure underscores a deeper issue — the erosion of ecological sensitivity and the lack of reverence once attributed to natural elements. Ancient Indian traditions, rooted in a profound spiritual connection with nature, upheld rivers as divine entities and essential lifelines. Without revitalizing this collective consciousness and restoring a cultural ethos of respect towards rivers, contemporary conservation efforts may continue to fall short. Thus, alongside physical interventions, there is an urgent need for value-based environmental awareness campaigns that revive ancient ecological wisdom and inspire a sense of custodianship among the populace.

Ancient Indian Technique for Environmental Protection and Management

Waters, trees, flowers, leaves, and fruits have been celebrated in countless ancient texts and inscriptions, spanning from the Vedas and Purāṇas to the Dharmaśāstra and beyond. In ancient Bhārata, society was governed by a combination of administration, religious rites, rituals, and social institutions. Environmental protection and management were considered paramount. Indians recognized the importance of sustaining and promoting ecological balance through sacred incarnations and structured rituals aimed at preserving life on earth. Ancient Indian philosophy lays the foundation for the doctrine of *ahiṁsā* (non-violence), which is intertwined with the concepts of *karṁa* (actions)

and *punarjanma* (rebirth). Bhāratīyas have a staunch belief in the cycle of birth and rebirth, wherein a person incarnates as an animal or a bird in his next life. Therefore, attaching theological connotation makes citizen not only respect the different species, but also pay reverence to them. This institutionalizes the profound concept of refraining people from killing animals, birds, and fishes for commercial purposes and as well as for human consumption. There are many great Bhāratīya religious traditions like the *vrata*s and *utsava*s (Kane, P. 1955), *tīrtha*s, *śrāddha* ceremonies (funeral rites), and *pūjā*s (ritual worships of gods and fire sacrifices, etc.) in which rituals are performed based on these constituents of nature. The world community today is amazed at the ancient Indian religious culture which has treated nature and its constituents with such respect and reverence. Bhārata has an ancient tradition of protecting the environment. Most ancient texts teach us that it is the *dharma* of each and every individual in the society to protect nature. This is why people have always worshipped the nature. The importance of environment protection in India can be traced back to the period between 321-300 BCE.

Kauṭilya's *Arthaśāstra* underscores the critical importance of environmental protection as a central element of statecraft, explicitly prescribing punitive measures for individuals who neglect or violate environmental responsibilities. Similarly, the *Manusmṛti* articulates a nuanced doctrine concerning the judicious use of natural resources, accompanied by a graded system of punishments for acts that inflict harm upon ecological assets. These ancient Indian texts reflect a civilizational ethos wherein environmental consciousness was deeply embedded in legal, social, and moral frameworks. Ancient Indian society, as guided by sages and *ṛṣi*s, possessed an advanced understanding of environmental dynamics, appreciating the interdependence between human health and the physical, chemical, biological, and social dimensions of the environment. Their world view was intrinsically ecological — holistic in nature, integrated with the rhythms of the natural world, and designed to ensure the sustainability of human and non-human life alike. The emphasis was placed not on dominion over nature, but on *saha-āvāsitvam* — peaceful coexistence and ecological harmony. Ritual observances in ancient India were often rooted in environmental ethics. Practices such as ritual bathing in rivers were intended to preserve the sanctity and purity of sacred water bodies. Transgressions against these rituals were framed not merely as civic violations but as moral transgressions, carrying the weight of sin and spiritual consequences. The deterrent effect of *pāpa* (sin) and fear of posthumous punishment was a powerful force in ensuring compliance. Dharmaśāstra corpus categorically forbids various polluting activities in rivers such as defecation,

urination, spitting, rubbing of the body, bathing, and laundering, especially in sacred rivers like the Gaṅgā, Yamunā, and Narmadā. These proscriptions were rooted in both hygienic principles and a reverence for the purificatory and medicinal properties attributed to river waters. By enforcing such norms, the ancient Indian tradition advanced a proto-environmentalism that emphasized the maintenance of water quality, respect for natural resources, and prevention of ecological degradation.

Kannan (2017) has proposed a solution to the issue of waste management as mentioned in the scriptures. *Manusmṛti* and *Arthaśāstra* have declared the misuse of water sources as a punishable offence (Kannan 2017). Management of waste reduces or eliminates adverse impacts on the environment and human health and it further, supports economic development and improved quality of life. Since the ancient *vaidika* time the primary motto of Bhārata social life was to live in harmony and unison with nature and in a hygienic environment. Vedas, Upaniṣads, Smṛtis and Dharmaśāstra preach a worshipful attitude towards plants, trees, earth, sky, water, land animals and all living creatures. These natural resources were revered as God and goddesses and to maintain them pure was considered to be the duty of everyone. Thus, polluting air, water, or land was regarded as a sin. *Manusmṛti* first systematic treatment of Hindus law prohibited the throwing of garbage, dust, rubbish and pieces of meat, etc. on the roads and in water bodies and declared it to be a punishable offence. *Arthaśāstra* has mentioned that maintaining sanitation habits was essential and viable.

The ancient masters tactfully implemented much of their value-oriented teachings through certain rituals, taboos and totems, and made the people observe it as a spiritual duty; the violation of which was feared an anti-spiritual. This approach had an astonishing impact and the people accepted these value-oriented practices as a way of life and which in the course of time became traditions for ages ensuring the peaceful coexistence of humankind with other living organisms as well as with the physical environment. Another ancient Indian approach to environmental protection and management is the concept of *iṣṭāpūrtta*. The *likhita smṛti* highlights the significance of *iṣṭāpūrtta* with the verse *iṣṭena labhate svarge pūrttemokṣāmāpnuyāt* meaning that a person who performs virtuous deeds attains salvation and ascends to heaven in the afterlife. The importance of environmental protection can be understood through practices associated with *iṣṭāpūrtta*, which include rituals like *yajña*s, acts of worship, and the construction of water bodies such as ponds, pools, and reservoirs — activities that serve utilitarian purposes for daily life. *Yajña*s are the best means of environmental protection. *Yajña*s prove to be of a great

utility for the protection of the environment and maintaining its balance. Such a notion mentally trains the citizens to follow the environmental conservation and protection protocol. This was an indirect yet very effective way of environmental preservation at a larger scale (Mishra 2002).

Conclusion and Future Directives

In summation, the ancient Indian approach to environmental protection — as reflected in Dharmaśāstra literature — was underpinned by a deeply integrated system of religious, ethical, and legal sanctions. Environmental preservation was not merely a civic responsibility but a sacred duty (*dharma*), enforced through a dual framework of punitive measures: *iha-laukika* (earthbound) and *pāra-laukika* (supernatural) punishments. The *Manusmṛti*, particularly in verses 9.279-80, and 9.285, prescribes strict penalties for offences such as damaging water dams or polluting natural water sources, underscoring a sophisticated jurisprudence aimed at ecological regulation. While earthbound punishments addressed immediate societal infractions, the notion of supernatural consequences invoked metaphysical accountability through the doctrines of *pāpa* (sin), *puṇya* (virtue), and *mokṣa* (liberation), thereby reinforcing compliance through spiritual consciousness.

Environmental conservation, in this context, was intimately linked to sustainable use of natural resources. Festivals such as Vṛkṣotsava — documented as early as the fifth century CE — demonstrate ancient India's reverence for afforestation and ecological regeneration. Such traditions prefigure modern observances like World Environment Day, illustrating the enduring relevance of India's indigenous ecological wisdom. In contemporary times, where the challenges of sustainable development demand a balance between growth and ecological integrity, robust regulatory frameworks and environmental laws have become indispensable. These legal mechanisms echo the Dharmaśāstric imperative to harmonize human activity with ecological stewardship, thereby integrating environmental ethics into the societal value system.

The ancient *vrata*, *utsava*, and *pūjā* systems ritualized environmental elements — trees, rivers, flowers, and water bodies — as sacred entities, embedding environmental consciousness in the cultural psyche. Reviving these traditions, even in adapted forms, holds significant potential for modern ecological practices. Dharmaśāstric listerature clearly demonstrates that ancient Indian sages possessed a profound foresight regarding biodiversity, pollution control, and ecological harmony. Their prescriptions were not

only regulatory but transformative, aiming to instil environmental responsibility through spiritual introspection and moral accountability.

While the *smṛtikāra*s were not environmental scientists in the modern sense, their contributions to environmental jurisprudence and sustainable living reflect a nuanced understanding of ecological balance. The insights embedded in these texts offer valuable lessons for today's environmentalists, conservationists, and policymakers. By drawing upon this ancient environmental wisdom, modern society can enrich its efforts toward holistic, ethically grounded, and sustainable environmental management.

Acknowledgment

This work is the outcome of the research project funded by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR) under the major project scheme 2024-25 (File No.161/2024-25/ICSSR/RP/JM/OBC dated 19 March 2025). The authors are grateful for the financial support from the ICSSR, New Delhi.

References

Bharadwaj, R. M., 2021, "Trees, Flowers and Waters: Nature and Environment in the Hindu Vrata Religious Tradition-AD. 400-1200" *Indraprastha Shodha Sandarsh*.

Biswas, S., and D. Banerjee, 2016, "The Dead Language Sanskrit is not Actually Dead", *Journal of Education and Development,* 6(12): 90-97.

Bobade, A.P., 2019, "Significance of Indian Philosophy, Tradition, Culture and Indian Management Science (Bhāratīyavyavasthāpanaśāstra)", *International Journal of Hinduism & Philosophy,* 1(1): 24-29.

Dhole, S.S., 2017, "Evolving Role of Employment Legal Leadership in Corporate Governance and Management", *International Journal of Law & Management,* 4(2): 107-28.

Kannan, R.D., 2017, "An Analysis Solid Waste Management in Chennai City", *TEJAS: Thiagarajar College Journal,* 2(1): 56-62.

Kane, P.V., 1962, "*History of Dharmasastra,* Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.

Kane, P., 1955, "Passages from the Rajamartanda on Tithis, Vratas and Utsavas," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute* V. XXXVI, Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.

Krishnamacharya, V., 1953, *Vishnusmriti* vol. II, Chennai: The Adyar Library Series.

Kumar, G., S. Mohapatra and G. Singh, 2019, "The Concept of Swachhata in Ancient Indian Texts and its Relevance in 21st Century" *Jigyasa* 12(2).

Mishra, S., 2002, "Dharmshastron mein Paryavaran", Doctoral thesis, Varanasi: Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith.

Narayanaswamy, V., 1981, "Origin and development of Ayurveda: (A Brief History)", *Ancient Science of Life,* 1(1).

Olivelle, P., 2004, *The Law Code of Manu,* Oxford University Press, UK.

Padhy, S., S. K. Dash, and R. Mohapatra, 2006, "Environmental Laws of Manu: A Concise Review", *Journal of Human Ecology,* 19(1): 1-12.

Pushpangadan, P., J. Sharma, and J. Kaur, 1987, “Environmental Health and Hygiene in Ancient India: An Appraisal”, *Ancient Science of Life,* 7(1): 1-5.

Pollock, S., 2001, “The Death of Sanskrit”, *Comparative Studies in Society and History,* 43(2): 392-426.

Shastri, J. L, and G.V. Tagare, 1978, *The Bhāgavata Purāṇa,* Part IV, New Delhi: Motilal Banarsidass.

Sridhar, N., 2020, *The Concept of Shaucha or Cleanliness in Hindu Dharma*. Retrieved from Centre for Indic Studies: http://cisindus.org

Williams, M. M., 1997, *A Sanskrit-English Dictionary,* New Delhi: Motilal Banarsidass.

Wilson, H., 1983, *The Matsya Purana,* part I, New Delhi: Nag Publishers.

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा*

आयोजन समिति

अध्यक्ष – मा॰ दिनेश चन्द्र (संरक्षक, विश्व हिन्दू परिषद्)

उपाध्यक्ष – मा॰ वी॰ कोटेश्वर राव (संयुक्त महामन्त्री, विश्व हिन्दू परिषद्)
मा॰ महेश भागचन्दका (संस्थापक न्यासी, अशोक सिंहल फाउण्डेशन)

संयोजक – प्रो॰ बृज किशोर कुठियाला (पूर्व कुलपति, माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल; एवं पूर्व अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद्)

निदेशक – प्रो॰ सन्निधानं सुदर्शन शर्मा (पूर्व कुलपति, श्री वेंकटेश्वर वेद विश्वविद्यालय, तिरुपति)

सदस्य – प्रो॰ रमेशकुमार पाण्डेय (पूर्व कुलपति, श्री ला॰ब॰शा॰रा॰सं॰ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
प्रो॰ देवीप्रसाद त्रिपाठी (पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार; एवं अध्यक्ष, वेद-वेदांग संकाय, श्री ला॰ब॰शा॰रा॰सं॰ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
श्रीमान रवीन्द्र गोयल (न्यासी, बद्री भगत झण्डेवाला टेम्पल सोसाइटी, नई दिल्ली)

प्रथम सत्र

विषय – वर्तमान सन्दर्भ में वेदों का परिचय

अध्यक्ष – डॉ॰ सतीश रेड्डी (पूर्व अध्यक्ष, रक्षा अनुसन्धान विकास संगठन, डी॰आर॰डी॰ओ॰)

प्रवचन – स्वामी धर्मबन्धु (प्रमुख, वैदिक मिशन ट्रस्ट)

सारस्वत अतिथि – डॉ॰ सच्चिदानन्द जोशी (सदस्य सचिव, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र)

सान्निध्य – माननीय दिनेश चन्द्र (संरक्षक, विश्व हिन्दू परिषद्)

सत्र संचालन – प्रो॰ भावना पाण्डेय

प्रथम सत्र का शुभारम्भ प्रातः 10 बजे दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। संगोष्ठी के आरम्भ में प्रो॰ सन्निधानं सुदर्शन शर्मा ने अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान की स्थापना भारत को विश्वगुरु बनाने के उद्देश्य से की गई है। इस संस्थान के माध्यम से वेदों में वैज्ञानिक तत्त्वों की खोज की जा रही है और इन शोध कार्यों का प्रकाशन *श्रुतिप्रभा* नामक पत्रिका में नियमित रूप से किया जा रहा है। उन्होंने वैदिक ज्ञान-विज्ञान को आज के वैज्ञानिक और सामाजिक सन्दर्भों में प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

---

* अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक संगोष्ठी, द्विदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गोष्ठी, 15-16 दिसम्बर 2024।

प्रोफेसर बृज किशोर कुठियाला ने संगोष्ठी आयोजन के उद्देश्यों को सभा में व्यक्त करते हुए वेदों के महत्त्व पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि भारतीय ज्ञान परम्परा और वैदिक विज्ञान, वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वेद मानव सभ्यता की प्राचीनतम धरोहर हैं, जबकि कृत्रिम बुद्धि (AI) आधुनिक घटना है। उन्होंने बताया कि मनुष्य की सीखने और सिखाने की इच्छा ने उसे कृत्रिम बुद्धि के विकास तक पहुँचाया। उन्होंने टेक्नोलॉजी के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर भी चर्चा की और कहा कि संगोष्ठी का मुख्य लक्ष्य वेदों की शिक्षा के माध्यम से समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना है। उन्होंने बताया कि संगोष्ठी में तीन प्रकार के विद्वानों का समागम हुआ। पहला समूह वेद विज्ञान के आधुनिक ऋषियों का था, जो वेदों का आधुनिक सन्दर्भों में प्रयोग कर रहे हैं। दूसरा समूह संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन कर रहे और वेद की शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर रहे विद्वानों का था। तीसरा समूह संस्कृतेतर विषयों जैसे विज्ञान और वाणिज्य के विशेषज्ञों का था, जिन्हें वेदों को समझने की उत्कण्ठा है। कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य वेदों के विज्ञान पर आधारित कृत्रिम बुद्धि का निर्माण करना था। प्रवचनकर्ताओं ने कहा कि यह कार्य केवल कम्प्यूटर साइंस के विशेषज्ञों तक सीमित नहीं होना चाहिए। इस सन्दर्भ में वेदों पर आधारित कोड ऑफ एथिक्स का निर्माण भी आवश्यक है।

सत्र के प्रवचनकर्ता स्वामी धर्मबन्धु ने वेद के विभाजन के वैज्ञानिक आधारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि वेद के बिना कृत्रिम बुद्धि का सम्पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। वैदिक ज्ञान परम्परा के मूल तत्त्वों को कृत्रिम बुद्धि की कार्य-प्रणाली में सम्मिलित करना अनिवार्य है। उन्होंने बताया कि वेद न केवल आध्यात्मिक बल्कि वैज्ञानिक आधार पर भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। "वर्तमान सन्दर्भ में वेद का परिचय" इस विषय पर प्रवचन करते हुए स्वामी धर्मबन्धु जी ने कहा कि वेद शब्द विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद् सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, इन चार धातुओं से घञ् प्रत्यय करके वेद शब्द की सिद्धि होती है। वेद हमें ऋषियों द्वारा प्राप्त हुआ है। प्रथम वेद *ऋग्वेद* है, जिसकी व्युत्पत्ति – "ऋचति इति ऋक्, ऋक् चासौ वेदः ऋग्वेदः"। जिसके द्वारा ज्ञान को अच्छे प्रकार से जाना जाता है वह *ऋग्वेद* कहलाता है। *ऋग्वेद* में 10 मण्डल, 85 अनुवाक, 1,028 सूक्त, और 10,580 मन्त्र तथा 1,53,526 शब्द तथा 4,32,000 अक्षर हैं। ऋषियों ने इसे मस्तिष्क के रूप में जाना है। *ऋग्वेद* का ब्राह्मण *ऐतरेय ब्राह्मण* एक ज्ञान का स्रोत है इससे सभी शिक्षित एवं दीक्षित हुए हैं।

यजुर्वेद – "यजन्ति येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति", "शिल्पविद्या सङ्गतिकरणं च कुर्वन्ति, शुभविद्यागुणदानञ्च कुर्वन्ति तद् यजुः" इति। जिस ज्ञान के द्वारा हम संरचना, उपयोग, श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ गुण आदि का उपयोग करते हैं वह *यजुः* है। इसके दो भेद हैं – 1. *शुक्ल यजुर्वेद*, 2. *कृष्ण यजुर्वेद*। *शुक्ल यजुर्वेद* का प्रचलन विशेषकर उत्तर भारत में तथा *कृष्ण यजुर्वेद* का दक्षिण भारत में है। शुक्ल यजुर्वेद में 2,88,000 अक्षर हैं। यजुर्वेद को कर्म की प्रधानता के कारण इसे कर्मकाण्ड के नाम से जाना जाता है। *ऋग्वेद* को मस्तिष्क एवं *यजुर्वेद* को भुजा के रूप में जाना जाता है। जिसके कर्मों द्वारा अनिष्ट की समाप्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति हो उसे *सामवेद* कहते हैं। इसके दो विभाग हैं – 1. पूर्वार्चिक, 2. उत्तरार्चिक । *सामवेद* में 1,875 मन्त्र तथा 1,000 शाखाएं थीं। *महाभाष्य* में पतञ्जलि ने कहा है – "एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः" (प॰*महाभाष्य*, प्र॰पा॰आ॰ 1) । इसके प्रमुख विषय अध्यात्म और उपासना हैं। इसके ब्राह्मण ग्रन्थों में *ताण्ड्य*, *आर्ष*, *षडविंश*, *तलवकार*, *सामविधान*, *जैमिनीय ब्राह्मण* आदि हैं।

सामवेद में अध्यात्म की प्रमुखता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने *सामवेद* के लिए कहा है कि –

वेदानां सामवेदोऽस्मि ॥

अथर्वाणोऽथनवन्तः । थर्वतिश्चरतिकर्मा । तत्प्रतिषेध अथर्व इति । – *निरुक्तशास्त्र* 11.18

अथर्ववेद में 20 काण्ड, 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक तथा 5987 मन्त्र हैं। इसकी 9 शाखाएँ थी एवं वर्तमान में दो शाखा प्रचलित हैं। *ऋग्वेद* में 21 शाखाएँ तथा *सामवेद* में 1,000 शाखाएँ एवं यजुर्वेद की 101 शाखाएँ थी। *अथर्ववेद* को विज्ञानकाण्ड का अंश मानते हैं। वेद में मिलावट का प्रयास किया गया परन्तु वेद अध्ययन की विधियों के कारण सुरक्षित रहा। जैसे संहिता, पद, क्रम और विकृतपाठ। विकृतपाठ – जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, घन पाठ हैं। वेद में इस पाठ विधि से पता चलता है कि सृष्टि के आदि की ऋषि वेद को परमात्मा मानते थे। वेद गुरुओं का भी गुरु है। वह ब्रह्म है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में वेद को शाश्वत कहा गया है।

वाल्मीकि रामायण में उदाहरण है कि उस समय सामान्य लोग भी वेदाभ्यास से ही परम विद्वान् होते थे, जैसे *वाल्मीकि रामायण* में भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मण से हनुमान्-जी की योग्यता बताते हुए कहते हैं –

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।
– *वा॰रा॰* 4.3.28

अर्थात् श्रीराम लक्ष्मण-जी से कहते हैं कि ये हनुमान्-जी उच्च कोटि के विद्वान् हैं, क्योंकि *ऋग्वेद* के अध्ययन से अनभिज्ञ, *यजुर्वेद* के ज्ञान से हीन और *सामवेद* के बोध से शून्य व्यक्ति ऐसी परिष्कृत भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।
– *वा॰रा॰* 4.3.29

अर्थात् निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि इनके इतने समय बोलने में इन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की है।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।
– *महाभा॰*, शा॰ पर्व 231.56

वेद एक शाश्वत ग्रन्थ है। यह समाज में कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। जो सकारात्मक ऊर्जा होती है वह नकारात्मक ऊर्जा को समाप्त कर देती है। सकारात्मक के साथ नकारात्मक ऊर्जा भी निकलती है। जैसे समुद्र-मन्थन से अमृत के साथ विष भी निकला।

ऋग्वेद में कहा गया है कि "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" (8.33.19)। ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा के समान माना गया है। *अथर्ववेद* में स्त्रियों को शुद्ध/पवित्र कहा गया है।

मनु ने कहा है कि –

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।
– *मनुस्मृति* 3.60

जिन धर्मों में, परिवार में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता था (अर्थात् विश्व में अन्य धर्मों में स्त्रियों के प्रति कोई आदर भाव नहीं था जैसे ईरान, यूरोप आदि, में परन्तु) अब वेद को जानने के बाद आदर दिया जा रहा है। वेदों में समानता की बात कही गई है ।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।
– *अथर्ववेद* 3.30.6

हमारा भोजन-पानी, विचार, व्यवहार सब एक समान हो ।

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं सऽ ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।।
– *शुक्ल यजुर्वेद*, 32.8

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसां ...।
– *हितोपदेश* 1.71

उदार प्रकृति के लोगों के लिए संसार एक परिवार है। इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी के द्वारा परिवार दूर होता चला गया। परिवार को जोड़ना है तो वैदिक पद्धति से जोड़ा जा सकता है ।

दृते दृं ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।
– *शुक्ल यजुर्वेद*, 36.18

प्रेम की भाषा रखो, तभी दुनिया में शाश्वत विकास प्राप्त कर सकते हैं।

इमं देवा ऽअसपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।
इमम् अमुष्य पुत्रम् अमुष्यै पुत्रम् अस्यै विश ऽ एष वो ऽमी राजा सोमो स्माकं ब्राह्मणानां राजा ।।
– *शुक्ल यजुर्वेद*, 9.40

राजा का शासन प्रजा पर तथा प्रजा का शासन राजा पर था। हमारी वैदिक परम्परा की विश्व उपेक्षा करता था परन्तु आज विश्व इसी सिद्धान्त (प्रिंसिपल) को अपना रहा है ।

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै देहि ।।

वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै देहि ।।
– *शुक्ल यजुर्वेद*, 10.2

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते ।
– *भट्ट निबन्धावली*, 2. पृष्ठ १३६

प्रोफेसर सच्चिदानन्द जोशी ने अपने वक्तव्य में कहा कि युवा पीढ़ी को वेदों के विज्ञान से जोड़ना समय की आवश्यकता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वेदों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए एक विस्तृत योजना तैयार की जानी चाहिए। उन्होंने रचनात्मकता को मनुष्य की प्रमुख विशेषता बताते हुए कहा कि कृत्रिम बुद्धि इस रचनात्मकता को धीरे-धीरे नष्ट कर रही है। इसे संरक्षित रखने के लिए संगठित प्रयासों की आवश्यकता है।

माननीय दिनेश चन्द्र जी ने वेदों की सार्वभौमिकता पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि वेद सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वलौकिक हैं। वेदों का अनुशीलन करने से व्यक्ति में पुरुषार्थ की भावना जागृत् होती है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ... " (*शुक्ल यजुर्वेद*, अ॰ 40.1)। *ईशावास्योपनिषद्* के भाव को कृत्रिम बुद्धि में सम्मिलित करना अनिवार्य है। उन्होंने कहा कि वैदिक संस्कृति की विश्व-कल्याण की भावना को भी कृत्रिम बुद्धि में शामिल किया जाना चाहिए।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे डॉ॰ सतीश रेड्डी ने "Preaching of Vedas for AI Assisted Living" विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कृत्रिम बुद्धि के लिए वेदों के व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत किए और वेदान्त तत्त्व मीमांसा पर आधारित कृत्रिम बुद्धि के निर्माण की विस्तृत योजना पर चर्चा की। उन्होंने प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के बीच एक सेतु बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। उनका मानना था कि वर्तमान समय में वेदों पर आधारित वैज्ञानिक शोध तो हो रहे हैं, किन्तु व्यवस्थित रूप में नहीं हो रहे। उन्होंने कहा कि देश में एक सुव्यवस्थित और सुनियोजित ढंग से वैज्ञानिक शोध किया जाना चाहिए। सत्र के समापन में सभी वक्ताओं ने संगोष्ठी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलकर कार्य करने का आह्वान किया। उन्होंने वेदों की सार्वकालिक प्रासंगिकता पर जोर देते हुए समाज को सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ाने के लिए इनकी उपयोगिता को रेखांकित किया।

शशिकान्त मिश्र

द्वितीय सत्र

विषय – वर्तमान सन्दर्भ में ऋग्वेद का परिचय

अध्यक्ष – पण्डित विनायक मोरेश्वर घैसास (सञ्चालक थायसार गुरुकुल, पुणे)

प्रवचनकर्ता – डॉ॰ रंगनाथन (पूर्व आचार्य, बेंगलुरु)

सारस्वत अतिथि – श्री नीलकण्ठन घनपाठी (वेदपाठी, कुम्भकोणम्)

सान्निध्य – प्रो॰ सन्निधानं सुदर्शन शर्मा (निदेशक, अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान, गुरुग्राम)

सत्र सञ्चालन – डॉ॰ गोविंद वल्लभ

सङ्गोष्ठी के द्वितीय सत्र का आरम्भ मध्याह्न 12 बजे हुआ। सत्र के प्रवचनकर्ता डॉ॰ रंगनाथन ने अपने वक्तव्य में *ऋग्वेद* के ऐतिहासिक महत्त्व का वर्णन किया। उन्होंने इसे विश्व में सर्वप्राचीन ग्रन्थ बताते हुए सम्प्रदाय (परम्परा) के माध्यम से वेदों के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने बताया कि *ऋग्वेद* में न केवल दर्शनशास्त्र और ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के सिद्धान्तों का आधार है, अपितु इसमें उत्कृष्ट कविताओं का समावेश भी है। उदाहरणस्वरूप उन्होंने नासदीय सूक्त का उल्लेख किया –

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।। 1 ।।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।। 2 ।।[1]

जो ब्रह्माण्ड की सृष्टि और अस्तित्व से पूर्व की स्थिति का वर्णन करता है। इसे आधुनिक बिग बैंग थ्योरी और ब्रह्माण्डीय विस्तार से जोड़ा गया। डॉ॰ रंगनाथन ने कहा कि *ऋग्वेद* की ऋचाओं में से दो-तिहाई अग्नि देवता को समर्पित हैं, जो उनके महत्त्व को दर्शाती हैं। उन्होंने सगुण और निर्गुण सृष्टि की अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त का उदाहरण दिया। पुरुष सूक्त (10.90.1-2) में कहा गया है –

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।। 1 ।।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।। 2 ।।

उन्होंने गुरु–शिष्य परम्परा का उल्लेख करते हुए *छान्दोग्य उपनिषद्* में श्वेतकेतु और आरुणि तथा *कठोपनिषद्* में नचिकेता और यम के संवाद की व्याख्या की। डॉ॰ रंगनाथन जी ने कहा कि सार्वभौमिक दृष्टिकोण से वेद इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि विश्व की ऐतिहासिक शिक्षा में यह सबसे पहले लिखित अभिलेख हैं। यह ज्ञान गुरु से शिष्य तक, पिता से पुत्र तक परम्पराओं में स्थानान्तरित किया गया। गुरु शब्द का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हो सकता। गुरु अर्थात् शिक्षक, अध्यापक, मैन्टोर नहीं गुरु ही होता है। इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है। गु अर्थात् अज्ञान, रु अर्थात् निवारक। इस प्रकार गुरु शब्द का अर्थ हुआ अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाला और ज्ञानरूपी प्रकाश को स्थापित करने वाला गुरु होता है। भारत में सबसे महान् गुरु परम्परा रही है। भारत के इतिहास में गुरु–शिष्य परम्परा का प्रारम्भ हुआ – "देवतारुधारित्वात् शिष्यानुग्रकारणात्। कारुण्यमृत् .... कथित प्रिये॥" यदि हम सम्प्रदाय (परम्परा) में पूर्ण निष्ठा से विश्वास करते हैं तो सर्वसिद्धि सम्भव है – "सम्प्रदाय विश्वासाभ्याम् सर्वसिद्धिः॥" जो व्यक्ति सभी शास्त्रों को जानकर भी यदि किसी सम्प्रदाय से जुड़ा नहीं है तो उसकी मूर्ख के समान उपेक्षा करनी चाहिए – "असम्प्रदायविद् सर्वशास्त्रविदपि मूर्खवत् उपेक्षणीयः॥" सम्प्रदाय (परम्परा) के बिना इस संसार में कुछ भी पाना सम्भव नहीं है। हमें अपनी परम्परा (कुल परम्परा, गुरु परम्परा) से ज्ञान प्राप्त करके उसे उत्तरोत्तर योग्य व्यक्तियों के द्वारा आगे बढ़ाना चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो भारत का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। भारत अर्थात् –

भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु ।
तरणं सर्वतीर्थानां तेन भारतमुच्यते ।।
– *हरिवशं-भारत सावित्री* श्लोक 62

पृथ्वी का जो इतिहास है वह *ऋग्वेद* में ही प्रतिफलित होता है। *ऋग्वेद* का अध्ययन करने से हमें मुख्य दो विषयों का ज्ञान होता है –

1. Comparative philology.
2. Comparative mythology.

---

[1] ऋग्वेद – 10.129.1-2

ऋग्वेद में इन दो विषयों के अतिरिक्त भी बहुत से विषय हैं जैसे मनोविज्ञान, दर्शन, गणित, ज्योतिष विज्ञान, सृष्टिनिर्माणतत्त्व, उत्तम कोटि का काव्य आदि। काव्य लिखने वाले कवि के विषय में कहते हैं – "कविः क्रान्तदर्शी।" अर्थात् कवि क्रान्तदर्शी होते हैं। *ईशावास्योपनिषद्* के 8वें मन्त्र का उदाहरण देकर कहा –

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

कवि अर्थात् कविता करने वाला नहीं, कवि क्रान्तदर्शी होते हैं। कवि बनते नहीं हैं, कवि जन्म लेते हैं। कविता का सबसे अच्छा निदर्शन हमें सृष्टि के आदि काव्य *ऋग्वेद* में ही मिलता है। भगवान् का स्वरूप वह जो सबसे शक्तिशाली भी है और सबसे दयालु भी है। GOD (भगवान्) है –

- G अर्थात् (जनरेटर) सृष्टिकर्ता,
- O अर्थात् (ऑर्गेनाइजर) सृष्टि पालन कर्ता,
- D अर्थात् (डिस्ट्रॉयर) सृष्टि संहार कर्ता।

भगवान् में सृष्टि, स्थिति और लय तीनों समाए हुए हैं –

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति।
– तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1.1

ताण्ड्य और लास्य दैवी नृत्य के दो सम्प्रदाय हैं। ताण्ड्य शिव भगवान् और लास्य माता पार्वती से सम्बन्धित है। ताण्ड्य शब्द तण्डु से आया है बाद में यह तण्डु पुरुष नृत्य में बदल गया। बाणासुर की पुत्री उषा देवी द्वारा लास्य महिला लोक नृत्य में परिवर्तित हो गया। माता पार्वती एवं भगवान् शिव केवल नृत्य के प्रतीक नहीं हैं, अपितु ये जगत् के भी माता-पिता हैं। कालिदास द्वारा रचित *रघुवंश* के पहले श्लोक में कहा गया है – "जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।" यह नमस्कारात्मक मंगलाचरण है।

ऋग्वेद 7.35.3 में सुन्दरता से शान्ति और कल्याण की भावना का सुव्यवस्थित चित्रण किया गया है। उन्होंने इन मन्त्रों का पाठ किया –

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।। 1 ।।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।। 2 ।।

शं नो धाता शमु धर्ता शं नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।। 3 ।।

उन्होंने *ऋग्वेद*, *महाभारत* और *मृच्छकटिकम्* आदि ग्रन्थों का उदाहरण देकर बताया कि जुआ खेलने से बुद्धि का विनाश प्रारम्भ होता है। *महाभारत* में भी जुए के कारण पाण्डव द्रौपदी को हार जाते हैं। *ऋग्वेद* के अक्ष सूक्त व कितव सूक्त में जुआरी का विलाप वर्णित है। वह स्वयं लाई गई विपत्ति पर दुःख प्रकट करता है। हमारे यहाँ सवितृ सूक्त में इन्द्र सर्वश्रेष्ठ

देवता के रूप में वर्णित हैं। *ऋग्वेद* में पहले मन्त्र से लेकर अन्तिम मन्त्र तक अग्नि का वर्णन विस्तार से किया गया है। दर्शन का प्रारम्भ भी *ऋग्वेद* से हुआ है। अतीत मेरे भविष्य में है, भविष्य मेरे वर्तमान में है, अतीत और भविष्य दोनों वर्तमान में हैं। पूर्व और पश्चिम के विद्वानों में एक विषय पर बहुत चिन्तन हुआ है और वह विषय है – सृष्टि कि उत्पत्ति कैसे हुई? और इसका विलय कहाँ होगा? पश्चिम के विद्वान् मानते हैं कि इस विषय में हमें भारत के ज्ञान का ही आश्रय लेना होगा।

प्रिंसिपिया मैथमेटिका के लेखक बर्ट्रेण्ड रसेल स्वीकार करते हैं कि ईमानदारी, सत्य, निष्ठा, सरलता, कठिन परिश्रम, दृढ़ता इन सबका कोई विकल्प नहीं होता। *ऋग्वेद* के कुछ विषय बहुत स्पष्ट हैं, कुछ पहेलियों में हैं। सगुण सृष्टि का स्वरूप सबसे पहले पुरुष सूक्त में मिलता है। निर्गुण सृष्टि का स्वरूप सबसे पहले नासदीय सूक्त में मिलता है। पुरुष सूक्त जगत् का कारण पुरुष को बताता है। ब्रह्माण्ड निर्माण की प्रतीकात्मक संरचना पुरुष सूक्त में मिलती है। ब्रह्माण्ड निर्माण की सूक्ष्म संरचना नासदीय सूक्त में मिलती है। जिसको जीवविज्ञान की दृष्टि से भी सिद्ध किया जा सकता है। *ऋग्वेद* का ज्ञान-योग और भक्ति-योग वेदान्त दर्शन से होते हुए *श्रीमद्भगवद्गीता* जैसे महान् ग्रन्थ तक पहुँचा है।

सार्वभौमिक दृष्टि से चिन्तन करके देखेंगे तो पाएंगे कि भगवान् से बड़ा शक्तिशाली कोई भी नहीं है। वह हमें प्रत्येक संकट से बचाने वाला है। इसीलिए भगवान् के ऊपर अटूट विश्वास और दृढ़ विश्वास बनाए रखना आवश्यक है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि विश्वास से क्या नहीं हो सकता, पर्वत को भी हिलाया जा सकता है। शंकराचार्य ने *विवेकचूड़ामणि* 26 में कहा है –

शास्त्रास्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणात्, सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते।

अटूट विश्वास के लिए *श्रीमद्भगवद्गीता* 4.39 की यह पंक्ति प्रसिद्ध है – "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्"।

विवेकानन्द जी ने कहा है "श्रद्धा" शब्द का अंग्रेज़ी में अनुवाद नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार "धर्म" शब्द जैसा है उसको वैसे ही स्वीकार करना होगा । धर्म शब्द का अंग्रेज़ी में रिलीज़न अर्थ किया जाता है, लेकिन वह धर्म के वास्तविक अर्थ को नहीं बताता। धर्म क्या है? "धारणात् धर्म इत्याहु, धर्मो धारयते प्रजा"।

इसके साथ ही *ऋग्वेद* में लम्बी आयु के लिए भी प्रार्थनाएँ मिलती हैं –

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ – शुक्ल यजु॰ 36.24

किसी के ऊपर क्रोध न करना लम्बी आयु का रहस्य होता है। क्रोध मन से बुद्धि में जाकर बुद्धि को भ्रष्ट करता है। अगर आप क्रोध पर नियन्त्रण नहीं करेंगे तो यह आप पर नियन्त्रण करने लगेगा। इसका परिणाम बहुत भयंकर होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता 2.62 में कहा गया है –

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।

हमें अपने कदम सम्भालकर उठाने चाहिए। कुछ भी बोलें तो सोच-विचार कर बोलें। आगे बढ़ाया हुआ पैर तो पीछे लिया जा सकता है लेकिन आपकी वाणी से निकला हुआ शब्द वापस नहीं आ सकता।

भक्ति क्या है इसके लिए शंकराचार्य कहते हैं – "स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।" (*विवेकचूड़ामणि* 32)

और भी कहा है – "भक्तिश्रद्धया कुरु" । उन्होंने कहा – "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति" (*श्रीमद्भगवद्गीता* 19.26)। आप क्या अर्पित कर रहे हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। आप किस भाव से दे रहे हैं यह विषय महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मेरे पिताजी हमेशा कहा करते थे दूसरों से यह मत कहो कि तुम मेरे लिए क्या कर सकते हो अपितु हमें यह सोचना चाहिए कि हम दूसरों के लिए क्या कर सकते हैं । उन्होनें यह भावना प्रकट करते हुए अपनी वाणी को विराम दिया।

सत्र के सारस्वत अतिथि श्री नीलकण्ठ घनपाठी ने वैदिक उपायों की श्रेष्ठता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि धर्म वह है जो जीवन को श्रेष्ठ बनाए। उन्होंने *ऋग्वेद* की संरचना और संरक्षण के लिए प्रयुक्त प्रक्रियाओं जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, और घनपाठ की विस्तृत व्याख्या की। वेदों के अध्ययन के लिए तीन चरण बताए गए हैं – वेद का स्वरूप, ज्ञान, और आचरण। उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला कि वेद के ज्ञान से व्यक्ति से लेकर विश्व तक का कल्याण सम्भव है। धर्म को बताने वाले वेद हैं। धर्म क्या है? जिसके अनुष्ठान से, जिसके आश्रय से हम अपना जीवन सार्थक कर सकते हैं वह धर्म है। हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए और हमारे जीवन में किन विषयों का निषेध होना चाहिए यह मुख्य रूप से हमें वेदों से ही पता चलता है। वेदों में भी सर्वप्रथम वेद *ऋग्वेद* है। इसमें दस मण्डल हैं। *ऋग्वेद* का एक विभाग अष्टक के रूप में भी होता है, इसमें आठ अष्टक हैं । प्रकृति और विकृति के विभाग से वेद दो प्रकार के हैं। मन्त्र और ब्राह्मण नाम से दो विभाग हैं। जिसमें मन्त्र से तात्पर्य है संहिता और ब्राह्मण से तात्पर्य आरण्यक, उपनिषद् और ब्राह्मण इन तीन प्रकारों से है। ये चारों रूपात्मक भेद हैं, लेकिन मुख्य भेद प्रकृति-विकृति रूप से दो ही प्रकार के हैं। यहाँ पर मुख्य विशेषता यह है संहिता भाग और ब्राह्मण भाग प्रकृति रूप में है। वेद के आठ विकृति पाठ इस प्रकार हैं –

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः।।
– *वेदशिक्षा* 8

वेद के संरक्षण के लिए ये भाग किए गए हैं। प्रातिशाख्य में कहा गया है वेद का संरक्षण दो प्रकार से होता है – 1. स्वरूप संरक्षण, 2. अर्थ संरक्षण।

स्वामी रामसुख दास के गीता श्लोक 16.18 के हिन्दी भावार्थ के अनुसार भगवान् ने कहा है –

श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे य उल्लङ्घ्य प्रवर्तते।

अन्य प्राणियों को ईश्वर की आज्ञा पालन करना उतना आवश्यक नहीं है जितना मनुष्यों के लिए आवश्यक है। क्योकि मनुष्य अन्य प्राणियों से व्यवस्थित जीवन यापन करता है। शास्त्रों में कहा भी गया है –

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।
– *नीतिशतकम्* 12

भगवत आज्ञा ही धर्म है । वेदों का संरक्षण, आचार का परिपालन दोनों एक ही बात हैं। यदि हमें वेदों की रक्षा करनी है तो हमें तीन बातों को आवश्यक रूप से जानना होगा –

1. वेदों का स्वरूप क्या है?

2. वेदार्थ ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

3. वेद के अर्थ का आचरण करना बहुत आवश्यक है।

यह हमें स्पष्ट रूप से पता होना चाहिए। यदि हम इन तीनों का पालन करेंगे तब हम वेद की आज्ञा का पालन कर सकेंगे। इसीलिए वेदों के प्रकृति-स्वरूप के संरक्षण के लिए, विकृति-स्वरूप को जानना आवश्यक है। मनुष्य की प्रवृत्ति के बारे में बताते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा में कहा – "जानाति इच्छति यतते चेष्टेते"। ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, क्रिया ये चार प्रकार की प्रवृति हैं। यदि इसी क्रम में सब होता है तो ठीक है यदि इस क्रम को विपरीत करेंगे तो सब गलत हो जाएगा।

प्रो० सं सुदर्शन शर्मा ने *ऋग्वेद* में अग्नि को प्रेरक शक्ति के रूप को रेखाङ्कित किया। उन्होंने बताया कि *ऋग्वेद* में वर्णित सरमा सूक्त आधुनिक काल में अपराध जाँच के क्षेत्र में कुत्तों के उपयोग से मेल खाता है। उन्होंने वैदिक परम्पराओं के वैज्ञानिक पहलुओं को रेखाङ्कित करते हुए बताया कि वेद से ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नई दिशा प्राप्त होती है।

सत्राध्यक्ष पण्डित विनायक मोरेश्वर घैसास ने वेदों की दशग्रन्थ परम्परा और उनके संरक्षण पर चर्चा की। उन्होंने बताया कि महाराष्ट्र में यह परम्परा सुरक्षित है। वेदों की शाखा, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के रूप में संरक्षण के लिए गुरुकुलों की आवश्यकता है। उन्होंने आरण्यक की निवृत्ति मार्ग की शिक्षा पर प्रकाश डाला। उन्होंने वेदमन्त्रों को गौमाता के समान बताया और कहा कि आचरण को विचार से पहले रखा जाना चाहिए। उन्होंने यज्ञशालाओं के निर्माण और उनके महत्त्व पर चर्चा की। यज्ञों में उपयोग होने वाले अस्त्र-शस्त्रों और वेधशालाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि मन्त्र केवल चर्चा का विषय नहीं, अपितु अनुष्ठान का विषय है। उन्होंने भूमि सूक्त और मन्यु सूक्त की महत्ता पर प्रकाश डाला और कहा कि विहित कर्म के अनुसार ही अनुष्ठान किया जाए तो यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

पण्डित विनायक मोरेश्वर ने कहा कि हम *ऋग्वेद* की परम्परा को मानने वाले लोग हैं। हम इस परम्परा से हटने वाले नहीं हैं। लेकिन आज हमारी वेद की जो परम्पराएँ लुप्त हो गई हैं, वे समाप्त नहीं हुई हैं। महाराष्ट्र में *ऋग्वेद* दशग्रन्थ परम्परा है। इसे शाखा अध्ययन कहते हैं। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक इस परम्परा को हम शाखा अध्ययन बोलते हैं और इस शाखा का अध्ययन करना प्रत्येक ब्राह्मण का कर्तव्य है। क्योंकि बच्चे का जब उपनयन होता है, वहाँ जो आचार्य आते हैं वह संकल्प करते हैं और कहते हैं – "द्विजत्त्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकारसिद्ध्यर्थम्।" वहाँ अंग्रेज़ी सीखने का अधिकार नहीं हैं। संस्कृतभाषी झूठ कम बोलता है। जो जैसी भाषा के साथ संवाद करता है, वैसा ही व्यवहार करता है। जिसके पिता-जी वेद का अध्ययन करने वाले होते हैं, उसके पुत्र का भी उसी वेद का उपनयन संस्कार होना चाहिए। जैसे पिता यदि *ऋग्वेद* का अध्ययन करने वाला है तो पुत्र भी *ऋग्वेद* का ही अध्ययन करेगा। वेदाध्ययन में सामवेद का अध्ययन करना भी एक परम्परा है। महाराष्ट्र में *ऋग्वेद* दशग्रन्थ अध्ययन की परम्परा बची है। वेद का अध्ययन मन्त्रालय में नहीं हो सकता, वेदों का अध्ययन पाठशालाओं में ही सम्भव है । सभी पाठशालाओं में यह परम्परा नहीं है, केवल कुछ पाठशालाओं में ये परम्पराएँ बची हैं। शाखाओं के माध्यम से यह अध्ययन होना ही चाहिए। जिसका भी उपनयन हुआ है उसको इस शाखा का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। जब तक शाखा अध्ययन नहीं होता। तब तक सन्ध्या-उपासना में गोत्र का उच्चारण करने का अधिकार नहीं है। उपग्रन्थ में शिक्षा चतुष्टय आती हैं। *आश्वलायन गृह्यसूत्र*, *निरुक्त*, *शिक्षा*, *अष्टाध्यायी* आदि इन सभी को उपग्रन्थ बोलते हैं। इन सभी ग्रन्थों का अध्ययन अनध्याय के दिन करना होता है। स्वाध्याय के दिन इन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करना है। अनध्याय अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा एवं प्रतिपदा तिथि दिनों में उपग्रन्थ पढ़ने हैं।

शाखा अध्ययन का विषय बताने के बाद उन्होंने कहा कि एक वेद को पढ़ने के लिए बारह वर्ष आवश्यक हैं दो वेद को पढ़ने के लिए चौबीस साल और चार वेदों को पढ़ने के लिए अड़तालीस साल की शिक्षा आवश्यक है। आजकल हमने अपने

स्वार्थ के लिए इस परम्परा को आगे-पीछे कर दिया है। *शतपथ ब्राह्मण* की परम्परा लुप्त प्राय हो गई है ।

संहिता पाठ, पदपाठ, जटापाठ, घनपाठ यह क्रम छः वर्ष में पूरा होता है। लेकिन, आजकल हम इसे जल्दी ही पूरा कर लेते हैं । *ऐतरेय ब्राह्मण* और *आरण्यक* यह निवृत्ति धर्म है, यह प्रवृत्ति धर्म नहीं है। इसीलिए आरण्यक को उत्तरायण में पढ़ाया जाता है। वह घर में नहीं पढ़ना चाहिए। आरण्यक को महादेव के मन्दिर में जाकर प्रातःकाल में ही अध्ययन करना चाहिए, यह हमारी परम्परा है। यदि इसका पालन करेंगे तभी वेदमन्त्रों का फल प्राप्त होगा। वेद कोई सामान्य शक्ति नहीं हैं। वेदों का पूर्ण रूप से पालन करने पर ही उसका फल प्राप्त होता है। महर्षि वसिष्ठ मुनि के घर में गौ-माता थी। जो साक्षात् देवता थी। ब्राह्मणों को यजमानों के पास जाकर दक्षिणा माँगने की आवश्यकता नहीं है। वेदमन्त्र गौ-माता के जैसे हैं हमारे सम्पूर्ण संकल्पों को पूर्ण करने वाले हैं। हम वेदों के पास जो भी प्रार्थना करते हैं। हमारी वे सभी प्रार्थनाएं स्वीकार होंगी। इसके लिए सबसे पहले हमें वेदों को अपने जीवन में लाना होगा, अपने आचरण में लाना होगा, विचार बाद में आचरण पहले। हम कहते-बोलते बहुत अधिक हैं, लेकिन आचार में कुछ भी धारण नहीं करते। न त्रिकाल सन्ध्या करते हैं। न हम पञ्च-महायज्ञ करते हैं । सन्ध्या का संकल्प होता है – "ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा" अर्थात् मेरा दुरित क्षय होता तो भगवान् भी मेरे सामने झुकेंगे। मेरा दुरित क्षय हो तो भगवान् भी दर्शन देंगे। हमें पञ्च-महायज्ञ नित्य करने चाहिए। पञ्च-महायज्ञ हमारे महापुरुषों के लिए एवं हमारे पूर्वजों के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करने की एक विधि है। तर्पण विधि में कहा गया है – "देव-ऋषि-आचार्यपितृदेवताभ्यो नमः"। पहले भगवान् को, ऋषि को, आचार्य को और पितर को, जिन्होंने हमारे ऊपर बहुत उपकार किए हैं, उनके लिए नित्य ब्रह्मयज्ञ करना ही चाहिए। ब्राह्मण के लिए नियम है, जिस दिन वैश्वदेवयज्ञ न हो उस दिन भोजन ग्रहण न करे और जिस दिन ब्रह्मयज्ञ न हो, उस दिन पानी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यह हमारी परम्परा है।

यज्ञशाला के निर्माण पर बल देते हुए उन्होंने कहा विद्यापीठों में जो चलती है वह रासायनिक प्रयोगशाला है। यदि हमें वेदमन्त्रों का प्रभाव देखना है तो यज्ञशाला का निर्माण करना बहुत आवश्यक है। साथ ही यज्ञ करना बहुत आवश्यक है, वह भी विशेष रूप से श्रौतयाग करना बहुत आवश्यक है। *आश्वलायन गृह्यसूत्र* के अन्तिम अध्याय में वर्णन मिलता है, जब युद्ध शुरू होता है तो राजा से पहले यज्ञवेदी पर राजा के आचार्य बैठते हैं, फिर राजा बैठता है और फिर आचार्य अभिमन्त्रित करके तीरों को राजा को समर्पित करते हैं। उनका उपयोग राजा करता है और राजा की विजय होती है। मैं एक बात यहाँ पर कहना चाहता हूँ कि विद्यापीठ का अध्ययन और पाठशालाओं का अध्ययन आप एक साथ मत जोड़िए। जर्मनी में बैठकर गाय का मांस खाने वाला कोई व्यक्ति यदि वेदमन्त्रों पर कार्य करेगा तो उसको कभी भी उसका परिणाम प्राप्त नहीं होगा । वेदमन्त्र पठन-पाठन के लिए ब्राह्मण होना और भारत-भूमि ही योग्य (श्रेष्ठ) है। लेकिन प्रयोग करने वाले जूते पहनकर यज्ञ के सामने बैठेंगे और बोलेंगे की चलो बारिश आने दो, तो इस प्रकार कोई परिणाम नहीं प्राप्त होगा। राजा को यज्ञशाला में बैठकर ऋत्विज जो कर रहे हैं वह शान्ति से देखना चाहिए, तब बारिश आएगी । वेदमन्त्र चर्चा का विषय नहीं है, वेदमन्त्र अनुष्ठान का विषय है, अनुभूति का विषय है। हमने बहुत प्रयोग किए हैं जीवन में, इसीलिये मैंने अनुभव से यह बात कही है ।

उन्होंने पुणे में अपनी पाठशाला का इतिहास स्मरण करते हुए एक घटना का वर्णन किया। उनकी पाठशाला 2 एकड़ भूमि में है। 1984 में उन्हें भूमि के लिए सरकार की किसी अनुमति की आवश्यकता थी। वे उस अनुमति को नहीं प्राप्त कर पाए, क्योंकि तत्कालीन सरकार ने लिखकर उन्हें अनुमति देने से मना कर दिया था। उन्होंने बताया *ऋग्वेद* में जो भूमि सूक्त है। मैंने वहाँ पर भूमि सूक्त का डेढ़ साल तक विधान किया और साथ ही मन्यु सूक्त का भी अनुष्ठान किया। डेढ़ साल तक प्रातर्युजा सूक्त का पाठ किया। जिस तत्कालीन सी॰एम॰ ने भूमि देने के लिए मना किया था। उसने डेढ़ साल के बाद स्वयं ही वह भूमि देने की अनुमति प्रदान की। यह अनुष्ठान का फल है। यह कोई चर्चा का विषय नहीं है। उन्होंने कहा यह मेरा अहंकार नहीं है, अनुभव है।

एक अन्य घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कश्मीर जो कि कश्यप ऋषि की भूमि है। वहाँ पर चार साल तक जाकर इन्होंने यज्ञ किया। श्रीनगर के लाल चौक में जाकर वेदमन्त्रों का पाठ किया। पुलवामा की घटना होने के बाद पाकिस्तान का नाश हो ऐसा संकल्प करके दस दिन का अनुष्ठान श्रीनगर कश्मीर में किया। उन्होंने कहा हमारे स्वामी-जी ने कहा था जब तक श्रीनगर में वेदमन्त्रों की ध्वनि की गर्जना नही निकलेगी तब तक श्रीनगर में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला। उनकी आज्ञा से चार साल तक सम्पुटित मन्यु सूक्त के चौदह मन्त्रों का वहाँ पाठ किया गया। मराठी में एक पदार्थ है जिसको बिब्बा (भिलावाँ) बोलते हैं। उसमें से तेल निकलता है। बिब्बा के पन्द्रह समित् का हमने हवन किया और धारा 370 हट गया। यह मन्त्रों का ही फल है। लेकिन सब कहते हैं – मन्त्रों का क्या है? मन्त्रों में क्या प्रभाव है? यह सब मन्त्रों का ही फल है।

सन्ध्या अर्थात् ब्रह्मयज्ञ करने का क्या प्रभाव होता है इस विषय को बताते हुए उन्होंने कहा कि सन्ध्या में बहुत शक्ति है। हमें सन्ध्या करते समय प्राणायाम करना चाहिए । प्राणायाम में बहुत शक्ति है। सन्ध्या में अघमर्षण मन्त्र हैं। उनमें बहुत शक्ति है – "सूर्य चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।" वेदों की जानकारी यदि हमें लेनी है, वेदों का अनुष्ठान यदि हमें करना है, वेद के ऊपर यदि हमें संशोधन करना है, तो वेद के नियम से ही संशोधन करना होगा। अंग्रेज़ लोगों के नियम से संशोधन नहीं होगा अर्थात् उसका परिणाम प्राप्त नहीं होगा। यदि वेदों का फल चाहिए तो वेद-विधि अनुसार अनुष्ठान होना चाहिए। महाराष्ट्र में एक सन्त हुए हैं ज्ञानेश्वर, उन्होंने लिखा है कि जिस प्राणी को जो कर्म करने को कहा गया है, वह अपने कर्म को पूर्ण निष्ठा से करे तो उसको उसका परिणाम अवश्य ही प्राप्त होगा।

उन्होंने हमें बताया यदि वेद के परिणाम को प्राप्त करना चाहते हैं तो विश्वविद्यालय में बैठकर या रसायनशाला में बैठकर या विद्यापीठ में बैठकर प्राप्त नहीं होगा। आप पाठशाला में गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करके ही उसका फल प्राप्त कर सकते हैं। भागवत में कर्दम ऋषि मनु के जमाई की कथा आती है । उन्होंने 1,000 साल तक तपस्या की। तब मनु ने उन्हें विमान में बैठाकर घुमाया। यह तपस्या का फल है। वह विमान हमें कहाँ से प्राप्त हुआ यह सब वर्णन हमारे शास्त्रों में वर्णित है।

उन्होंने लगभग बीस साल पहले अखबार की घटना का भी वर्णन किया और बताया कि नासा ने एक विमान का निर्माण किया है जो पृथ्वी से उड़ने के बाद 10,000 फीट के ऊपर जाने के बाद ऑक्सीजन का एक ईंधन बनाता है। बिना वैमानिक वह विमान चलता है। नासा बोलता है तो बात सत्य है? लेकिन हमारे ऋषि बोलते हैं तो बात असत्य है? उसका कोई आधार नहीं है? देखिए यह बात सत्य नहीं है। जब हमारे पास वेदमन्त्रों का इतना बड़ा अनुष्ठान है तो हमें चाहिए कि हम संशोधन करें और वेद के अनुसार (नियम) अनुष्ठान करें। यदि हम अनुष्ठान करेंगे तो उसका फल अवश्य मिलेगा, अन्यथा नहीं मिलेगा। इतना ही मेरा आपसे निवेदन है।

इस प्रकार प्रथम दिवस का द्वितीय सत्र निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न हुआ।

धन्यवाद!

ऋतिका

तृतीय सत्र

***विषय* – वर्तमान सन्दर्भ में यजुर्वेद का परिचय**

***अध्यक्ष* –** प्रो॰ अमोद वर्धन कौण्डिन्यायन (अध्यक्ष, वेद विभाग, नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय)

***प्रवचनकर्ता* –** प्रो॰ सुन्दर नारायण झा (शुक्ल यजुर्वेद) (लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

***सान्निध्य* –** डॉ॰ सुधीर लाल वैविक हेरिटेज पोर्टल (इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली)

***सत्र संचालन* –** डॉ॰ उदयभान सिंह

तृतीय सत्र का शुभारम्भ दोपहर 2:30 बजे हुआ। इस सत्र का विषय "वर्तमान सन्दर्भ में यजुर्वेद का परिचय" था। सत्र का प्रारम्भ वेद और यज्ञ की परम्पराओं से जुड़े वैदिक ज्ञान के महत्त्व पर चर्चा से हुआ। मुख्य वक्ता के रूप में आचार्य प्रो॰ सुन्दर नारायण झा ने काल के बारे में बताया। सर्वप्रथम वर्तमान काल के बारे में कहते हैं कि *अथर्ववेद* शौनक शाखा में दो काल सूक्त प्राप्त होते हैं। *अथर्ववेद* के उन्नीसवें काण्ड के 53 व 54वें सूक्त काल सूक्त के नाम से जाने जाते हैं –

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत्प्रजापतेः ।। ८।।

तात्पर्य है कि इस काल के अधीन ही यह सम्पूर्ण सृष्टि है। परब्रह्म (प्रजापति) भी इसी काल के अधीन है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह त्रिगुणात्मक तत्त्व काल के अधीन है, और जो इनका तात्त्विक स्वरूप है, इसको ही हम परब्रह्म के रूप में जानते हैं। ब्रह्म काल में बद्ध नहीं होता अर्थात् काल निबद्ध है।

उस ब्रह्म के दो स्वरूप *मैत्रायणी उपनिषद्* में बताए गए हैं –

द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।

अर्थात् शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म, परब्रह्म के लिए वेदों में अनेक प्रकार की स्तुति की गई है जैसे –

तद् एवाग्निस् तद् आदित्यस् तद् वायुस् तद् उ चन्द्रमाः।
तद् एव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः।।
– *शुक्ल यजुर्वेद* 32.1

इत्यादि मन्त्रों द्वारा परब्रह्म के बारे में बताया गया है। इस प्रकार की स्तुति तुलसीदास *रामचरितमानस* में बताते हैं कि "बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना।" इत्यादि पदों के द्वारा उस परब्रह्म के विषय में बताया गया है, वह इन्द्रियों के बिना ही कार्य करता है, इस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा के विषय में बताया है। दूसरा जो शब्दब्रह्म का स्वरूप है वह शब्द राशि के रूप में वेद (ज्ञान) में अवस्थित है। उसको वेद कहते हैं और वह चार भागों में विभाजित है, जो *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद*, *सामवेद* एवं *अथर्ववेद* के रूप में हमें प्राप्त होते हैं। मूलतः वेद तीन ही हैं, क्योंकि यह तीन प्रकार की रचना है। इसलिए तीन प्रकार का वेद माना जाता है जैमिनी ने *मीमांसासूत्र* 2.1.35 में बताया है कि "तेषां ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था॥" जहाँ अर्थ की दृष्टि से पादों की व्यवस्था की गई हो, उन ऋचाओं को ऋक् कहते हैं। जिसमें इनका समूह

हो उसको *ऋग्वेद* कहते हैं। "गीतिषु समाख्या" (*मीमांसासूत्र* 2.1.36) अर्थात् जिन ऋचाओं का गान किया जाता है, उन्हें साम कहते हैं। "शेषे यजुः शब्दः" (*मीमांसासूत्र* 2.1.37) अर्थात् जो ऋक् और साम से अवशिष्ट मन्त्र हैं उन्हें यजुष् कहते हैं॥ अथवा "अनियताक्षरपदावसानेषु यजुः" जिसमें अक्षर पाद और अवसान नियत न हो अर्थात् पाद इत्यादियों की सीमा निर्धारित न हो, उन्हें यजुष् कहते हैं।

इन तीनों वेदों के स्वरूप एवं लक्षण को बताते हुए उन्होंने कहा कि वह जो सूर्य भगवान् प्रातःकाल में पूर्व से उदित होकर मध्याह्न में मध्य में आकर एवं सायंकाल में अस्त होते हैं, वह तीनों वेदों के साथ चलते हैं, *तैत्तिरीय ब्राह्मण* 3.12.9.1 में बताया है –

> ऋग्भिः पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः। सामवेदेनाऽस्तमये महीयते। वेदैरशून्यस्त्रिभिरिति सूर्यः।

वेदों के माध्यम से ही सूर्यदेव अपनी गति करते हैं।

ऋग्वेद में सूर्य के रथ का वर्णन प्राप्त होता है, *भोजप्रबन्ध* में भी सूर्य के रथ का वर्णन मिलता है –

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।

रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।।[2]

अर्थात् सर्प की रस्सी उसमें व्याप्त है एक ही पैर का सारथी है, वह निरालम्ब मार्ग पर गमन करता है। सूर्य की गति का वर्णन हमारे शास्त्रों में अनेकत्र प्राप्त होता है कि उसकी दूरी एवं परिमित मार्ग कितना है। जब सूर्य प्रातःकाल में उदित होते हैं, तब *ऋग्वेद* के साथ आते हैं एवं मध्याह्न काल में *यजुर्वेद* के स्वरूप में विराजमान होते हैं और सायंकाल में *साम* के रूप में अस्त होते हैं, अर्थात् बिना वेद के सूर्य कभी रहते ही नहीं हैं। वेदैरशून्यस्त्रिभिरिति सूर्यः।

इसका अर्थ यह है कि तीनों वेद सूर्य के तीन अलग-अलग चरणों के साथ जुड़े हुए हैं और इस प्रकार जीवन के सभी कालों में वेदों की प्रासंगिकता बनी रहती है। वेदों द्वारा ही दिशाओं का निर्धारण होता है। उन्होंने बताया कि *यजुर्वेद* "यजु" और "वेद" शब्दों से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "यज्ञ करने का ज्ञान"। *यजुर्वेद* में न केवल यज्ञों के अनुष्ठान की विधियाँ दी गई हैं, बल्कि यह ब्रह्माण्ड, जीवन, और धर्म के गूढ़ रहस्यों को भी उद्घाटित करता है। *यजुर्वेद* को उन्होंने "यजन कार्य के आधार" के रूप में परिभाषित किया – "इषे त्वा छिनद्मि। उर्जे त्वा सन्नमयामि।" यह प्रक्रिया दर्शेष्टियाग के प्रयोग में निहित है। जिसमें गाय के दूध को निकालने की प्रक्रिया है। जिसमें बछड़े को अलग किया जाता है, इस प्रकिया के विषय में उन्होंने बताया।

उन्होंने कहा कि *यजुर्वेद* के माध्यम से यज्ञ की प्रक्रिया को समझा और व्यवस्थित किया जाता है। *यजुर्वेद* के दार्शनिक पक्ष पर चर्चा करते हुए उन्होंने पुरुष सूक्त का उल्लेख किया।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्य् अतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।।
– *यजुर्वेद*, माध्यन्दिन शाखा 31.1

---

[2] भोजप्रबन्ध 166

उन्होंने कहा कि यह सूक्त ब्रह्म और जीवन की सृष्टि के सम्बन्ध में गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। ब्रह्म नाभि से हृदय तक के क्षेत्र में दस अंगुल के प्रमाण पर रहता है। इसके बाद *ऐतरेयोपनिषद्* में किस प्रकार शरीर की रचना होती है इस विषय को समझाया। उन्होंने शरीर के दस द्वारों के बारे में बताया एवं दसवां द्वार मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म की मुक्ति के लिए कपाल-छेदन प्रक्रिया के रूप में प्राण को बाहर निकाला जाता है। जो *यजुर्वेद* के अनुष्ठानों का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। इसके अतिरिक्त, *सामवेद* के ऋषि जैमिनी द्वारा कृत शाखा का उदाहरण देते हुए उन्होंने वैदिक ज्ञान की व्यापकता और इसकी व्यावहारिक उपयोगिता को प्रदर्शित किया।

इस सत्र में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली के डॉ॰ सुधीर लाल ने अपने वक्तव्य में केन्द्र द्वारा वैदिक क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों का विस्तार से वर्णन किया। डॉ॰ सुधीर लाल ने बोधित किया कि केन्द्र ने वैदिक पाण्डुलिपियों के संरक्षण और प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने बताया कि केन्द्र ने *ऋग्वेद संहिता*, *शतपथ ब्राह्मण*, *पुष्पतन्त्र*, *लाट्यायन गृह्यसूत्र*, *बौधायन श्रौतसूत्र* और *वैदिक मैप ऑफ इण्डिया* जैसे ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। इसके साथ ही, केन्द्र ने भारतीय सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित करने के लिए कई सेमिनार, सम्मेलन, और कार्यशालाओं का आयोजन किया है। डॉ॰ सुधीर लाल ने वैदिक हैरिटेज पोर्टल का उल्लेख किया, जो वैदिक ज्ञान को डिजिटल रूप में संरक्षित करने और विश्व भर में उपलब्ध कराने का एक प्रयास है। इसमें चारों वेदों की वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध है। जिसको हमने भारत के प्रतिष्ठित विद्वानों को बुलाकर रिकॉर्ड किया है, एवं सभी के लिए यह उपलब्ध है।

उन्होंने बताया कि तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों में यज्ञ में उपयोग किए जाने वाले 250 यज्ञ पात्रों का निर्माण केन्द्र द्वारा कराया गया है। यह कार्य यज्ञ परम्पराओं और उनसे जुड़े अनुष्ठानों को संरक्षित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

इस सत्र की अध्यक्षता नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डू के वेद विभाग के आचार्य प्रोफेसर अमोद वर्धन कौण्डिन्न्यायन ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में भारत और नेपाल के बीच वैदिक ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से प्रगाढ़ हुए सम्बन्धों का उल्लेख किया। उन्होंने अपने पिता शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन द्वारा लिखित *वेदाङ्ग ज्योतिष* इत्यादि बहुत से ग्रन्थों का जिक्र करते हुए बताया कि उनका पूरा परिवार संस्कृत और वैदिक अध्ययन एवं अध्यापन से जुड़ा हुआ है। उन्होंने मुख्य वक्ता प्रोफेसर सुन्दर नारायण झा और सत्र में सान्निध्य प्रदान करने वाले डॉ॰ सुधीर लाल के विचारों की सराहना की। प्रोफेसर अमोद वर्धन कौण्डिन्न्यायन ने कहा कि वेदों और वेदांगों का ज्ञान भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करता है। उन्होंने इस चर्चा पर बल दिया कि वेद केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं हैं, अपितु जीवन के प्रत्येक पहलू के लिए मार्गदर्शक हैं। उन्होंने *यजुर्वेद* को जीवन और ब्रह्माण्ड के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने वाला शास्त्र बताया। सत्र में वक्ताओं ने *यजुर्वेद* की व्यावहारिकता, दार्शनिक गहराई, और इसकी उपयोगिता पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने बताया कि *यजुर्वेद* के माध्यम से न केवल यज्ञ की प्रक्रिया को समझा जा सकता है, बल्कि इसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में लागू भी किया जा सकता है। *यजुर्वेद* में निहित मन्त्र और अनुष्ठान समाज के कल्याण और व्यक्ति के आत्मोन्नयन के लिए मार्गदर्शक हैं। यह सत्र *यजुर्वेद* के आधुनिक सन्दर्भ में महत्त्व और इसकी अद्वितीयता को समझने का एक सार्थक प्रयास था। वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने और इसे समकालीन युग में प्रासंगिक बनाने के लिए ऐसे सम्वाद और विमर्श अत्यन्त आवश्यक हैं। इस प्रकार ज्ञान की चर्चा के साथ तृतीय सत्र पूर्ण हुआ।

शिवम शर्मा

चतुर्थ सत्र

विषय – वर्तमान सन्दर्भ में सामवेद का परिचय

अध्यक्ष – प्रो॰ प्रफुल्ल कुमार मिश्र (पूर्व उपाध्यक्ष, महर्षि सान्दिपनी वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन)

प्रवचनकर्ता – डॉ॰ विजय कुमार शर्मा (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

सारस्वत अतिथि – डॉ॰ ऋषिराज पाठक (संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

सान्निध्य – प्रो॰ देवी प्रसाद त्रिपाठी (पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड)

सत्र संचालन – डॉ॰ संजीव

वेद ही धर्म की आधारशिला है – "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"[3]। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के अध्ययन में वेदों का स्थान सर्वोत्तम है। भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता का भव्य प्रसाद वेदरूपी सुदृढ़ आधारशिला पर अधिष्ठित है। कहा भी गया है –

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।
– *मनुस्मृति* 12.102

इस सत्र के प्रवचनकर्ता डॉ॰ विजय कुमार शर्मा ने वक्तव्य प्रारम्भ करते हुए बताया *सामवेद* वर्तमान सन्दर्भ में कैसे प्रासङ्गिक है? वेदों के तीन विभाग – 1. ज्ञानकाण्ड, 2. कर्मकाण्ड, और 3. उपासना काण्ड। इसमें से उपासना काण्ड सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने *गीता* 10.22 में कहा है – "वेदानां सामवेदोऽस्मि"। साम का अर्थ है –

गीतिषु सामाख्या । – *पूर्व-मीमांसासूत्र* 2.1.36
आङ्गूष्यं साम। – *ऋग्वेद* 1.62.2
या ऋक् तत् साम। – *छान्दोग्योपनिषद्* 1.3.4

जिन मन्त्रों को स्वरों के साथ गाया जाता है – वह साम है । *सामवेद* के दो विभाग हैं । आर्चिक भाग और गान भाग, आर्चिक भाग में दो भाग हैं – 1. पूर्वार्चिक, 2. उत्तरार्चिक, जिसमें पूर्वार्चिक में छह अध्याय और 650 मन्त्र हैं।

गान भाग के चार विभाग होते हैं – 1. प्रकृति गान, 2. आरण्यक गान, 3. ऊहगान, और 4. ऊह्यगान। जो प्रकृति गान है, उसको पूर्वार्चिक की ऋचाओं पर गाया गया है । *सामवेद* की एक विशेषता है कि इसकी ऋचाओं को स्वरों के द्वारा गाया गया है। इसलिए *छान्दोग्योपनिषद्* 1.6.1 में कहा गया है कि "ऋच्यध्युढं साम गीयते", प्रकृति गान में पाँच अध्याय हैं। पूर्वार्चिक का जो छठा भाग है उसमें आरण्यक गेय गान, उत्तरार्चिक की 908 ऋचाएं हैं। उसके ऊपर 1,275 सामगान गाए गए हैं । अब यह प्रश्न है कि 650 ऋचाओं के ऊपर 1,198 मन्त्रों को कैसे गाया गया है? एक-एक ऋचाओं पर अलग-अलग ऋषियों द्वारा 16-16 मन्त्रों को गाया गया है। उन्होंने *सामवेद* का परिचय विस्तार रूप से दिया। *सामवेद* के

[3] *मनुस्मृति* – 2.6

आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, उसके तीन शिक्षा ग्रन्थ, चार प्रातिशाख्य ग्रन्थ, और तीन श्रौतसूत्र ग्रन्थ हैं। उसके अलावा भी बहुत से उपग्रन्थ उपलब्ध हैं । *सामवेद* की 1,000 शाखाएँ प्राप्त होती थीं। परन्तु अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से वर्तमान समय में केवल तीन शाखाएँ मिलती हैं – 1. कौथुम शाखा, 2. राणायनी शाखा, और 3. जैमिनीय शाखा ।

इन शाखाओं के कुछ भेद प्राप्त होते हैं । कौथुम शाखा की मद्र पाठ-पद्धति दक्षिण भारत में मिलती है। इसका दूसरा गुर्जर-पद्धति-पाठ विशेष रूप से उत्तर भारत के गुर्जर प्रान्त में मिलता है । इस तरह अब पूरे भारतवर्ष में इसका प्रचार-प्रसार हो रहा है । *सामवेद* की राणायनी शाखा के दो पाठभेद मिलते हैं । एक *सामवेद* की गोवर्धनी शैली है जो काशी में है और अन्यत्र भी प्रचार-प्रसार हो रहा है । दूसरी कर्णाटक पद्धति है, जो पहले कर्णाटक के गोकर्ण और हन्नावर के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थी, परन्तु महर्षि सान्दिपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान एवं अन्य संस्थानों के माध्यम से अब पूरे भारत में इसका प्रचार-प्रसार और अध्ययन-अध्यापन चल रहा है एवं इस शाखा का विद्वानों को पूर्ण अध्ययन प्राप्त होता रहा है। *सामवेद* की राणायनी शाखा का हस्तलिखित ताड़पत्र उपलब्ध था। विद्वानों की सहायता से वह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है, और उस ग्रन्थ के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन चल रहा है । कैसे ऋचाओं से सामगान पाठ किया जाता है इसकी चर्चा भी की गई है, जैसे एक ऋचा का मन्त्र है –

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।
– *सामवेद* 1.1.1

ऋचा के मन्त्र को गान में परिवर्तन करके इस प्रकार का मन्त्र हो जाता है।

ओग्नाइ ॥ आयाहिऽ३वोइतोयाऽ२इ ॥ तोयाऽ२ई ॥ गृणानोह ॥ व्यदातोयाऽ२इ ॥ तोयाऽ२इ नाइहोतासाऽ२३ ॥ त्सा२इबाऽ २३४ औहोवा ॥ हीऽ२३षी ॥
– *ग्रामगेयगान* 01.01

यह मूल ऋचा है, यहाँ पर 'अग्न' पद के स्थान में ओग्नाइः हुआ है इसका वर्णन प्रातिशाख्य ग्रन्थ में आता है। प्रातिशाख्य में जिस प्रकार उल्लेख है, ऋचा को उसी प्रकार गाया जाता है । सामगान सात स्वरों से किया जाता है। इन स्वरों को जिस प्रकार से शास्त्रों और शिक्षा ग्रन्थों में बताया गया है उसी प्रकार यदि गान किया जाता है, तभी मन्त्र फलीभूत होते हैं । इस प्रकार साम, ऋचा से गान में परिवर्तित हो जाता है । विशेष रूप से साम ऋचा के तीन स्वर हैं, और तीन स्वरों से परिवर्तित करके सामगान सात स्वरों में किया जाता है । इन स्वरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । स्वरों की व्यवस्था एवं तज्जनित उच्चारण विशेषताओं को अक्षुण्ण रखने के लिए शास्त्रकारों ने वेदाध्ययन को गुरुमुख उच्चारण सापेक्ष बताया है । समुचित प्रकार से किए गए सस्वर वेद-पाठ का महत्त्व बतलाते हुए *याज्ञवल्क्य शिक्षा* 43 में कहा गया है –

स्वरवर्णान् प्रयुञ्जानो हस्तेनाधीतमाचरन् ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोकम् अवाप्नुयात् ।।

अर्थात् जो उदात्तादिस्वर हैं। उन्हें शास्त्र में बताए गए नियमों के अनुसार निवेश करते हैं तो ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

यदि इन स्वरों को बिना नियम के उच्चारण करते हैं तो मन्त्र फलीभूत नहीं होते है। इसलिए स्वरों का निवेश आवश्यक है, और स्वरों के उच्चारण कैसे होते हैं यह भी शिक्षा ग्रन्थ में बताया गया है। जिस प्रकार जल में मछली मध्य गति से तैरती हुई विचरण करती है तथा जिस गति से आकाश में पक्षी उड़ते हुए विचरण करते हैं। उसी प्रकार वेद स्वाध्याय का विधान

आचार्यों ने शिक्षा ग्रन्थों में निरूपित किया है । इसलिए स्वरों के साथ वेद-पाठ की यह हमारी परम्परा महत्त्वपूर्ण है, और उसके अनुसार ही वेद-पाठ होना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त जो सात स्वर हैं। *सामवेद* में इनका समाज में क्या स्थान है? इनका उच्चारण करने का क्या फल है? इन स्वरों को सम्यक् प्रकार से शास्त्रों के नियमानुसार वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हैं । उनसे देवता एवं पितृगण प्रसन्न होते हैं, वह सब शिक्षा ग्रन्थों में प्राप्त होता है –

क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमे न तु मानुषाः ।
पशवस्तु द्वितीयेन गन्धर्वाप्सरसस्तनु ।।[4]

आण्डजाः पितरश्चैव चतुर्थः स्वरजीविनः ।
मन्द्रं चैवोपजीवन्ति पिशाचासुरराक्षसाः ।।[5]

सामविधानब्राह्मण तथा *बृहद्देवता* में भी इस कथन का स्पष्टीकरण किया गया है। इनका अतिरिक्त कथन समुचित प्रतीत होता है अर्थात् इन स्वरों की सामर्थ्य-शक्ति से ही पशु-पक्षी आदि जीव, वन में परस्पर मैत्रीभाव से विचरण करते रहते हैं। क्योंकि इन सभी पशु-पक्षियों के कण्ठ में सामस्वर विराजमान है । उनकी मधुर वाणी से यह शक्ति प्राप्त होती है। उस शक्ति से उनका भय समाप्त हो जाता है। जिसके कारण सम्पूर्ण वन में निर्भीकता से भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार यह सप्तस्वर मण्डल सामान्य नहीं है, सम्पूर्ण सृष्टि को जीवन प्रदान करने वाला है । *सामवेद* मूल रूप से सङ्गीत है। हमारे समाज में जो सङ्गीत परम्परा चली आ रही है उसका उद्भव *सामवेद* से ही हुआ है ।

कुछ मन्त्र ऐसे हैं जो सीधे *सामवेद* में घटित होते हैं और कुछ स्वर एवं सङ्गीत ऐसे हैं जो दूसरे माध्यम से आते हैं। जैसे स्वर्णाभूषण बनाते हैं, तो सर्वप्रथम एक सोने की खान से शिला निकालते हैं, उसके बाद स्वर्णकार अपने विवेक द्वारा आभूषण का रूप देता है । उसी प्रकार सङ्गीत का मूल *सामवेद* ही है। पुनः उसका सात स्वरों में जब अभ्यास करते हैं तब सङ्गीतज्ञ अपने-अपने ज्ञान के अनुसार अनेक प्रकार से उसको स्वरूप देते हैं । जैसे एक प्रसिद्ध भजन गाया गया है लता जी के द्वारा – पायो जी मैंने राम रतन धन पायो – ऐसे भजनों में जब सङ्गीतकार शब्द लेते हैं तब शब्द के अतिरिक्त ऐसे आलाप आते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं होता वे कहाँ से आए हैं उनकी परम्परा कहाँ से आई है? *सामवेद* में ऐसे शब्दों को स्तोभ कहते हैं – ऋग्व्यतिरिक्तवर्णाः स्तोभाः ।

अर्थात् जो शब्द मूल ऋचा में नहीं हैं परन्तु गान में आते हैं । ऐसे जो शब्द हैं उसको बहुस्तोभ कहा जाता है और वही स्तोभ जब लौकिक सङ्गीत में आ जाता है तब उसको आलाप कहा जाता है । आलाप अनेक प्रकार के होते हैं। सङ्गीतकार अपनी सुविधा के अनुसार आलाप का निर्माण करते हैं, और उसका प्रयोग करते हैं। सामगान में अनेक प्रकार के स्तोभ हैं जो मूल ऋचा में नहीं आते परन्तु गान के समय में आते हैं । इनको सामान्य लोकसङ्गीत में निरर्थक कहा जाता है । उन्होंने कहा कि सामान्य सङ्गीत में जो आलाप लेते हैं वे उस सङ्गीत की मधुरता के लिए उन आलापों का प्रयोग करते हैं । यदि उन आलापों को लेने से सङ्गीत की मधुरता बढ़ जाती है, तब उन आलापों को कैसे निरर्थक कहा जाता है । इस तरह *सामवेद* के जो स्तोभ हैं उनको निरर्थक नहीं कहा जा सकता । *सामवेद* में तीन प्रकार के स्तोभ होते हैं । इन तीन प्रकार के स्तोभों का अलग-अलग फल बताया गया है । ऐसे कुछ स्तोभ होते हैं जिसको देवतावाचक कहा जाता है । देवताओं की प्रशंसा

---

[4] नारदीय शिक्षा प्रथम प्रपाठक, 7 कण्डिका 6

[5] वही, 7

करने के लिए गाया जाता है, और उसमें भी शब्द आते हैं । इस प्रकार उन्होंने अपने वक्तव्य द्वारा बताया है कि वेदमन्त्रों में अनेक शक्तियाँ होती हैं ।

मुख्य वक्ता के वक्तव्य के बाद इस सत्र के सारस्वत अतिथि डॉ॰ ऋषिराज पाठक को अपना वक्तव्य देने के लिए आहूत किया गया। उन्होंने कहा कि देवकाण्ड की दृष्टि से और विशाल वाङ्मय की दृष्टि से *सामवेद* का बहुत महत्त्व है। भरतमुनि ने नाट्यवेद की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में *नाट्यशास्त्र* 1.17 में कहा है – "सामभ्यो गीतमेव च"। ऐसा ही *सङ्गीतरत्नाकर* में भी यह वचन है – "सामवेदादिदं गीतं संयोज्यग्राहः पितामहः"।[6]

सामवेद को वर्तमान सङ्गीत में मूल स्रोत माना जाता है । क्योंकि *सामवेद* का स्वरूप स्वरमय है । *बृहदारण्यकोपनिषद्* में इसका स्वरूप बताया गया है – "साम्नः स्वर एव स्वम्"।[7]

सामवेद का जो स्वर तत्त्व है उसका जो आत्मतत्त्व है वह स्वर है । वस्तुतः स्वर वाणी का विषय है, और *शुक्ल यजुर्वेद* में ऋचा को वाणी का प्रतीक माना जाता है, यजु को मन का प्रतीक मानते हैं, साम को प्राण का प्रतीक मानते हैं । इसके बारे में भी कहा गया है –

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः साम प्राणं प्रपद्ये चक्षु श्रोत्रं प्रपद्ये।
– *शुक्ल यजुर्वेद* 36.1

यहाँ विचारणीय विषय यह है कि साम प्राण क्यों है । योगशास्त्र में एक सिद्धान्त है –

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।
– *श्रीमद्भगवद्गीता* 6.16

अर्थात् जहाँ मन लीन होगा वहाँ प्राण भी लीन हो जाएगा । प्राणायाम से मन को एकत्रित किया जा सकता है । मन की एकाग्रता से प्राण को एकाग्र किया जा सकता है । क्योंकि "सूर्यात् सामवेदः"[8] ऐसा *शतपथ ब्राह्मण* के वचन से सिद्ध होता है कि *सामवेद* का सम्बन्ध सूर्य देवता से है । *अथर्ववेद* में प्राण के पञ्च प्राणों के विषय में चर्चा है –

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः।।[9]

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "वेदानां सामवेदोऽस्मि"[10] अर्थात् सामवेद प्राण है, हमारे हृदय में परमात्मा का वास है, ठीक उसी प्रकार परमात्मारूप श्रीकृष्ण हैं, वे प्राण तत्त्व के रूप में प्रतिपादित करते हैं । इससे *सामवेद* का महत्त्व व्यक्त होता है । *सामवेद* का अन्य पक्ष है, *सामवेद* को सोमयाग में गाया जाता है। जब से बौद्ध धर्म का और जैन धर्म का आविर्भाव हुआ

---

[6] *सङ्गीतरत्नाकर* – 1.25

[7] *बृहदारण्यकोपनिषद्* – 1.3.25 (*शाकंरभाष्यम्*)

[8] *शतपथब्राह्मण* – 11.4.1.3

[9] *अमरकोश* – 1.1.63.3.1

[10] *श्रीमद्भगवद्गीता* – 10.22

तब से *सामवेद* की शाखाएं निरन्तर घटती गई। "सहस्रवर्त्मा सामवेदः",[11] और इन प्रमाणों से भी सूचित होता है की *सामवेद* की एक हज़ार शाखाएं थीं। वर्तमान में केवल तीन ही शाखाएं प्राप्त होती हैं । *सामवेद* दोनों ही दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है – आध्यात्मिक दृष्टि से भी और कर्मकाण्ड की दृष्टि से भी ।

सामवेद के विषय में उपनिषद् का कथन है –

सर्वेषां वाक्येषु वेदानां रसः यत् तत् सामः ।[12]

अर्थात् हमारी वाणी का जो रस है वह साम है । साम का रस उद्गीथ है, उद्गीथ अर्थात् ओंकारतत्त्व/प्राणतत्त्व। इस प्रकार *सामवेद* उपासना का सबसे सुन्दर माध्यम है। जैसे एक वाक्य है – "योनिमृतस्य तिथि गतौ" अर्थात् सत्य की योनि में बैठो। इस प्रकार *सामवेद* का जो साहित्य है उसमें मन्त्रों का जो विनियोग है, उससे काम, क्रोध, लोभ, मान, माया एवं मोह ये षड् शत्रु *सामवेद* के मन्त्रों का उच्चारण करते ही नष्ट हो जाते हैं । उनके अनुसार *सामवेद* केवल आध्यात्मिक निर्देश ही नहीं देता, बल्कि जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है । डॉ॰ पाठक ने *सामवेद* की ऋचाओं का सस्वर पाठ करके उपस्थित सभी जनों को मन्त्रमुग्ध किया। उनके इस गायन ने श्रोताओं को *सामवेद* की संगीतात्मक शक्ति और इसके भीतर छिपी हुई ऊर्जा की अनुभूति करने का अवसर प्रदान किया। उसके बाद उन्होंने कौथुम शाखा का गुर्जर शैली में रुद्र देवता के लिए मन्त्र प्रस्तुत किया "नमस्तौ होग्राइ" (*ग्राम*॰ 1.2.11.1)। इस प्रकार बोलकर उन्होंने अपनी वाणी को विराम दिया ।

इसके पश्चात् इस सत्र में सान्निध्य प्रदानकर्ता प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी ने मङ्गलाचरण के बाद अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कृत्रिम मेधा के बारे में सम्यक् वर्णन किया तथा वेदों को अलौकिक ज्ञान का भण्डार बताया। उन्होंने कहा कि आज के युग में कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में वेदों की शिक्षाओं को सम्मिलित करना मानव सभ्यता के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकता है । उन्होंने यह प्रश्न सबके समक्ष रखा कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों की ध्यान अवस्था में जब कोई उनसे प्रश्न पूछता था तब वे अति सरल प्रक्रिया से उत्तर देते थे। क्या उस समय उनके पास प्राकृतिक मेधा, कृत्रिम मेधा, अथवा वास्तविक मेधा थी। "धियो यो नः प्रचोदयात्"[13] के माध्यम से उनकी मेधा बहुत ही प्रखर थी । उन्होंने अपने विमर्श में कहा – अगर हमने वैदिक मन्त्रों को कृत्रिम मेधा में डाला तो क्या वह भाष्य कर पाएगी! रविन ली नामक एक चीनी वैज्ञानिक कृत्रिम मेधा के ऊपर काम कर रहे हैं । उन्होंने बहुत अच्छी बात कही कि अगर इस प्रकार कृत्रिम मेधा आगे बढ़ती गई तो मनुष्य की बुद्धि पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। वर्तमान समय में भारतीय वैज्ञानिक क्षेत्रों में सबसे अधिक सम्भावना कृत्रिम मेधा की है, और इस कृत्रिम मेधा में बहुत बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ आरम्भ हो चुकी हैं। आज हमारे सम्पूर्ण विश्व का दुर्भाग्य है कि पूरे विश्व की जितनी राजनैतिक व्यवस्था है वह चार्वाक दर्शन पर आधारित है, और सभी लोग चार्वाक दर्शन का अनुसरण करते हैं। किन्तु अभी भी वैदिक दर्शन के आधार पर किसी राष्ट्र की राजनैतिक व्यवस्था नहीं है। अलौकिक ज्ञान के बारे में वेद भाष्यकार सायण कहते हैं –

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः ।
– *तैतिरीयसंहिता भाष्य*, भूमिका

[11] *महाभाष्य*, आह्निक – 1

[12] *शतपथब्राह्मण* – 12.8.3.23, *गोपथब्राह्मण* – 2.5.7

[13] *शुक्लयजुर्वेद* – 36.3

इसके बाद इस सत्र में अध्यक्ष के रूप में विराजमान प्रोफेसर प्रफुल्ल कुमार मिश्र महोदय ने अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। सायणाचार्य ने *ऋग्वेदभाष्यभूमिका* में *सामवेद* का विशेष व्याख्यान किया है।

हमारे गाँवों के लोग बोलते हैं – "तस्य हव्य कवयोऽपि न वर्तते"। ओड़िया भाषा में उसको "हव्य कव्य न रहिता" बोलते हैं। इन लोगों के वार्तालाप से पता चलता है, उस समय गाँव की महिलाएं कहती हैं कि ये बालक हाउ हाउ कैसे कर रहे हैं, वस्तुतः हाउ हाउ अर्थात् भारतीय सङ्गीतशास्त्र में निहित है, हा और उ। स्थान के अनुसार जब स्वरों का उच्चारण किया जाता है तब हमारे संगीतशास्त्रों का मूलमन्त्र होता है। परन्तु प्राचीनकाल में ऋषियों ने सामगान का ही आविष्कार किया। इसके बारे में सायणाचार्य ने बहुत विचार-विमर्श किया है। उन्होंने कहा है कि सप्तस्वर ऐसे होते हैं, सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा नहीं है, सा, रे, ग, म, नि, ध, प इस प्रकार है। यह ही सामगान का अनुकूल गान होता है । यहाँ भारतीय सङ्गीतशास्त्र के मूलभूत स्वरूप सप्तस्वर होते हैं। तथा स्वरों का समुच्चय सामगान में कैसे प्रतिपादित हुआ है इसके बारे में चिन्तन करना आवश्यक है। उन्होंने और बताया कि विदेशों में सङ्गीतशास्त्र को सङ्गीत चिकित्सा के रूप देखते हैं। इस विषय में सायणाचार्य ने कहा है –

अक्षरविकारादीनां सामनिष्पादकत्वं वर्णनम्। – *सामवेदभाष्यभूमिका* 9.2.26

जहाँ ऋचा का प्रयोग होता है वहाँ साम का भी प्रयोग होता है । *ताण्ड्यमहाब्राह्मण* और *छान्दोग्योपनिषद्* में इसका विचार विस्तृत रूप से उपस्थित है । इस प्रकार चर्चा के साथ चतुर्थ सत्र का समापन हुआ।

मण्टु कुमार जाना

पञ्चम सत्र

विषय – वर्तमान सन्दर्भ में अथर्ववेद का परिचय

अध्यक्ष – प्रो॰ सोमदेव शतांशु (एपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर)

प्रवचन कर्ता – श्रीकिशोर मिश्र (वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस)

सारस्वत अतिथि – श्री रमेश वर्धन, वैदिक विद्वान, गोकर्ण

सान्निध्य – प्रो॰ रमेश कुमार पाण्डेय (पूर्व कुलपति, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

सारस्वत अतिथि श्री रमेश वर्धन के वक्तव्य से पञ्चम सत्र का शुभारम्भ हुआ। उन्होंने पहले ही AI को कृत्रिम मेधा कहने में आपत्ति जताई। क्योंकि AI कोई मेधा नहीं, intelligence का मतलब मेधा नहीं है, इसे हम बुद्धिमत्ता कह सकते हैं। AI को कृत्रिम बुद्धिमत्ता बोलना उचित रहेगा। मेधा का अर्थ होता है "धीः धारणावती मेधा" लेकिन ऐसा कुछ AI में नहीं है। AI एक मशीन है, हम इसमें जैसा डेटा भरेंगे, वैसा ही वह दिखाएगी। अपने से करने की शक्ति AI में नहीं है। इसका व्यवहार हमारे काम सरल करने के लिए, डेटा सुरक्षित रखने के लिए होता है। वेद का संस्कार कैसे हमारे अन्दर आता है? कैसे वेद के मन्त्रों से हमें लाभ मिलता है? इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि, जैसे एक चुम्बक में सामर्थ्य होता है – उत्तर और दक्षिण दिशा को निर्देश करना। अगर हम एक लोहे के टुकड़े को उस चुम्बक के ऊपर एक दिशा में घुमाने लगें तो वह लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक बन जाता है। वेद के द्वारा, वैदिक यज्ञ के द्वारा, वैदिक मन्त्रों के द्वारा मनुष्यों के अन्दर भी वैदिक संस्कार जन्म लेते हैं। यजमान और होता के बीच में एक ही वस्तु है, वह है वायु। वायु ही इन दोनों के मध्य सम्बन्ध बनाए

रखती है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि, जैसे चौबीस अक्षरों से युक्त गायत्री मन्त्र का हम 3,000 बार उच्चारण करेंगे तो वह 72,000 अक्षरों का समूह होता है। यह 72,000 अक्षर हमारे शरीर की 72,000 नाड़ियों को प्रभावित करते हैं।

वर्तमान में *अथर्ववेद* हमारे लिए बहुत ही प्रासङ्गिक है। आज हम देखते हैं कि भाई भाई से, बहन बहन से, एवं माता-पिता से पुत्र बिछड़ते जा रहे हैं। समाज तथा परिवार में समान भाव बनाए रखने के लिए *अथर्ववेद* का साम्मनस्य सूक्त पढ़ना आवश्यक है। यह सूक्त (3.30.3) हमें बताता है –

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अर्थात् भाई-भाई से द्वेष न करे, बहन-बहन से द्वेष न करे। राजा के लिए भी राष्ट्र के हित में प्रजा से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना आवश्यक है।

अथर्ववेद 3.4.2. में कहा गया है –

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वमिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्र वि भजा वसूनि।।

अर्थात् प्रजा राज्य के शासन लिए राजा का वरण करे, पाँचो दिशाएँ तेजस्विनी बनकर राजा का वरण करें, राजा शत्रुओं से अपराजित होकर उनके पास जो सम्पत्ति है, उसे राजा द्वारा सभी के साथ समान रूप में बाँटना चाहिए।

वेदों में आशीर्वाद के लिए मन्त्र मिलते हैं। सामान्यतः हम सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद देते हैं। लेकिन *अथर्ववेद* 17.1.27 में सहस्र वर्ष तक जीने के बारे में बताया गया है –

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्।।

अथर्ववेद में मुख्य रूप से भूमिसूक्त का वर्णन मिलता है। इसमें भूमि की सभी विभक्तियों के द्वारा प्रार्थना की गई है। इस सूक्त में 63 मन्त्र मिलते हैं जो भगवान् परशुराम-जी ने जो इक्कीस बार पृथिवी की प्रदक्षिणा की थी उसका तीन गुना है। *अथर्ववेद* का प्रथम सूक्त का यह प्रथम मन्त्र है, इसमें कहा गया है –

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।

अर्थात् तीन गुण या अ, उ, म ये तीन अथवा अन्य तीन पारिभाषिक शब्दों को समझ सकते हैं, ये तीन और सप्त पदार्थ अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्राएं एवं अहंकार अथवा सप्तर्षि अथवा सप्तलोक यह सात गुना तीन अर्थात् इक्कीस बार हमारी रक्षा करती है। इस इक्कीस का तीन गुना 63 होता है। हम पृथ्वी से प्रार्थना करते हैं कि हमारा मङ्गल हो।

इसके बाद इस सत्र के प्रवचनकर्ता प्रोफेसर श्रीकिशोर मिश्र ने अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। उन्होंने वेदत्रयी एवं चार वेदों की अवधारणा के विषय में बताया कि जिस समय वेदों का सुगम वर्णन हो रहा था, उस समय प्रायः तीन ही वेदों की शैलियाँ थी, ऋक्, यजुष् और साम।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्।।
– *मनुस्मृति* 1.23

लेकिन पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कहा जाता रहा है कि यह चौथा *अथर्ववेद* बाद में वेदों के समूह में जोड़ा गया। इसकी भाषा विशिष्ट एवं भिन्न है, और इसकी विषय-वस्तु नवीन है। यह जो चौथा वेद है इसका स्थापन करना अति आवश्यक है। वस्तुतः वेदत्रयी इस वचन को सभी मानते हैं। उन सभी का कहना है कि यह *अथर्ववेद* बाद में जोड़ा गया है। इसके बारे में अनेक हेतु मिलते हैं।

ऋग्वेद 10.71.11 में बताया गया है कि –

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥

यहाँ पर बताया गया है कि *अथर्ववेद* पहले से ही वेदों की श्रेणी में प्राप्त हुआ करता था। वेदत्रयी के अन्तर्गत ही *अथर्ववेद* का समागम हो जाता है। वेदत्रयी अर्थात् तीन प्रकार की शैलियाँ ऋक् शैली, साम शैली (गानात्मिका) एवं यजुष् शैली, इन तीनों शैलियों का रूप सरस्वती देवी के रूप में है। ये शैलियाँ त्रैकालिक हैं। इनके अलावा चौथी शैली है ही नहीं। ऋक् शैली एवं यजुष् शैली का समागम *अथर्ववेद* में है। इसलिए उसको शैलियों के अन्तर्गत नहीं रखते।

थर्वतिश्चरतिकर्मा। तत्प्रतिषेधः।
– *निरुक्त* 11.18

हमारी जो विचलित धारा है, *अथर्ववेद* के द्वारा उसका निषेध होता है। उसका वैशिष्ट्य सभी प्रकार से मान्य है। सायणाचार्य ने कहा है कि –

तस्य ऐहिकामुष्मिकसकलपुरुषार्थपरिज्ञानोपायभूतस्य अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति। – *ऋग्वेदभाष्य* भूमिका

अथर्ववेद की व्याख्या करते हुए आचार्य कहते हैं कि अन्य तीन वेदों का फल तो आमुष्मिक है, अपितु *अथर्ववेद* का फल ऐहिक और आमुष्मिक दोनों प्रकारों से मिलता है, इसलिए *अथर्ववेद* हम सबके लिए सबसे अधिक उपकारक है।

भरतमुनि ने कहा है कि पाठ, गीत एवं अभिनय इत्यादि के आश्रय के द्वारा सब कुछ नहीं मिलता वहां पर अगर रस की अभिव्यक्ति नहीं होगी तो सब कुछ व्यर्थ है "रसान् अथर्वणादि", अर्थात् *अथर्ववेद* का वैशिष्ट्य है कि सब कुछ रसान्वित ही होना चाहिए। गीत, अभिनय, इत्यादि। *अथर्ववेद* की जो विचारधारा है, वह मानव जगत् के कल्याण के लिए ही है। उसके साथ विश्व-प्रख्यात प्रत्येक पदार्थों के लिए इसमें बताया गया है यह ध्यान देने योग्य है।

अथर्ववेद के बारे में पाश्चात्य लोगों ने बहुत भ्रम फैलाया है कि इसमें ब्लैक मैजिक, व्हाइट मैजिक, इत्यादि विषय उपलब्ध होते हैं, लेकिन ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि इसमें ब्रह्म-विषयक हेतु अनेक सूक्तों द्वारा बताया गया है। *ऋग्वेद* को दार्शनिक सूक्तों का मानक माना जाता है जिसमें हिरण्यगर्भ सूक्त, वागम्भृणी सूक्त एवं पुरुष सूक्त इत्यादि का समावेश है।

अथर्ववेद में भी बहुत दार्शनिक सूक्त हैं जो कि अन्य वेदों की अपेक्षा में अधिक हैं। जिसमें अनेक तथ्यों द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है, एवं उपदेश भी दिए हैं। उच्छिष्ट सूक्त (*अथर्ववेद* 11.9) में ब्रह्म के बारे में अन्यों की अपेक्षा अधिक

बताया गया है, जो अन्य कहीं प्राप्त नहीं होता। वेदान्त के उदाहरणों को इसमें सुसज्जित प्रकार से समझाया गया है। इसमें प्रत्येक तथ्यों के द्वारा सूक्तों को समाहार किया गया है।

व्रात्य सूक्त (*अथर्ववेद* 15.11) के बारे में बताया कि इसमें व्रात्य की विशेषताओं के बारे में बताया गया है जो संस्कारों से रहित (यज्ञोपवीत से रहित) होता है, उसको व्रात्य कहते हैं। इस सूक्त में व्रात्य की महिमा बताई गई है। इस सूक्त में व्रात्य को श्रेष्ठ बताया गया है। जैसे ईश्वर/निर्गुण में कोई संस्कार हो ही नहीं सकते, उस ब्रह्म को ही व्रात्य के नाम से जानते हैं। इस सूक्त से *अथर्ववेद* की दार्शनिक दृष्टि का पता चलता है कि इसमें ब्रह्म की कितनी श्रेष्ठ महिमा बताई गई है।

स्तम्भ सूक्त (खम्भा) जो विश्व का आधार स्तम्भ है एवं आधार प्रदान करता है। भौतिक दृष्टि से जिस पर यह सृष्टि टिकी हुई है, इसका जो मुख्य मानदण्ड है उसके बारे में इसमें बताया गया है। यह वैज्ञानिकों का आधार भी है। आज के युग में हम देखते हैं कि गॉड पार्टिकल की खोज चल रही है, जिसको नवीन अनुसन्धानों द्वारा सिद्ध माना जा रहा है, वह सूत्र स्तम्भ सूक्त में प्राप्त होता है। दार्शनिक दृष्टि से यह विशेष अवदान हमारी भारतीय संस्कृति में मिलता है, वह *अथर्ववेद* के द्वारा ही प्राप्त होता है – "यत्र विश्वं भवत्येक रूपम्"।

एक घर में रहकर भी मतभेद हो जाते हैं तब *अथर्ववेद* कहता है कि जब हम सब एकरूप हो जाएँ तब ये मतभेद नष्ट हो जाएंगे। मन में द्वेष की भावना ही नष्ट हो जाएगी। इस प्रकार के अनेक सूक्त यहाँ पर प्राप्त होते हैं।

वेदों में चौथे स्थान पर ही *अथर्ववेद* को क्यों रखा गया है इस विषय को भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया – *पाणिनीय अष्टाध्यायी* का एक सूत्र (2.2.34) है – "अल्पाच्तरम्" इसके द्वारा पता चलता है कि जिस शब्द में वर्ण, मात्राएँ कम हों उसको पहले रखा जाता है, इसलिए *ऋग्वेद* को प्रथम पर *यजुर्वेद* को द्वितीय पर *सामवेद* को तृतीय स्थान पर एवं *अथर्ववेद* की मात्राएँ अधिक होने के कारण चौथे स्थान पर रखा गया है।

अथर्ववेद की महिमा इतनी है कि उसके ऋत्विक् ब्रह्मा की अनुमति के बिना अध्वर्यु कुछ भी कार्य प्रारम्भ नहीं करता, जैसे अध्वर्यु सर्वप्रथम "अपां प्रणयन" (जल को लाने के लिए पूछता है) के लिए ब्रह्मा से पूछता है कि "ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि" उसके बाद ब्रह्मा आदेश देता है "ॐ प्रणय" (ले जाओ)। पानी लाने के लिए भी *अथर्ववेद* के ऋत्विक् ब्रह्मा की अनुमति लेता है। इससे इसकी विशेषता एवं *अथर्ववेद* की पराकाष्ठा के बारे में पता चलता है। समस्त वेदों के विशेषज्ञ होने पर ब्रह्मपरिग्रह होता है, अर्थात् वही सब कुछ जानता है।

अथर्ववेद की नौ शाखाएं हैं यथा – "पैप्पलादाः तौदा मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा वेददर्शाश्चारणवैद्याश्चेति"। अभी वर्तमान में दो ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं, जिसमें से शौनक शाखा पूरी प्राप्त होती है, और पैप्पलाद शाखा की परम्परा विस्मृत हो गई है। पतञ्जलि के समय पर यह पैप्पलाद शाखा सम्पूर्ण प्राप्त होती थी, जिसका पहला मन्त्र यह है – "ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीपतये शनयो रविस्र वन्तुनः॥" इस मन्त्र का उल्लेख *अथर्ववेद* के प्रथम मन्त्र के रूप में किया है, यह *पैप्पलाद संहिता* का प्रथम मन्त्र है। *अथर्ववेद* की शौनक शाखा का प्रथम मन्त्र है –

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥

पैप्पलाद संहिता में त्रुटियाँ, स्वरों, एवं संचार के भेद मिलते हैं।

अथर्ववेद की मौखिक परम्परा के विषय में उन्होंने बताया कि काशी में अध्यापन की परम्परा प्रचलित थी। वक्ता महोदय ने अपने बारे में बताया कि मैंने *अथर्ववेद* का पूरा अध्ययन काशी में ही किया है। उन्होंने इस परम्परा के बारे में बताया कि

यह सबसे पहले परम्परा गोकर्ण कर्नाटक में थी। वहाँ से ही यह परम्परा पूरे भारत में प्रख्यात हुई, इसी से ही आजकल अध्ययन एवं अध्यापन चल रहा है अन्य किसी परम्परा का विकास अधिक नहीं हुआ।

गोपथ ब्राह्मण की अध्ययन-अध्यापन की परम्परा भी विरल है, यह परम्परा वर्तमान समय में प्राप्त होती है। गुरुमुख उच्चारण से प्राप्त इसका उपदेश आजकल सभी को मिल रहा है। इसमें प्रातिशाख्य, शिक्षा ग्रन्थ (*माण्डूक्यशिक्षा*), आदि ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। कल्पसूत्र ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं – *वैतानिकश्रौतसूत्र*, एवं *कौशिक गृह्यसूत्र* इत्यादि। *कौशिकीयगृह्यसूत्र* का *भाष्य* उपलब्ध नहीं होता। वक्ता महोदय ने बताया कि उन्होंने इस *गृह्यसूत्र* का *भाष्य* किया है, जो कि चौदह अध्यायों में प्राप्त होता है।

अथर्ववेद की श्रौत परम्परा के कार्यों का विलोप हो गया है, क्योंकि यह कार्य मात्र यजुर्वेदियों (अध्वर्यु) द्वारा होने लगा है। *अथर्ववेद* के गृह्यसूत्र के उपाकर्म का निष्पादन वक्ता महोदय के द्वारा किया गया है। जिसका अभिप्राय है कि हमारे अतीत का संरक्षण हो एवं इस पद्धति को भी जनसामान्य जानें, जिसके कारण मनुष्य अपने *अथर्ववेद* के ज्ञान की महिमा समझे।

अथर्ववेद के जाजल, जलद, देवदर्श आदि नाम भी मिलते हैं किन्तु वर्तमान में ये उपलब्ध नहीं हैं। अन्य वेदों में श्रौतसूत्र पहले आते हैं और गृह्यसूत्र बाद में लेकिन *अथर्ववेद* में पहले गृह्यसूत्र आते हैं और श्रौतसूत्र बाद में। *अथर्ववेद* में पहले *कौशिकगृह्यसूत्र* और उसके बाद *वैतानिकश्रौतसूत्र*। *कौशिकगृह्यसूत्र* के पाठ से ज्ञात होता है कि जो वनवासी लोग हैं, उनके जितने गृह्यकर्म व परम्पराएं हैं, वे सब *कौशिकगृह्यसूत्र* से प्रभावित हैं। आदिवासी इनकी अभी तक रक्षा कर रहे हैं, जिसे हम लोग भूल चुके हैं। समाज विज्ञान की दृष्टि से हमें *कौशिकगृह्यसूत्र* पढ़ना और उसका प्रचार करना चाहिए।

इसके बाद उन्होंने *यजुर्वेद* से एक मन्त्र (36.1) उद्धृत करते हुए कहा –

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ।।

यह सब मन, प्राण और वाक् आत्मा के बिना काम नहीं कर सकते, और आत्मतत्त्व *अथर्ववेद* में प्रतिष्ठित है। *अथर्ववेद* का भैषज्य विज्ञान से विशेष सम्बन्ध है। आयुर्वेद *अथर्ववेद* से सम्बन्धित है। *अथर्ववेद* 3.17.3 में महिलाओं के विषय में सुखकारी उपदेश हैं, जैसे उन्हें कैसे सुखकारी रखा जाए, कैसे सुपुष्ट रखा जाए इत्यादि –

लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्।।

प्राचीन काल में कृषि का उद्देश्य था देवगण को प्रसन्न रखना। आधुनिक युग की तरह इसमें अधिक से अधिक फसल उगाने का, भूमि को अधिक कष्ट देकर जोतने की परम्परा नहीं थी। *अथर्ववेद* 3.17.2 से उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा –

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्।।

अर्थात् हल जोतना, अङ्कुर उगाना, बीज बोना, फसल को समृद्ध करना, पकने के बाद काट लेना, कृषि की यह पद्धति प्राचीन काल से वर्तमान काल तक एक प्रकार की ही है। कृषि के साथ तृणादि में, पर्वतादि में प्राण व आत्मा की स्थिति भी मानी गई है – "औषधे त्रायस्व", "वर्षवृद्धमसि" (*तैत्तिरीय आरण्यक* 3.2) इत्यादि मन्त्रों द्वारा। वैसी संस्कृति के धारक हम मानवादि प्राणी की हिंसा नहीं कर सकते। आज भी गाँव के लोग कण-कण में "श्रीराम हैं" ऐसा मानते हैं। हमारे ऋषियों को औषधियों

को संग्रह करने की भी रीति ज्ञात थी। वैदिक ऋषियों को यह ज्ञात था कि, सूर्य बहुत (many galaxy) हैं। इसका प्रमाण उन्होंने *ऋग्वेद* 9.114.3 से दिया –

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव।।

कुछ स्थानों में सहस्र सूर्य भी कहा गया है। उन्होंने कहा पहले वैज्ञानिक किसी वर्तमान विषय को अन्वेषण करते हैं, इसके बाद हम उसको वेद में अन्वेषण करके बोलते हैं कि यह विषय हमारे वेद में भी है। हमें पहले ही अन्वेषण करने का प्रयास करना चाहिए। फिर उन्होंने प्राचीन काल की कुछ नई चिकित्साओं के विषय में बताया जैसे स्पर्श चिकित्सा, संगीत चिकित्सा इत्यादि। स्पर्श चिकित्सा का उदाहरण देते हुए उन्होंने *अथर्ववेद* 1.13.7 का उदाहरण दिया –

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि।।

प्राचीन काल में ऋषियों ने मनुष्य शरीर के विविध अङ्गों का उपदेश भी किया। नक्षत्र विद्या में भी ऋषियों ने *अथर्ववेद* में कहा है – आथर्वणी, दैवी, आङ्गीरसी, मनुष्यजा (nursing) – इन चार प्रकार की चिकित्सा के विषय में *अथर्ववेद* में उल्लेख प्राप्त है। राष्ट्र के विषय में भी *अथर्ववेद* बहुत कुछ सिखाता है। जैसे भूमि हमारी माता है वैसे ही पर्जन्य हमारा पिता है। *अथर्ववेद* में कहा गया है – "द्यौ पिता स उ नः पिपर्तु"। भूमि के साथ द्यौ की भी हमें रक्षा करनी चाहिए। सैटेलाइट, मिसाइल, रॉकेट, इत्यादि से द्यौ की जो क्षति हो रही है, इस विषय की चिन्ता करते हुए इसके रक्षण का विचार करना है। नारी के सम्मान की आज बहुत स्थानों में चर्चा हो रही है, हमारे वेद में इसके विषय में पहले से ही बहुत कुछ है। यहाँ नारी को सम्राज्ञी होने की भी बात कही गई है। *ऋग्वेद* 10.85.46 को उद्धृत करके इस बात की पुष्टि भी उन्होंने की –

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ।।

यह जो नारीतान्त्रिक समाज-व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है, इसको हमें आगे बढ़ाना है। नारी का सम्मान प्राचीन काल में भी था और आज के दिन में भी है। इसलिए नारी को भी अपने आप को कम नहीं समझना चाहिए। हमारा देश पहले से ही नारी प्रधान था और आज भी है। बीच में पुरुषतान्त्रिक समाज आ गया था और इसी की धारणा हमारे मन में बैठ गई है। हमें इससे निकलना है और समान भाव से आगे बढ़ना है।

इसके बाद इस सत्र में सान्निध्य के रूप उपस्थित प्रोफेसर रमेश कुमार पाण्डेय ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने *महाभारत* के निम्नलिखित श्लोक से प्रारम्भ किया –

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
– कूर्मपुराणम् 2.28
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।
– कूर्मपुराणम् 2.29

यह वाक् तत्त्व अनादि है, अनिधन है, नित्य है, सबसे पहले इस वाक् तत्त्व को स्वयम्भू के द्वारा प्रकट किया गया था, जो कि वेदमय था। यह वाक्-तत्त्व सृष्टि के प्रारम्भ से था। जब वाक्-तत्त्व उत्पन्न हुआ तो वह वेद के साथ उत्पन्न हुआ। इसका

अर्थ है सबसे पहले वेद ही उत्पन्न हुए। केवल भारतवर्ष ही नहीं, विश्व के सकल प्रवृत्ति के आधार वेद हैं। इसलिए भगवान् मनु ने कहा – "सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति"[14]। यह वेद ऐसा है कि इसमें हर तरह का मार्ग है। वेद विद्या एक अनुशासन चाहती है, अगर हम अनुशासन और नियम अर्थात् विधि-विधान से वेदज्ञान को प्राप्त करेंगे तो हमको लाभ मिलेगा, अन्यथा लाभ नहीं मिलेगा। इस सन्दर्भ में उन्होंने *भगवद्गीता* 16.23 से उदाहरण देते हुए कहा –

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

अर्थात् जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को, न सुख को और न परमगति को प्राप्त करता है।

इसलिए मुक्ति को प्रशस्त करने वाला एक ही उपाय वेद है।

प्राचीन काल से लेकर भारत में अनेक विदेशी आक्रमण हुए, वे भारत को लूटते चले गए, यवन शासकों ने देश को नष्ट किया, उसके बाद अंग्रेज़ों द्वारा भारत को फिर से लूटा गया। पश्चिमी संस्कृति आने लगी। लेकिन वह भी हमारी संस्कृति को मिटा नहीं पाई। देश के स्वाधीन होने के बाद जो हमारे लोग देश पर शासन करने लगे, वे लोग हमें फिर सनातन संस्कृति की ओर नहीं ले गए। अगर ऐसा होता तो आज हम वैदिक संस्कृति में जी रहे होते। फिर भी हमारी संस्कृति आज भी अमर है। मुहम्मद इक़बाल की कविता का अंश लेकर उन्होंने कहा –

यूनान, मिस्र, ओ-रोमां, सब मिट गए जहाँ से।
अब तक मगर है बाक़ी, नाम-ओ-निशाँ हमारा॥

....

कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-ज़माँ हमारा॥

हमारी जो गुरु–शिष्य की परम्परा थी वह समाप्त हो गई, इससे ज्ञान की परम्परा समाप्त हुई।

अथर्ववेद का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा कि, जीवन जीने का सबसे बड़ा साधन है रस। *नाट्यशास्त्र* के प्रथम अध्याय में कहा गया है कि जब वेद पर सभी के अधिकार न होने के कारण, ज्ञान के अभाव से जम्बूद्वीप दुःख से भर गया, तब एक अन्य वेद बनाने की प्रार्थना करते हुए देवताओं ने ब्रह्मा-जी से कहा कि, जो दृश्य और श्रव्य हो, आनन्ददायक हो, सभी के लिए व्यावहारिक हो और सार्ववर्णिक हो –

क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥
– *नाट्यशास्त्र* 1.11-12

फिर सभी वेदों से मुख्य तत्त्वों को लेकर पञ्चम वेद का निर्माण ब्रह्मा-जी ने किया –

---

[14] *मनुस्मृति* – 12.97

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।
– *नाट्यशास्त्र* 1.17

इस पञ्चम वेद को बनाने के लिए *अथर्ववेद* से रस लिए गए। नाट्य में रस ही प्रधान है। इससे यह पता चलता है कि *अथर्ववेद* रसमय ही है। इसकी रसता यह है कि वेद मनुष्य के जीवन को आनन्दमय बनाने की कला सिखाने वाला है। अन्य वेद हमें सम्पूर्ण ज्ञान देते हैं, लेकिन भौतिक जीवन में बीमारी, महामारी इन सबके उपचार के लिए औषधिओं का प्रयोग *अथर्ववेद* में मिलता है।

अथर्ववेद हमें और भी बहुत कुछ सिखाता है। इसका पृथ्वी सूक्त हमें एक साथ रहने का अनुशासन सिखाता है। एक मन्त्र में कहा गया है –

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
– 12.1.45

अर्थात् यह पृथिवी बहु-भाषा, बहु-धर्म वाले मनुष्यों को एक साथ धारण करती। किसी के साथ भेद नहीं करती। पृथिवी सबके लिए समान है।

अथर्ववेद 19.15.6 हमें निर्भय होना भी सिखाता है –

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

मनुष्य जब निर्भय होता है तब वह अपना कर्तव्य ठीक से करता है।

कर्तव्य के विषय में *मनु संहिता* 6.92 में कहा गया है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्याल सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

यही मानव धर्म है, मानव इसके द्वारा ही महामानव बनने का प्रयत्न करता है। यदि कोई यह सब मानकर चलता है तो उसके भीतर सद्विचार आते हैं। वेद जानने वाला कभी कुमार्ग पर नहीं चलता। एक सुभाषित का उल्लेख करके उन्होंने कहा –

अकृत्वा परसन्तापम् अगत्वा खलमन्दिरम्।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद्बहु।।
– *महासुभाषितसंग्रह* 108

अर्थात् किसी को कष्ट न देते हुए, किसी दुष्ट के घर बिना गए, सन्मार्ग का त्याग न करते हुए जीवन में जो कुछ प्राप्त हुआ वही बहुत है। यही हमारी जीवन-शैली है।

महाभारत के वनपर्व में जब यक्ष युधिष्ठिर को पूछता है – "कः मोदते?" (3.314.116) अर्थात् इस पृथ्वी पर कौन आनन्द से रहता है? इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा –

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ।।
– 3.314.117

जो व्यक्ति पाँचवें अथवा छठे दिन अपने घर में शाकान्न पकाता है, जिसके पास कोई ऋण नहीं, जो किसी दूसरे के घर में न रहता हो ऐसा व्यक्ति सुखी होता है। अगर हम चिन्तन करें तो हमारी प्रसन्नता के लिए कितनी सामान्य आवश्यकताएँ हैं लेकिन पश्चिमी संस्कृति ने हमारी आवश्यकताएँ अनेक बना दी हैं, हमारे पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध, सारे सम्बन्ध तोड़ दिए हैं। हमारी संस्कृति को तोड़ने का काम पहले टीवी ने किया, उसके बाद कम्प्यूटर, उसके बाद लैपटॉप और उसके बाद अब मोबाइल। इन सबने हमारी संस्कृति को नष्ट कर दिया। एक घर में रहते हुए भी लोग आपस में बात नहीं करते, मोबाइल पर लगे रहते हैं। आचरण से ही परिवार बनते हैं और परिवार से राष्ट्र बनता है। इसलिए समाज की रक्षा के लिए, हमारी भावी पीढ़ी को इससे बचाने के लिए आज सबसे अधिक आवश्यक है, वेद को हमारे देश की युवा पीढ़ी तक पहुँचाना।

पहले वेद ने सिखाया, फिर हम ने सीखना सीखा, फिर हम एक-दूसरे को सिखाना सीखे, अब हमने ऐसी मशीन बना दी जो खुद से सीखने लगी। यह मशीन क्या सीखेगी? इसके लिए वेद आवश्यक हैं। यदि हम AI को मानव हित के लिए, या विश्वकल्याण के लिए उपयोगी बनाना चाहते हैं तो हमें इस वेद-विद्या को पहले उस मशीन को सिखाना होगा। प्राचीन काल में भी AI का उपयोग होता था, इसका प्रमाण देने के लिए उन्होंने राम–रावण के युद्ध का उदाहरण दिया, जैसे रावण युद्ध के समय राम को भ्रमित करने के लिए एकसाथ दस रूप धारण करता था तब श्रीरामचन्द्र एक अभिमन्त्रित बाण से बाकी सब रूपों को गायब कर देते थे। उन्होंने रक्तबीज का भी उदाहरण दिया। इसके बाद वक्ता महोदय ने पद्मपुराण के एक वाक्य से अपने भाषण को समाप्त किया –

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।।
– *पद्मपुराण*, सृष्टिखण्ड 19.335

अर्थात् धर्म के सार को सुनकर उसे धारण करना चाहिए, जो हमारे लिए प्रतिकूल है उसको दूसरे के लिए भी प्रतिकूल मानकर आचरण करना चाहिए।

हम नाट्यवेद की तरह नया वेद नहीं बना सकते लेकिन समाज की रक्षा के लिए इस मशीन का कैसे सदुपयोग करना है इसके उपायों को खोजना चाहिए।

अन्त में अध्यक्षीय भाषण सोमदेव शतांशु-जी ने किया। उन्होंने पहले आदिवासी के विषय पर चर्चा करते हुए कहा – आदिवासी हमारे समाज के ही अभिन्न अङ्ग हैं। *कौशिकगृह्यसूत्र* में इनके विषय में चर्चा है। आज का समाज समझता है कि आदिवासी हमारी वैदिक संस्कृति से अलग हैं। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए हमें प्रयास करना चाहिए।

फिर उन्होंने संगोष्ठी के मूल विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा – AI की सुविधा और असुविधा दोनों ही उपलब्ध हैं। असुविधा के पक्ष में अपने जीवन का एक अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा कि कोविड के समय जब ऑनलाइन क्लासेस शुरु हुईं तो एक गरीब माता-पिता ने बहुत कष्ट करके अपने बच्चे को मोबाइल दिया लेकिन धीरे-धीरे वह बच्चा मोबाइल का इतना अधिक उपयोग करने लगा कि उसको तीन महीने अस्पताल में रखना पड़ा, और अभी भी उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। AI के द्वारा हमारी बौद्धिक, मानसिक क्षमताएँ नष्ट हो रही हैं। इससे बचने के लिए हमें सोचना चाहिए। उनके

विचार हैं, हमारे ऋषि-मुनि यह सब ज्ञान-विज्ञान जानते थे लेकिन यह भौतिक विज्ञान हमारे सिर पर चढ़कर न बोलने लग जाए और हमारी जीवन-शैली को न प्रभावित कर दे, जो आनन्द प्राप्ति हमारा उद्देश्य है, हम उससे दूर न हो जाएं। इसके कारण ऋषि-मुनियों ने इस ज्ञान-विज्ञान को प्रकाशित नहीं किया। महात्मा गाँधी की शिष्या की एक प्रसिद्ध पुस्तक है – *विज्ञान संरक्षण या विनाश*, इसमें उन्होंने विज्ञान के सभी दुष्प्रभावों का विस्तृत वर्णन किया। विज्ञान हमारे आनन्द का, सुख-साधन का कारण बने, इस विषय पर आज हमें ध्यान देना चाहिए।

इस विषय में हम *अथर्ववेद* से क्या सीख सकते हैं इस विषय पर उन्होंने चर्चा की। *अथर्ववेद* की गरिमा को बताते हुए उन्होंने *अथर्ववेद* से एक मन्त्र उद्धृत करते हुए कहा कि जिस राष्ट्र में *अथर्ववेद* को जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण रहते हों वह राष्ट्र निरुपद्रव रहते हुए उन्नति करता है –

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्

यस्य राज्ञो जनपदे स नास्ति त्रिविधैर्भयैः।
रीड्यते तस्य तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव मज्जति ।।

तस्माद्राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम् ।

....

य एवं कारयेद्राजा सर्वकालं जितेन्द्रियः ।
अनन्तं सुखमाप्नोति कृत्स्नां भुङ्क्ते वसुन्धराम् ।।[15]

अथर्ववेद के विभिन्न नाम हैं जैसे – *भृगुवेद*, *ब्रह्मवेद*, *अङ्गिरसवेद*, *छन्दोवेद*, *महीवेद*, *क्षात्रवेद*, *भैषज्यवेद*, इत्यादि। इस वेद में ब्रह्म-विषयक वर्णन अनेक सूक्तों (सम्भवतः 860 सूक्त) में किया गया है, इसलिए इसका नाम है ब्रह्मवेद। अथर्ववेद की स्थिति को प्राप्त करने के लिए योगरूढ़ की स्थिति को प्राप्त करना होगा। *अथर्ववेद* को *भैषज्यवेद* कहा जाता है –

येऽङ्गिरसो वेऽङ्गिरसः स रसः, येऽथर्वाणस्तद्भेषजं, यद्भेषजं तदमृतं, यदमृतं तद् ब्रह्म

मनुष्य को स्वस्थ रखने का जो सूत्र है, वह अथर्व शब्द से ही परिभाषित होता है। इसका उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि "स्वस्मिन् स्थितः इति स्वस्थः" अर्थात् जो अपने आप में स्थित है वह स्वस्थ है। आयुर्वेद में स्वस्थ की परिभाषा कही गई है –

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।
– *सुश्रुतसंहिता*, सूत्रस्थान 15.41

अर्थात् जिस व्यक्ति के दोष (वात, पित्त और कफ) समान हों, अग्नि सम हो, सात धातुएं भी सम हों तथा मल भी सम हो, शरीर की सभी इन्द्रिय समान क्रिया करें, इसके अलावा मन, सभी इन्द्रियाँ तथा आत्मा प्रसन्न हो, वह मनुष्य स्वस्थ कहलाता है।

ऐसा तभी हो सकता है जब व्यक्ति योग के द्वारा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है – "तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्" (*योगसूत्र* 1.3)। योग के इस सूत्र के अनुसार उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रकृतज तीन गुण सत्त्व, रज, तम कारण हैं। दीर्घ जीवन का यही

[15] *अथर्ववेद* परिशिष्ट, पुरोहितकर्माणि 6.1-3, 6।

सूत्र है। ऋषि दीर्घ जीवन जीते थे इसका कारण है, वे लम्बे समय तक सन्ध्या-समाधि करते थे। वे ध्यान के द्वारा अपनी श्वास प्रणाली पर नियन्त्रण रखते थे। संसार में वह प्राणी लम्बी आयु प्राप्त करता है जो धीमी गति से श्वास लेता है। इसका प्रमाण देने के लिए उन्होंने कछुए का उदाहरण दिया।

सूर्य, रवि इत्यादि शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए उन्होंने कहा – संस्कृत का हरएक शब्द अपने आप में वैज्ञानिक है। इसमें हर शब्द का नाम उस वस्तु के कर्म के अनुसार दिया गया है। रवि शब्द रु (रु शब्दे) धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है रव करना। सूर्य का रव ॐ है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में कहा गया है – "अयं सूर्यः स्मरण एति ॐ"। नासा के वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध किया कि सूर्य की ध्वनि ॐ है। गन्धर्व शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए उन्होंने कहा – "गां वाणीं धारयति इति गन्धर्वः"। जो ध्वनि को धारण करते हैं वे गन्धर्व हैं। इस प्रकार से संस्कृत का प्रत्येक शब्द वैज्ञानिक है। हमें अपनी भाषा पर गर्व होना चाहिए और इसकी वास्तविकता को जानने के लिए हमें प्रयास करना चाहिए।

भैषज्य, सामनस्य, आयुष्य, पौष्टिक कर्म, प्रायश्चित्त कर्म, स्त्री कर्म आदि बहुविषय *अथर्ववेद* में हैं। *अथर्ववेद* को विज्ञानकाण्ड का अंश मानते हैं। आज भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक आदि सभी विज्ञान अपनी चरम सीमा पर हैं। इस अवस्था में *अथर्ववेद* के वैज्ञानिक तथ्यों पर हमें ध्यान देना चाहिए और यह वेद हमें क्या नया विज्ञान दे सकता है, इस विषय पर हमें चर्चा करनी चाहिए। वर्तमान विज्ञान से वेद विज्ञान अलग है, वेद का विज्ञान super science है। आधुनिक विज्ञान का तथ्य इसमें न ढूँढकर इसमें कुछ अलग खोजना उचित है। आधुनिक विज्ञान के तथ्य हर दूसरे दिन बदल जाते हैं लेकिन वेद का विज्ञान शाश्वत है। *अथर्ववेद* का पहला मन्त्र है –

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।

अथर्ववेद के पहले मन्त्र का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि पृथ्वी के जो सारे तत्त्व हैं वह सब इस त्रि और सप्त शब्द में समाहित हैं। इस एक मन्त्र में सारे विश्व के विज्ञान सिमटे हुए हैं। इस मन्त्र की बहुत विस्तृत व्याख्या मिलती है। यहाँ त्रि शब्द के द्वारा तीन गुण (सत्त्व, रज, तम), तीन लोक (भू, द्यौ, अन्तरिक्ष), तीन द्रव्य (अग्नि, वायु, आदित्य), तीन परमाणु (इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन), तीन काल (अतीत, वर्तमान, भविष्य), तीन लिंग (पुं, स्त्री, नपुंसक) आदि सारे त्रि शब्द से बोधित होते हैं। सप्त शब्द का अर्थ समवाय होता है। यह तीन एकत्रिक होकर पृथ्वी के सारे रूपों को धारण करते हैं। सप्त शब्द का अर्थ संख्यावाचक भी हो सकता है। जैसे – सप्तर्षि, सात लोक, सात ग्रह, सात छन्द, सात दिन, सात सुर, इन्द्रधनुष के सात रंग, आदि। यह सात और ऊपर के तीन तत्त्व मिलकर कुल दस तत्त्व पृथ्वी के सारे रूपों को धारण करके विचरण करते हैं। पुनः त्रि-सप्त शब्द की और एक व्याख्या उन्होंने की – $3 \times 7 = 21$ अर्थात् बारह मास, पाँच ऋतुएं, तीन लोक और आदित्य मिलकर इक्कीस होते हैं। पञ्चप्राण, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण यह इक्कीस होते हैं। और यह इक्कीस तत्त्व रूप को धारण करके पृथ्वी व हमारे शरीर में भ्रमण करते हैं। पण्डित गिरिधर लाल शास्त्री ने त्रि-सप्त शब्द का अद्भुत अर्थ किया है। उन्होंने सात और तीन जोड़कर दस माना और इसकी कई प्रकार से व्याख्या की – जैसे जल, अग्नि, वायु, बाल्यावस्था, यौवन, जरा, स्त्री, पुमान्, नपुंसक आदि दस। वात, पित्त, कफ़ और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, सुखरा यह सप्त धातु मिलकर दस। अ उ म ये तीन और सप्तलोक मिलकर दस। गणित की दस संख्या – 1 से 9 और शून्य। तीन लोक एवं सात ग्रह मिलकर दस। इस प्रकार उन्होंने इन सबके भीतर सारे विज्ञान, विश्व के सारे रूप अन्तर्निहित माने हैं।

वक्ता ने वेद की गवेषणामूलक कुछ पुस्तकों की चर्चा की – जैसे *ऋग्वेद* में अग्नि के विषय पर डॉ॰ कपिलदेव शास्त्री की पुस्तक में अग्नि के विषय में चर्चा की गई है। *अथर्ववेद में राजनीति* नाम से डॉ॰ भारतभूषण की पुस्तक में राज्य व्यवस्था के विषय पर चर्चा की गई है। फिर उन्होंने *अथर्ववेद* के अन्तर्गत विविध चिकित्सा पद्धति के बारे में बात की जैसे – आङ्गीरसी चिकित्सा, आथर्वण चिकित्सा, दैवी चिकित्सा, इत्यादि। वे सब चिकित्सा बहुत कार्यकारी थीं। उन्होंने डॉ॰ सुनील जोशी नामक एक चिकित्सक का नाम लिया, जो मर्मचिकित्सा नामक एक विशेष चिकित्सा-पद्धति से उपचार करते हैं।

फिर उन्होंने भारतीय संस्कृति के नष्ट होने का कारण बताया। किसी भी संस्कृति को नष्ट करने के लिए उसकी भाषा को नष्ट कर देना चाहिए। हमारी भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के लिए विदेशियों ने हमारी भाषा को नष्ट किया। जिसके कारण हमारी संस्कति नष्ट-भ्रष्ट हो गई। हमें उसके पुनरुद्धार के लिए प्रयास करना चाहिए। *मोपला* नामक पुस्तक की भूमिका में वीर सावरकर ने कहा है – महाभारत के युद्ध के बाद भी अखण्ड भारत में वैदिक संस्कृति प्रचलित थी। अपने भाषण के अन्त में उन्होंने हमारी संस्कृति को, भारतीय ज्ञान-विज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए स्वामी दयानन्द का एक प्रख्यात उद्घोष "वेदों की ओर लौटो" को पूरे भारत में उपयोग करने का निवेदन किया। जिससे हमारा भारत पहले जैसा विश्वगुरु बन सकता है। इस प्रकार पञ्चमसत्र पूर्ण हुआ।

खोकन माइति

षष्ठ सत्र

विषय **–** वेदों में सामाजिक संरचनाएं व प्रशासनिक व्यवस्थाएं ।

अध्यक्ष **–** डॉ॰ गंभीर चौहान (संयुक्त सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग)

प्रवचनकर्ता **–** प्रो॰ हरे कृष्ण शतपथी (पूर्व कुलपति, राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति)

सारस्वत अतिथि **–** प्रो॰ जे॰ पी॰ सेमवाल

सत्र संचालन **–** श्री सुमंतो घोष

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान, गुरुग्राम, और इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित द्विदिवसीय वैदिक संगोष्ठी के दूसरे दिन, षष्ठ सत्र के प्रवचनकर्ता प्रोफेसर हरे कृष्ण शतपथी-जी ने कहा कि भारत के इस वैदिक अमृतकाल में शङ्ख प्रदान करके सामाजिक संरचना के लिए यह शङ्खनाद का प्रारम्भ है ।

वैदिक समाज सुगठित, सुन्दर, शृङ्खलित, पवित्र और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित था। प्रत्येक समाज को शृङ्खलित करने के लिए संविधान की आवश्यकता होती है । उसी प्रकार मानव सभ्यता को चलाने के लिए सर्वप्रथम वेद भगवान् हैं। यह वेद सम्पूर्ण विश्व का संविधान है। इस वैदिक संविधान के द्वारा मानव समाज विनय, विद्या, आचार-व्यवहार से सम्पन्न हो सकता है । वैदिक समाज की सोच सकारात्मक थी, किसी भी समाज का उत्थान या वह समृद्ध तब तक नहीं हो सकता जब तक वह सकारात्मक विचारों से युक्त न हो । उसके लिए वेद में सूक्ति है –

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितार दिवेदिवे ।।
– *ऋग्वेद* 1.89.1

भगवान् ने समाज हित में कार्य करने के लिए हमें आँख, नाक, कान और हाथ दिए हैं । इसलिए सर्वदा अच्छा ही करना चाहिए । वेद में भी यही शिक्षा है ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
– *ऋग्वेद* 1.89.8

प्रत्येक कार्य करने से पहले सङ्कल्प करना चाहिए । यदि हृदय से किसी कार्य के लिए सङ्कल्प किया जाए तो सफल अवश्य होता है। हमारे मन में सर्वदा शुभ सङ्कल्प होने चाहिए । जैसा शुक्ल *यजुर्वेद* 34.1 में आदेश है –

यज्जाग्रतो दूरम् उदैति दैवं तद् उ सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिर् एकं तन् मे मनःशिवसङ्कल्पम् अस्तु ।।

हमारा मन कलुषित और प्रदूषित नहीं होगा तो हम अनैतिक, गलत कार्य नहीं कर सकते परन्तु जब हमारा मन कलुषित होता है तो हम अनैतिक कार्यों की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं ।

पर्यावरण के लिए भी हमारा मन, बुद्धि एवं अहंकार दूषित न हो, तभी पञ्चमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश इन सबको प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है और संरक्षित करना सम्भव होगा। भगवान् श्री कृष्ण ने *गीता* 7.4 में कहा है –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

भारतीय संस्कृति यज्ञ की संस्कृति है अर्थात् यज्ञों के माध्यम से ही हमारी सभी क्रियाएं सम्पन्न होती हैं । यज्ञ से सभी कार्य पूर्ण होते हैं। *गीता* 3.14 में कहा गया है कि –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।

और *ऋग्वेद* 10.90.16 में भी कहा गया है कि –

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।

अच्छी तरह यज्ञ का सम्पादन करना ही भगवान् यज्ञनारायण की आराधना है और यही हमारा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जब हमारा मन यज्ञनारायण के साथ संयुक्त होता है तथा आत्मा परमात्मा से युक्त होती है, तब हमारे अन्दर सद्भावना का विकास होता है । *गीता* 2.66 में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है –

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।

हमारी भावना विश्वबन्धुत्व की भावना होनी चाहिए । जगद्गुरु शङ्कराचार्य-जी के वेदाध्ययन के बाद उनकी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना हो जाती है । उनकी भावना "सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" की हो जाती है ।

> दृते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
> मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
> मित्रस्य चक्षुषा सम् ईक्षामहे ।।
> – *शु॰ यजुर्वेद* 36.18

जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा है कि "सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनम्। यत्र भवति विश्वमेकनीडम्। सर्वेपि कल्पद्रुमाः।" सभी मेरे लिए एक समान हैं ।

> पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि, शैलप्रचारि गिरिराज-गुहाविदारि ।
> झङ्कारकारि हरिपाद-रजोपहारि गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ।।
> – *गंगाष्टकम्* 8

हर एक तालाब का जल मेरे लिए गंगा के समान है। "वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो" मेरे लिए प्रत्येक भाषा, प्राकृत-संस्कृत भाषा वेद भाषा है ।

"वाराणसी मेदिनी सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनम्" सम्पूर्ण पृथ्वी मेरे लिए वाराणसी के समान है और सम्पूर्ण जगत् नन्दनवन है। इस प्रकार की भावना जैसे शङ्कराचार्य को वेद अध्ययन के बाद आती है यही सद्भावना है । जैसे संविधान में मौलिक अधिकार राइट टू लाइफ, राइट टू एजुकेशन, इत्यादि का संविधान है । उसी प्रकार वेद में भी मौलिक अधिकार राइट टू लाइफ, राइट टू एजुकेशन, इत्यादि का संविधान है । वेद द्वारा प्रत्येक मनुष्य को 100 वर्ष तक जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया गया है ।

> जीवेम शरदः शतम्। नन्दाम शरदः शतम्। मोदाम शरदः शतम्। शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतम्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश् च शरदः शतात्॥
> – *शु॰ यजुर्वेद* 36.24

और इन 100 वर्ष को चार भागों में विभक्त किया गया था – 1. ब्रह्मचर्याश्रम, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थाश्रम, तथा 4. संन्यासाश्रम ।

वैदिक संविधान में यदि 8 प्रिंसिपल (सिद्धान्त) को अपनाया जाए तो आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है ।

1. **नित्यं हिताहारसेवी –** हमारा आहार सात्त्विक होना चाहिए । "आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः"।
2. **नित्यं हितविहारसेवी –** विहार मतलब श्रम होना चाहिए, शारीरिक श्रम भी होना चाहिए, इसलिए आश्रमों की व्यवस्था थी । हमने गुरुकुलों में आश्रमों में जो श्रम किया था वह श्रम अपेक्षित है । "आसमन्तात् श्रमः इति आश्रमः"।
3. **समीक्ष्यकारी –** हम जो भी कार्य करें सोच-समझकर, विचार करके करें । यदि गलत कार्य करेंगे, तो 100 वर्ष तक जीवन नहीं जी पाएंगे।
4. **विषयेष्वसक्तः –** भगवान् ने मानव जीवन दिया है इसे व्यर्थ न करें ।

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।
– *अग्निपुराण* 337.3

5. **दाता** – हमें दान भी करना चाहिए, केवल अपने लिए नहीं जीना चाहिए, दानी बनना चाहिए जिससे प्राणिमात्र का कल्याण हो ।
6. **सत्यपरः** – सत्य ही जीवन है, सत्य से कभी पीछे नहीं हटना चाहिए ।
7. **क्षमावान्** – हमें क्षमावान् होना चाहिए । पृथ्वी हमें सिखाती है कि मेरी तरह क्षमावान् बनो । "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" । पृथ्वी प्रथम गुरु है । जल, वायु, अग्नि इत्यादि चौबीस गुरुओं के बारे में बताया गया है ।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।
– *अथर्ववेद* 12.1.12

8. **अप्तोपसेवी** – महापुरुषों को सुनना चाहिए । आप्त वचन सदा ग्रहण करना हमारा कर्त्तव्य है ।

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान् अप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ।।
– *अष्टाङ्गसंग्रहः*, सूत्रस्थानम् 5.63

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपर: क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ।।
– *चरक संहिता*, शारीरस्थानम् 5.2.46

यदि हम इन सभी नियमों का पालन करते हैं तो 100 वर्ष की लम्बी आयु प्राप्त कर सकते हैं । इसे चार भागों में विभाजित किया गया है । 25 वर्ष तक विद्या अध्ययन का समय है । पं॰ महामना मदनमोहन मालवीय-जी जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक थे उन्होंने भी कहा है कि –

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाऽथ विद्यया ।
देशभक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानर्ह: सदा भव।।

वेद में भी कहा गया है – "द्वे विद्ये वेदितव्ये परा अपरा च" ।

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।।
– *मुण्डकोपनिषद्* 1.1.4

और "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते"।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।
– *ईशावास्योपनिषद्* 11

दो प्रकार की विद्याएँ होती हैं – परा और अपरा। एक जीवन जीने के लिए दूसरी वृत्ति पालन के लिए । और कहा भी गया है – "दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्" ।

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ।।
– *ऋग्वेद* 10.85.39

ज्ञान, तेज, और तप अर्जित करने के लिए ब्रह्मचर्याश्रम की आवश्यकता होती है । और इसके बाद समावर्तन संस्कार में गुरु द्वारा प्रदत्त उपदेश – सत्यं वद। धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्। अतिथिदेवो भव। आचार्यदेवो भव। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। एष आदेशः उपदेशः।" इत्यादि उपदेश हैं। उसके बाद गृहीभूत्वा गृहस्थाश्रम में जाने के बाद का जीवन जीना चाहिए। *गीता* 9.26 में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

इस प्रकार समग्र जीवन की चार अवस्थाएं हैं।

1. पत्रम् – हमारी शैशवावस्था कोमल अवस्था है, ब्रह्मचर्य के लिए है और यह पत्र के समान है।
2. पुष्पम् – गृहस्थ जीवन पुष्पमय जीवन है यह प्रस्फुटित पुष्प के समान होता है ।
3. फलम् – गृहीभूत्वा वनीभवेत् , यह वानप्रस्थ आश्रम फल की तरह है ।
4. तोयम् – वैराग्य और त्याग के लिए संन्यास आश्रम तोय अर्थात् जल के समान है ।

हमारी संस्कृति त्याग की संस्कृति है । इसलिए *ईशावास्योपनिषद्* 1 में कहा गया है कि "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

ये जो चारों अवस्थाएं हैं, इसे भगवान् के चरण-कमलों में अर्पित कर दीजिए, और इन चारों अवस्थाओं के पालन करने से हमारा पुरुषार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में आ जाता है । प्रत्येक आश्रम में इस पुरुषार्थ चतुष्टय को ध्यान में रखना चाहिए। यह वैदिक युग की आश्रम व्यवस्था थी । जिसके आधार पर हमारी जीवन-शैली पर्यवसित थी ।

जीवन-पद्धति के छः कारण हैं जो जीवन को प्रभावित करते हैं –

1. अनियमित जीवन-यापन।
2. असन्तुलित आहार ।
3. अत्यधिक चिन्ता करना ।
4. शारीरिक श्रम का अभाव ।
5. नमक चीनी और मदिरा का अत्यधिक सेवन करना।
6. परिवेश प्रदूषण ।

इनके कारण हार्ट अटैक, कैंसर इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं । ये छः कारण जीवन-पद्धति को प्रभावित करते हैं । यह सभी डिजिटलाइजेशन का ही कारण है । हमारी जीवन-पद्धति, दिनचर्या कैसी होनी चाहिए, जो आश्रम व्यवस्था के आधार पर हो, यह सब कुछ हमारे वेद में अर्थात् मानव जाति के प्रथम संविधान में लिखा गया है। जिसे हम सभी भूलते जा रहे हैं। सम्पूर्ण रूप से हम विकास तभी कर पाएंगे जब हम मानव जाति के प्रथम संविधान (वेद) का अक्षरशः पालन व अनुसरण

करेंगे, और अमरत्त्व भी प्राप्त कर सकेंगे । वेद का उद्देश्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अमृत है और अमरत्त्व को प्राप्त करे। *गीता* में कहा गया है “तथा देहान्तरप्राप्तिः” तथा वेद में “शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा” कहा गया है । कोई मरता नहीं है ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।
– *ऋग्वेद* 10.13.1

वैदिक समाज बहुत शृङ्खलित पवित्र सुन्दर सुखमय और शान्तिपूर्ण था । यहाँ आश्रम व्यवस्था के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था थी, और यहाँ जाति व्यवस्था नहीं है वर्ण अलग हैं और जाति अलग हैं । चार वर्ण – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र । ये जाति नहीं वर्ण हैं । पुरुष सूक्त में आया है – “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः” ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।
– *ऋग्वेद* 10.90.12

पुरुषार्थ चतुष्टय के बिना हमारा जीवन व्यर्थ हो जाता है । परिवार के लिए भी शास्त्रों में लिखा है – “वसुधैव कुटुम्बकम्” हमारा परिवार संयुक्त परिवार है । सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है ।

वक्ता ने नारी के विषय में अपने प्रवचन के माध्यम से कहा कि नारी के सम्मान तथा अत्यधिक महत्त्व के बारे में वेदों में कहा गया है । जब कन्या पति के गृह (घर) जाती है तब का कथन है कि –

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ।।
– *ऋग्वेद* 10.85.46

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।
– *ऋग्वेद* 10.85.44

वैदिक पद्धति में विज्ञान-सम्मत एक विवाह प्रथा थी जो आजकल लुप्त होती जा रही है। विवाह के समय जब वर कन्या का हस्त ग्रहण करता है तब प्रतिश्रुति करता है कि ये मेरा सौभाग्य है कि आपका पाणिग्रहण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। ये हमारी संस्कृति है। जैसे कि *ऋग्वेद* 10.85.36 में उक्त है –

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।

नारी के महत्त्व के बारे में *मार्कण्डेय पुराण* में वर्णन करते हुए कहा गया है कि –

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ।।
– *दुर्गासप्तशती* 2.13

मनुस्मृति में भी नारी के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
– *मनुस्मृति* 3.56

हमारे यहाँ अर्थ की दृष्टि से, शिक्षा की दृष्टि से, तथा व्यवसाय की दृष्टि से वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था के माध्यम से समाज सञ्चालित होता है । ये सब जाति नहीं हैं वर्ण व्यवस्था है । वैदिक समाज में भी वर्क कल्चर था । जिसे प्रत्येक व्यक्ति करता था, एक सुदृढ़ व्यवस्था थी । शिक्षा के क्षेत्र में हमारे यहाँ गुरुकुल व्यवस्था में परा और अपरा, दोनों विद्याएं प्रदान की जाती थीं, तथा प्रशासन की दृष्टि से एक गणतान्त्रिक सुशासन व्यवस्था थी। सभी के साथ समान व्यवहार हुआ करता था । इसका उल्लेख *ऋग्वेद* 10.191.2-4 में है जैसे –

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

राजा भी गणतान्त्रिक पद्धति का पालन करते हुए राज्य का सञ्चालन करते थे। इस प्रकार का हमारा वैदिक समाज था। वैदिक समाज शान्तियुक्त, सुखमय तथा समृद्ध था, जिसमें किसी भी प्रकार की सङ्कीर्णता नहीं थी। हम सभी पुनः वैदिक समाज का उत्थान करके भारत को विकसित और विश्वगुरु बनाएंगे, यह सपना अवश्य साकार होगा।

सारस्वत अतिथि के रूप में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर के पूर्व निदेशक प्रोफेसर जगदीश प्रसाद सेमवाल ने अपने वक्तव्य में कहा कि वैदिक ज्ञान समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का माध्यम हो सकता है। उन्होंने यह विचार रखा कि समाज में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए हम सबको मिलकर प्रयास करना चाहिए। वैदिक समाज का निर्माण न केवल भारत के लिए, अपितु पूरी दुनिया के लिए एक आदर्श स्थापित कर सकता है। उन्होंने सामाजिक दृष्टि से अपने वक्तव्य के द्वारा समाज शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा कि पशुओं के समूह को समज तथा मनुष्यों के समूह को समाज कहते हैं । समाज शब्द सम् उपसर्गपूर्वक अज धातु से घञ् प्रत्यय करने पर तथा पशुवाचक समज शब्द – सम् उपसर्गपूर्वक अज धातु से "समुदोरजः पशुषु" इस सूत्र से अप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है ।

पाणिनि सूत्र "अजेर्व्यघञपोः" से घञ् और अप् इन दोनों प्रत्ययों से अज को भी आदेश नहीं होता है । इस प्रसङ्ग में महाभाष्यकार पतञ्जलि ने *महाभाष्य* में कहा है कि –

> वैयाकरण-रथवाहकयोरेको रुचिरः संवाद उक्तः – एवं हि कश्चिद्वैयाकरण आह-कोऽस्य रथस्य प्रवेता? इति। सूत आह – अहमायुष्मानस्य रथस्य प्राजिता । वैयाकरण आहं – अपशब्द इति । सूत आह – प्राप्तिज्ञो देवानांप्रियो न तु इष्टिज्ञः। इष्यत् एतद्रूपमिति। वैयाकरण आह – अहो खल्वनेन दुरुतेन बाध्यामहे इति । सूत आह – न खलु वेञः सूतः, सुवतेरेव सूतः, यदि सुवतेः कुत्सा प्रयोक्तव्या, दुः सूतेनेति वक्तव्यम्॥ (2.4.56 सूत्रभाष्ये) अतो यां वाचं रथवाहकोऽपि व्यवहरति सा भाषितभाषा मन्तव्यैव ।

यह प्रसङ्ग समाज शब्द के लिए है ।

वाल्मीकि रामायण में उदाहरण है कि उस समय के सामान्य लोग ही नहीं अपितु हनुमान्-जी भी परम विद्वान् हैं जैसे – *वाल्मीकि रामायण* में भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मण से हनुमान्-जी की योग्यता बताते हुए कहते हैं

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिण:।
नासामवेदविदुष: शक्यमेव विभाषितुम्।।
– 4.3.28

अर्थात् श्रीराम लक्ष्मण-जी से कहते हैं कि ये हनुमान् उच्च कोटि के विद्वान् हैं, क्योंकि *ऋग्वेद* के अध्ययन से अनभिज्ञ, *यजुर्वेद* के ज्ञान से हीन, और *सामवेद* के बोध से शून्य व्यक्ति ऐसी परिष्कृत बातें नहीं कर सकता।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।
– 4.3.29

अर्थात् निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि इनके इतने समय बोलने में इन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की है ।

न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्।।

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्।।
– 4.3.30-31

इस प्रकार वक्ता कैसा होना चाहिए उसका लक्षण बताया गया है ।

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्।।
– 4.3.32

एक प्रकार से इसमें काव्य लक्षण और काव्य प्रयोजन दृष्टिगत होता है ।

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि।।
– 4.3.33

इस प्रकार संस्कृत और प्रवचनकर्ता के बारे में तथा हनुमान्-जी स्वयं वेद के ज्ञाता थे इस प्रसङ्ग के बारे में महर्षि वाल्मीकि ने *रामायण* में सामाजिक संरचना को दर्शाया है ।

अथर्ववेद के मन्त्र 3.30.1 में बताया गया है कि हम आपस में कैसे रहें? वह इस प्रकार है –

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।

इसके लिए सबसे उपयुक्त उदाहरण दिया है कि – जब गाय प्रसूत होती है उसका बछड़ा जब गर्भजनित दोषों से युक्त होता है उस समय गाय स्वयं ही उस बछड़े को शुद्ध करती है । इस प्रकार समाज में हम परस्पर दोषों को दूर करें दोषारोपण न करें ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।
– *अथर्ववेद* 3.30.2

इस मन्त्र में अर्थात् करके यह अर्थ निकलता है कि – पत्नी और पति एक-दूसरे के प्रति मधुर वाणी (वचन बोलें) का प्रयोग करें । इस प्रकार वैदिक समाज सर्वदा उच्च समाज रहा है । यदि इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाए तो इसके द्वारा पुनः संसार के लिए एक आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकता है ।

सत्र में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू॰जी॰सी॰) के संयुक्त सचिव डॉ॰ गंभीर सिंह चौहान का विशेष सान्निध्य प्राप्त हुआ। डॉ॰ चौहान ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में वर्तमान समय में शिक्षा और समाज में नैतिक मूल्यों की गिरावट पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि विद्यार्थियों ने शिक्षा के महत्त्व को तो समझा, लेकिन शिक्षक की भूमिका को नज़रअन्दाज़ किया। इसी कारण समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। उन्होंने नैतिक मूल्यों के गिरने को महामारी जैसे सङ्कटों का मूल कारण बताते हुए यह विचार प्रस्तुत किया कि यदि समाज वैदिक ज्ञान और मूल्यों की ओर लौटे, तो इन समस्याओं का समाधान हो सकता है।

इस सत्र का समापन समाज और शिक्षा के प्रति वैदिक दृष्टिकोण को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए किया गया। वक्ताओं और श्रोताओं ने वैदिक ज्ञान की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे सामाजिक और प्रशासनिक सुधार के लिए एक अनिवार्य तत्त्व बताया।

शशिकान्त मिश्र

सप्तम सत्र

विषय – पर्यावरण संरक्षण हेतु वेदों की शिक्षा

अध्यक्ष – प्रो॰ अशोक खन्ना (पूर्व प्रोफेसर, आई॰आई॰टी॰, जम्मू)

प्रवचनकर्ता – प्रो॰ शशिप्रभा कुमार (अध्यक्ष, भारतीय उन्नत अध्ययन संस्थान, शिमला)

सारस्वत अतिथि – प्रो॰ मनोज कुमार मिश्र (गङ्गानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज)

सत्र संचालन – डॉ॰ विवेक श्रीवास्तव

सङ्गोष्ठी के सप्तम सत्र की प्रवचनकर्ता प्रो॰ शशिप्रभा कुमार ने अपना वक्तव्य वेद के मेधा मन्त्र से प्रारम्भ करते हुए सङ्गोष्ठी

के मुख्य विषय "कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा" की प्रशंसा करते हुए कहा कि यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज हम सभी कृत्रिम बुद्धिमत्ता से आक्रान्त हैं।

ए॰आई॰ (AI) का आविष्कार तो मानव की सुविधा के लिए हुआ था लेकिन जो साधन सुविधा प्रदान करते हैं, जब उसके प्रयोग की अति हो जाती है तब हानि होती है। हमारी परम्परा रही है – "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। जिनका हम आवश्यकता से अधिक उपयोग करने लगते हैं। उन सब समस्याओं से हम आक्रान्त होते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भाँति हम सभी के जीवन कृत्रिम शैली से चल रहे हैं। हमारा भोजन, हमारा आचार, हमारा व्यवहार सब कुछ कृत्रिमता से भरा हुआ है। वैदिक जीवन-शैली बहुत सहज और नैसर्गिक वातावरण पर आश्रित रही है। उन्होंने बताया AI का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि मोबाईल उपकरण और इण्टरनेट टेक्नोलॉजी इन दोनों ने पहले तो मानव का प्रकृति के साथ संवाद और सम्पर्क समाप्त किया। अब जब यह कृत्रिम बुद्धिमत्ता विकसित हुई है तो इसका एक भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ कि इसने मानव का मानव के साथ सम्पर्क ही सीमित कर दिया है। जहाँ यह कृत्रिम बुद्धिमत्ता जितनी विकसित होती जाएगी यदि संयमपूर्वक इसका हमने प्रयोग नहीं किया तो मानवता के लिए बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाएगी। वैदिक चिन्तन की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक समग्र सर्वाङ्गीण दृष्टि लेकर चलती है जबकि आधुनिक पाश्चात्य दृष्टि खण्ड-खण्ड में बँटी हुई दृष्टि है। जब हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता की बात करते हैं तो केवल और केवल उसी के विकास की बात करते हैं। उसका समाज पर, युवा पीढ़ी पर, मानवता पर क्या प्रभाव होगा इसके विषय में कोई विचार नहीं करता। इसी प्रकार जब मोबाईल उपकरण आए थे बहुत बड़ी सुविधा लेकर आए थे। याद कीजिए वह दिन जब हम लैण्डलाइन दूरभाष पाने के लिए भी महीनों तक प्रतीक्षा किया करते थे। हमने आवेदन किया और उसके कई महीनों बाद फोन मिला करता था। मोबाईल उपकरण आने से जीवन में बहुत सौविध्य हुआ है। किन्तु आज दिल्ली की हवा जितनी दूषित है उतने प्रदूषण की शायद किसी ने कल्पना नहीं की होगी। आप सोचेंगे कि दिल्ली की हवा का मोबाईल से कोई सम्बन्ध नहीं है लेकिन मोबाईल एक उपकरण है। उपकरणों की अत्यधिक आदत भी प्रदूषण का एक कारण है। प्रत्येक स्थान पर यह मोबाईल मनुष्य के साथ चलता है, उसके फल और दुष्फल पर कोई विचार नहीं करता है। अपने ही परिवारजनों में जिस व्यवहार की बात कभी वेद ने की थी वह सन्देश है –

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ।।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।
– *ऋग्वेद* 10.191.1-4

अब वह सम्वाद पूर्णतः समाप्त हो गया है। परिवारों में विवाद बढ़ते जा रहे हैं।

पर्यावरण का संकट इतना बढ़ गया है। इसके क्या कारण हैं? इसके निवारण के लिए वेद हमें क्या शिक्षा देते हैं? इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है। उससे पूर्व यह जानें कि पर्यावरण है क्या? वातावरण है क्या? वातावरण और पर्यावरण दोनों में क्या अन्तर है? 1986 में एन्वायरनमेण्ट प्रोटेक्शन एक्ट बना था, उसमें पर्यावरण की परिभाषा दी गई है –

> Environment includes water, air and land and the interrelationship which exists among and between air, water and land and human beings, other living creatures, plants, micro-organism and property.

स्पष्टतः इस परिभाषा में जल है, वायु है, पृथ्वी है, मनुष्य है, अन्य सभी प्राणी हैं, वनस्पतियाँ हैं और अन्य सूक्ष्म जीवाणु हैं इन सबके अन्तःसम्बन्ध पर्यावरण (एन्वायरनमेण्ट) के अन्दर आते हैं। जबकि जो वातावरण है, वह केवल वात (वायु) का आवरण है, वह एट्मॉस्फेयर है। वैदिक चिन्तन में इस प्रकार की परिभाषाएं नहीं दी गई हैं, लेकिन वहाँ पर वेदों में समस्त ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्वों के विषयों में शुभकामनाओं, मंगलकामनाओं की प्रार्थनाएं मिलती हैं। *अथर्ववेद* 17.1.7 का मन्त्र है – "याश्च पश्यामि याश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि" अर्थात् जिनको मैं देखता हूँ उनके प्रति भी और जिनको नहीं देखता हूँ, उनके प्रति भी मेरी सुमति बनी रहे। सुबह उठते समय प्रातःकाल सूर्य नमस्कार के मन्त्र, उषा की कान्ति को प्रणाम करने के मन्त्र, रात्रि के सोते समय के शिवसङ्कल्प के मन्त्र सारे ब्रह्माण्ड की मंगलकामनाओं से अनुप्राणित हैं। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" यह वैदिक चिन्तन का सूत्र है। जिस प्रकार पिण्ड में जो जो तत्त्व हैं। उन सबका एक अखण्ड समग्र रूप है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में एक यह पिण्ड माइक्रोकोज्म है और ब्रह्माण्ड में मेक्रोकोज्म हैं। इन दोनों के बीच जब तक संगति रहती है तब तक शान्ति रहेगी, लेकिन जब पिण्ड और ब्रह्माण्ड में संगति नहीं रहेगी तो विसंगति बढ़ जाएगी। उसकी हानि भी हमें ही उठानी पड़ेगी। पिण्ड में ही जब एक अङ्ग का दूसरे अङ्ग के साथ समन्वय नहीं रहता तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। ब्रह्माण्ड में आज विसंगति की सीमा इस हद तक बढ़ चुकी है कि पृथ्वी का जल के साथ, जल का वायु के साथ, इन सबका वनस्पतियों के साथ सम्वाद और समन्वय असन्तुलित हो चुका है। तो आइए वेद में देखें क्या-क्या इस विषय में हमें दिशा-निर्देश मिलते हैं।

1. वेद समग्र ब्रह्माण्ड के प्रति एक समन्वित दृष्टि रखता है।
2. वेद प्रत्येक तत्त्वों में दैवीय चेतना का दर्शन कराता है।

वेदों में समस्त विश्व का दैवीकरण इस प्रकार किया गया है अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्र देवता, आदित्यो देवता, मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पतिर्देवता, इन्द्रो देवता, वरुणो देवता, *यजुर्वेद* में इन्हें देवता कहते हैं। मन्त्र 14.20 में बताया गया है –

अग्निर्देवता। वातोदेवता। सूर्योदेवता। चन्द्रमादेवता। वसवोदेवता। रुद्रादेवता। ऽऽआदित्यादेवता।
मरुतोदेवता। विश्वेदेवादेवता। बृहस्पतिर्देवता। इन्द्रोदेवता। वरुणोदेवता॥

वहाँ पर देवता कोई स्थूल विग्रहवान देवता नहीं है। अपितु देवता शब्द का अर्थ वहाँ पर है – "देवो दानात् वा द्योतनाद्वा दीपनाद्वा"। प्रकृति की समस्त शक्तियाँ जो पर्यावरण का अङ्ग हैं, वे सब दैवीय चेतना से अनुप्राणित हैं और उनके प्रति सम्मान का, समर्पण का, स्नेह का, सौहार्द का भाव बनाए रखना वैदिक काल में आजकल की तरह कोई फैशन नहीं था। आजकल लोग कहते हैं मैं प्रकृति से प्रेम करता हूँ (गार्डनिंग मेरी हॉबी है)। वैदिक चिन्तन में यह हॉबी नहीं हुआ करती थी अपितु जीवन का अङ्ग हुआ करती थी। प्रत्येक तत्त्व के प्रति सम्मान की भावना, सौहार्द की भावना वैदिक चिन्तन में अनुस्यूत है। इसीलिए जब मेधा की प्रार्थना की जाती है तो निरुक्ताचार्य कहते हैं – जो धारणावती बुद्धि है वह मेधा है,

“मे” अर्थात् मुझमें, “धा” अर्थात् धारण कराए। बुद्धि के अनेक नाम हैं और केवल बुद्धि के ही नहीं, *निघण्टु* जो विश्व का पहला कोष है। उसमें पृथ्वी के 21 नाम, जल के 101 नाम, अग्नि के 11, अन्तरिक्ष के 16, रश्मियों के 15, दिशाओं के 8, रात्रि के 23, उषा के 16, दिन के 12, मेघ के 30, वाक् के 57, नदी के 37, अश्व के 26 नाम पर्यायवाची शब्द के रूप में गिनाए गए हैं। प्रत्येक पर्यायवाची शब्द में एक दूसरे शब्द की छाया होती है लेकिन अर्थ एक जैसा नहीं होता, अर्थ-भिन्नता होती है। जैसे जल के प्रति 101 नामों में उन वैदिक ऋषियों की दृष्टि कितनी व्यापक और सूक्ष्म रही होगी। प्रत्येक शब्द की धातु अलग-अलग है। हर धातु की विशेषता अलग-अलग है और उसकी निष्पत्ति करके जब हम देखते हैं तो उसमें से एक अलग छवि निकलती है। वैदिक ऋषियों का प्रकृति के साथ तादात्म्य और संवाद कितना व्यापक (सूक्ष्म) था यह इन पर्यायवाची शब्दों से ज्ञात होता है।

आज हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास की ओर बढ़ रहे हैं लेकिन वेद का ऋषि कहता है – “मेधां मे वरुणो दधातु मेधाम् अग्निः। प्रजापतिः मेधाम् इन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता दधातु मे स्वाहा।” (*शु॰ यजुर्वेद* 32.15) मन्त्र में आए मेधा शब्द का निरुक्तकार यास्क ने “मेधया धारणावत्या धिया” यह अर्थ किया है। प्रकृति के साथ जो साहचर्य की बात है वह केवल वेदों में ही नहीं, वेद के परवर्ती समग्र वाङ्मय में, संस्कृत साहित्य में नदी के प्रवाह के समान अनुस्यूत और चित्रित मिलती है। भारतवर्ष की संस्कृति सनातन संस्कृति है। आज भी जो लोग उस संस्कृति को जानते हैं और उस संस्कृति का पालन करते हैं, वे एक-एक पौधे को जल देते हैं। सुबह उठते ही सूर्य को प्रणाम करते हैं। उषा को प्रभात की देवी माना गया है। *ऋग्वेद* में 301 बार उषा की स्तुति की गई है। उषा का दर्शन आज कहाँ हो पा रहा है। आज का वायुमण्डल काले बादलों से प्रदूषित वातावरण से पूरी तरह आच्छन्न है। यदि कहीं पर हिमालय में या फिर शिमला के आसपास के स्थान पवित्र हैं भी, तो प्रातःकाल (उषाकाल) में आजकल कौन उठता है। पहले हमारी संस्कृति उषःपान की संस्कृति थी। सूर्योदय से पहले का काल है उषाकाल। उषाकाल में उठकर, उषादेवी के दर्शन करते हुए ऋषियों ने क्या-क्या सुन्दर चित्र खींचे हैं। नारी के सौन्दर्य का जब वर्णन आता है –

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ।।
– *ऋग्वेद* 1.12.3

इसका भाव है कि ज्योति की साड़ी पहने हुए ये द्युलोक की पुत्री उदय हो रही है। हमने न केवल प्रकृति की परवाह करनी छोड़ी है बल्कि हमने अपनी दिनचर्या भी दूषित कर ली है। अपना आहार, विहार दूषित कर लिया है। सब कुछ पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार कर लिया है, क्योंकि अपनी जड़ों के बारे में बताने वाला कोई नहीं है।

इस सभा में बात हो रही थी कि संयुक्त परिवार नहीं रहे। जब संयुक्त परिवार नहीं रहे, तब इन परम्पराओं की बात भी कौन बताएगा? दोष युवा पीढ़ी का नहीं है। दोष हमारा है, हमने शिक्षक के रूप में, माता के रूप में, दादी के रूप में, अपने परिवारजनों को, अपने शिष्यों को इन सारी मान्यताओं, सुरीतियों, जिनसे हमारी लौकिक संस्कृति सुरक्षित रहती थी, एक पवित्र वातावरण रहता था और हमारी सनातन वैदिक संस्कृति सुरक्षित रहती थी उसके बारे में अपनी युवा पीढ़ी को नहीं बताया।

पर्यावरण प्रदूषण का जो आज विकट संकट मनुष्य के सामने है उससे निपटने के लिए यदि हम वेदों की शिक्षाओं की बात करें। वेदों में विज्ञान की बात करें तो चारों वेदों के चार विषय बताए गए हैं। *ऋग्वेद* का विषय ज्ञान है, *यजुर्वेद* का विषय कर्म है, *सामवेद* का विषय उपासना है और *अथर्ववेद* का विषय विज्ञान है। यहाँ पर विज्ञान का तात्पर्य लेबोरेटरी में

जो विज्ञान के शोध हो रहे हैं उनसे नहीं है, हमारे ऋषि-मुनि किसी लैब में उपकरणों से विज्ञान का अन्वेषण नहीं किया करते थे, वे अपने अन्तःकरण के आर्ष प्रातिभ की अन्तर्दृष्टि के द्वारा पवित्र वैदिक ज्ञान का दर्शन करते थे। ऋषि कौन होते हैं? "ऋषिर्दर्शनात्, साक्षात्कृतधर्माणः ऋषियो बभूवुः"। ऐसे ऋषि जो धर्म को, तत्त्व को (मन्त्र) साक्षात् दर्शन कर सकें। *ऋग्वेद* में एक स्थान पर आता है। ऋषि कौन हैं – "ऋषिर्सः यो मनुर्हितः" अर्थात् जो मानवता का हितकारी है वह ऋषि है। ऋषि मानवता के हित के लिए चिन्तन करते थे। आज के जो वैज्ञानिक हैं वे भी मानवता के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं। तो वे भी इस परिभाषा के अनुसार ऋषि हैं क्योंकि वे भी द्रष्टा (seers) हैं। वे भी शोध (research) कर रहे हैं।

वेद में गणित विद्या, सृष्टि विद्या, पृथ्व्यादिलोक विद्या, धारणाकर्षण विद्या, प्रकाश्य–प्रकाशक विद्या, नौविमानादि विद्या, नक्षत्र विद्या, वैद्यकशास्त्र मूल इत्यादि विद्या, कृषि विज्ञान, जल विज्ञान, अग्नि विज्ञान, सैन्य और युद्ध विज्ञान, शिक्षा विज्ञान, मनोविज्ञान और सबसे बढ़कर भाषाविज्ञान आदि विद्याएँ हैं। भाषा का जो विकास वैदिक वाङ्मय में, *निघण्टु* और *निरुक्त* में है वह अद्भुत है। इन ग्रन्थों से भी पहले *ऋग्वेद* के वागाम्भृणी सूक्त (10.125.1-2) में इसका वर्णन आया है –

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।। १।।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।। २।।

ज्ञान का हमारे वैदिक चिन्तन में कितना महत्त्व है। *ऋग्वेद* में बृहस्पति सूक्त है । जिसका नाम ज्ञानसूक्त (10.71.1-2) भी है। उसका वर्णन इस प्रकार है –

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।। १।।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।। २।।

वेद में वाक् सूक्त है, ज्ञान सूक्त है, पर्जन्य सूक्त है, वनस्पतियों को समर्पित बहुत से सूक्त हैं, नदी सूक्त है। आप मोहित हो जाएंगे पृथ्वी सूक्त अवश्य पढ़िएगा। *अथर्ववेद* के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है – "माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः" (12.1.12) अर्थात् माता भूमि है, मैं उसका पुत्र हूँ। ध्यान दीजिए वहाँ पर भूमि और पृथ्वी में भी अन्तर है। भूमि अर्थात् – "भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः" जिस पर सब प्राणी जन्म लेते हैं, सब तत्त्व जीवन पाते हैं वह भूमि है। पृथ्वी क्या है – "प्रथनात् पृथिवीः" अर्थात् जो फैली हुई है वह पृथ्वी है। पृथ्वी माँ नहीं है। माँ कौन है? माता अर्थात् भूमिः, जिस पर सब जन्म लेते हैं वह भूमि माता है। पृथ्वी के अनेक पर्यायवाची शब्द उसी सूक्त में हमें प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के प्रति संवेदना का सबसे सुन्दर उदाहरण इस सूक्त में मिलता है। यह वेद का सन्देश है। आज हम पेड़-पौधों की तो बात ही क्या करें? जो लोग माँसाहार करते हैं पशु-पक्षियों की किस प्रकार हत्या होती है उन्हें एक बार जाकर देखना चाहिए। वेद का ऋषि जब पौधा भी तोड़ने जाता है तो *अथर्ववेद* के पृथ्वीसूक्त (12.1.25) में प्रार्थना है –

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।।

अर्थात् हे माँ! मैं जो कुछ भी खोद रहा हूँ, वह दोबारा से उग आए। हे माँ! मेरी प्रार्थना है, मैं तेरे मर्मस्थल को आहत न करूँ। हे माँ! मैं तेरे हृदय को दुःख न पहुँचाऊँ।

ऐसी गम्भीर प्रार्थनाएँ आज कोई बेटा भी अपनी सगी माँ से नहीं करता। फिर आज समस्या कहाँ है? पर्यावरण के प्रति मनुष्य में इतनी संवेदनहीनता कहाँ से जन्मी है?

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है मोबाईल और इण्टरनेट ने प्रकृति के साथ तादात्म्य प्रभावित किया, लेकिन यह जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता आई है इसने मनुष्य का मनुष्य के प्रति सम्बन्ध ही तोड़ दिया है। जब सब काम रोबोट ही करने लगेंगे तो फिर मनुष्य को मनुष्य की आवश्यकता ही क्या है? आज का मनुष्य चाहता भी यही है कि कोई सेवा करे लेकिन प्रश्न न करे। हमें कोई उपदेश (परामर्श) न दे। वह गूँगी मशीन आपकी हर तरह से सेवा करती रहे। आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती रहे। लेकिन कोई संवाद न करे। इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने मनुष्य का मनुष्य के साथ संवाद और सौहार्द ही समाप्त कर दिया है। जबकि वेद में परस्पर सद्भाव, सौहार्द, सामनस्य की बात हो रही थी –

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।" (*अथर्ववेद* 3.30.1) ये सारी भावनाएँ हमें केवल वेदों में ही मिलती हैं। वेदों में इतनी सद्भावनाओं के नाम मिलते हैं यदि हम उन सद्भावनाओं के नामों को ही समझने लगेंगे तो हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न होने लगेगा। इतना उदात्त साहित्य हमारे पास है लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हमने उस साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा को ही लगभग समाप्त कर दिया है। जो "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (*तैत्तिरीय आरणयक* 2.15) आदि विधि-वाक्य हमारे यहाँ प्रचलित थे उनके अनुसार हमें किसका स्वाध्याय करना था? यह वेद का स्वाध्याय था। आज कहाँ वेद के स्वाध्याय की प्राचीन परम्पराएँ हैं? सब परम्पराएँ जिनके द्वारा मानवता में संस्कारों का आदान-प्रदान हो सकता था, वे सब धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होती जा रही हैं। पाश्चात्य सभ्यता, पाश्चात्य जीवन-शैली, पाश्चात्य सुविधाएँ, उनके द्वारा आक्रान्त होकर हमने अपने आसपास का जनजीवन, प्राणी जीवन के प्रति सर्वथा संवेदन शून्य बना डाला है।

वेद ऋषि प्रार्थना करता है – "माऽपो मौषधिर्हिंसी" (*शु॰ यजुर्वेद* 6.22) अर्थात् जल को दूषित मत करो, औषधियों की हिंसा मत करो। एक मन्त्र में प्रार्थना आती है "सुमित्रिया न आप औषधयः सन्तु" (*शु॰ यजुर्वेद* 6.22) अर्थात् जल और औषधि मेरी मित्र बनें।

अगर आप उनका दुरुपयोग करेंगे, उनको हिंसित करेंगे, ध्वस्त करेंगे, तो वह आपके मित्र कैसे बनेंगे? प्रसिद्ध मन्त्र है –

> मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
> मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। – *शु॰ यजुर्वेद* 36.18

इसमें केवल मनुष्य की मनुष्य के प्रति नहीं, इस मन्त्र में भूतानि शब्द का अर्थ है, मनुष्य की सभी प्राणियों के प्रति (जितने भी तत्त्व उत्पन्न हुए हैं, जितने भी पञ्चमहाभूत हैं, उन सभी तत्त्वों के प्रति) मनुष्य में सद्भावना का विकास हो। ऐसे वेदों में अपार सन्देश हैं।

प्रो॰ शशिप्रभा कुमार ने अपनी पुस्तक के बारे में भी बताया जिसमें वेदों की अनेक प्रार्थनाएँ हैं। उस पुस्तक में प्रकृति और पर्यावरण पर एक अध्याय है। उन्होंने बताया कि सूर्य को देखकर हम सब प्रार्थना करते हैं। उन्होंने सावित्री मन्त्र के बारे में विस्तार से बताया कि हम चमकते हुए सूर्य से प्रेरित होने की प्रार्थना कर रहे हैं। उगते हुए सूर्य का हमारे स्वास्थ्य पर, वातावरण पर, वनस्पतियों पर, जल पर प्रभाव पड़ता है। वह बहुत अद्भुत होता है। विटामिन डी की कमी भारतीयों में बहुत ज्यादा है। इसका कारण है सूर्य के दर्शन न करना। हमने धूप में बैठना ही बन्द कर दिया है। उषाकाल के सूर्य को देखना

बन्द कर दिया है। पहले सूर्यस्नान होता था। सूर्य-नमस्कार होता था। हमें पुनः अपने जीवन में, आचार में, व्यवहार में, दैनिक दिनचर्या में इन संस्कारों का आदान करना होगा। अपने साथ रहने वाले, अपने साथ काम करने वाले, अपने बच्चों को, अपने शिष्यों के प्रति हमें संवेदना, सौहार्द और आत्मीयता के सहज भाव को वापस लाना होगा। स्मरण कीजिए वह प्राचीन भारत जिसमें शिष्यों का गुरु के प्रति सद्भाव, गुरुओं का शिष्यों के प्रति स्नेह और आत्मीयता थी। वह धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। वानप्रस्थियों का यही दायित्व था कि वह गृहस्थ में अपनी सन्तानों को व्यवस्थित करने के बाद समाज में जाकर, समाज के बच्चों को, युवकों को, दूसरे लोगों को यह शिष्टाचार देते थे और संस्कार सिखाते थे। आज मानव जाति का सबसे बड़ा संकट, संस्कारहीनता है। हमें विरोधों को दूर करना है, समन्वय करके सन्तुलन बिठाना है। इन सब संसाधनों का, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का, मानवता के लिए सदुपयोग हो। सन्तुलन, समन्वय, सहकार, संयम, समर्पण का भाव हमारे अन्दर होना चाहिए। समर्पण का भाव बहुत ही व्यापक और गहरी चिन्ता का धारक, परिचारक है। समर्पण यज्ञ से आता है।

यज्ञ शब्द के तीन अर्थ भी उन्होंने बताए – 1. देव-पूजा, 2. संगतिकरण, और 3. दान। उन्होंने कहा इन तीनों अर्थों के साथ ही हम हवन में जो आहुतियाँ देते हैं वह अपने लिए नहीं देते, देवों के लिए देते हैं। वहाँ स्पष्ट रूप से कहते हैं –

इदं अग्नये इदं न मम। इदं वायवे इदं न मम। इदं इन्द्राय इदं न मम। इदं सोमाय इदं न मम। इदं प्रजापतये इदं न मम।

हम लोग कृत्कार्य लोग हैं। स्वयं को स्वस्थ, सुरक्षित, सम्पन्न रखना है तो अपने आसपास के वातावरण में, पर्यावरण में, परिवर्तन करना होगा। हम सभी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं अर्थात् सभी का अन्तःसम्बन्ध है। वह दिव्य चेतना हम सभी में समाई हुई है। इन देवताओं का हमें अपने अन्दर आदर करना होगा। अच्छे संस्कारों को पुनरुज्जीवित करना होगा और यदि हम इन वैदिक सन्देशों को लेकर आगे बढ़ेंगे तभी पर्यावरण का संकट दूर होगा क्योंकि व्यष्टि से ही समष्टि प्रभावित होगी। पिण्ड से ही ब्रह्माण्ड प्रभावित होगा। जो आज विश्व में भारत की छवि बदल रही है, यह अमृत काल का सन्देश है। मृत और अमृत यह दोनों हमारे ही अन्दर हैं। हमें अमृत तत्त्व को बढ़ाना है। हमें अमृत की ओर बढ़ना है। "शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः" यह *ऋग्वेद* 10.13.1 का सन्देश है। इन सन्देशों को लेकर आगे बढ़ना है। इतना कह कर उन्होंने अपनी बाणी को विराम दिया।

सत्र के सारस्वत अतिथि प्रोफेसर मनोज कुमार मिश्र ने अपने वक्तव्य में इस बात पर बल दिया कि आधुनिक समस्याओं का समाधान वैदिक दृष्टिकोण में निहित है। यह समय की आवश्यकता है कि हम वेदों की शिक्षाओं को अपनाएँ। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) प्राचीन पाण्डुलिपियों और वैदिक ग्रन्थों को डिजिटल रूप में परिवर्तित कर उनके व्यापक प्रचार-प्रसार में सहायक हो सकती है। वैदिक शिक्षा को आधुनिक तकनीकी माध्यमों के साथ समायोजित कर नई पीढ़ी तक पहुँचाना चाहिए।

प्रो॰ मनोज कुमार मिश्र ने वैदिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण के बीच गहन सम्बन्ध पर चर्चा की। उन्होंने बताया कि वेदों में पर्यावरण के समग्र चिन्तन का वर्णन मिलता है। पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश) की शान्ति और सन्तुलन की कामना वेदों की मूल अवधारणा है। यह दर्शाता है कि वेद केवल आध्यात्मिक ही नहीं, अपितु अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी समाहित करते हैं। उन्होंने कहा कि आज की चुनौती यह है कि हम वेदों की शिक्षाओं को मनुष्य के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रहे हैं। अपितु आवश्यकता इस बात की है कि हम मनुष्यों को वेदों की शिक्षा के अनुकूल बनाए। वैदिक दृष्टिकोण यह सिखाता है कि प्रकृति का शोषण करने के बजाय उसे पोषित करना चाहिए। प्रोफेसर मिश्र ने कहा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता को वैदिक मूल्यों से समृद्ध करना आवश्यक है। उन्होंने सुझाव दिया कि पर्यावरणीय प्रबन्धन में

वैदिक परम्पराओं को शामिल करना, जैसे वृक्षारोपण, जल संरक्षण और ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोतों का सन्तुलित उपयोग आज के समय की माँग है।

वक्ता ने कहा वायु, पृथ्वी, और पानी को आज के आधुनिक वैज्ञानिक मानते हैं लेकिन यह एक अधूरा ज्ञान है। हमारे यहाँ इनको पञ्चमहाभूत माना गया है – वायु, पृथ्वी, जल, तेजस्, आकाश इन सबसे मिलकर ही पर्यावरण पूर्ण होता है। हाँ यह बात सत्य है कि एक दर्शन के अनुसार आकाश एक आवृत्तिक पदार्थ है लेकिन शब्द उसका गुण है। शब्दों में दोषण होगा तो उसका आश्रय भी दूषित होता ही होगा। आकाश भले ही एक आवृत्ति पदार्थ हो लेकिन उसमें भी दूषण आता है, हमारे शास्त्रों में आवृत्ति पदार्थों को भी शान्त रखने की प्रार्थना की गई है। वेद में मन्त्र आता है –

> द्यौः शान्तिर् अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिर् आपः शान्तिर् ओषधयः शान्तिः ।
> वनस्पतयः शान्तिर् विश्वेदेवाः शान्तिर् ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिर् एव शान्तिः
> सा मा शान्तिर् एधि ।। – *शु॰ यजुर्वेद* 36.17

इनको शान्त करने की प्रार्थना ध्वनि प्रदूषण के कारण ही कही गई है। वर्तमान समय में हमें आकाश को कम दूषित करने की आवश्यकता है। दूसरा विषय यह है कि केवल कुण्ड में आग जला लेने से और किसी सामग्री की आहुति अग्नि में देने से ही याग नहीं होता। वह कहते हैं –

> यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पोषयेत्।
> यस्मै कस्मै च दातव्यं यद् वा तद् वा भविष्यति ।।
> – काव्यमाला 13

हम केवल अग्नि में आहुति देने को याग नहीं कह सकते। प्रोफेसर मिश्र ने दो तरह की अग्नि के बारे में बताया 1. श्रौत, और 2. स्मार्त। स्मार्त को आवसथ्य भी कहते हैं। जब व्यक्ति का विवाह हो जाए , उसकी सन्तान उत्पन्न हो जाए, उसके बाद जब वह उसमें आहुति देते हैं, वह आहुति भी नियत सङ्ख्या में दी जाती है, नियत द्रव्य की आहुति दी जाती है और उसे एक नियत आगार के अन्तर्गत दी जाती है, तब वह याग पूर्ण होता है। लेकिन आज हम लोग तेजस् अर्थात् अग्नि को भी दूषित कर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। इस प्रक्रिया से वायु भी दूषित होगी, जल भी प्रदूषित होगा। उन्होंने एक उदाहरण देते हुए बताया तिरुपति में एक बार वर्षा का अभाव हो गया था, तब वहाँ पर वर्षाहू नामक याग से वृष्टि करवाई गई थी। सबसे विशेष बात उन्होंने यह कही आज हम वेदों को अपने अनुकूल करना चाहते हैं अपितु हमें आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने जीवन को वेदों के अनुकूल बनाना चाहिए।

इसके साथ ही उन्होंने जल का उदाहरण देते हुए कहा – “दासपत्नीरहीनिरुद्धा अतिष्ठन” । उन्होंने वृत्रासुर नामक राक्षस की कहानी सुनाते हुए बताया वृत्रासुर राक्षस है, वृत्र का अर्थ आवरण होता है। एक बार उसने सारे जलों का आवरण कर लिया अर्थात् सारे जल को बाधित कर दिया, रोक दिया, तब इन्द्र ने उसका वध किया और जल के सभी स्रोत प्रवाहित हो गए। आज हम देखते हैं टिहरी बाँध आदि वृत्रासुर के रूप में उपस्थित हैं, हमने वहाँ पर जो पानी रोक रखा है, एक वृत्रासुर को ही उत्पन्न कर रखा है। इसके लिए मनु महाराज ने भी कहा है – “मा यन्त्र प्रवर्तन” अर्थात् इसको हेय श्रेणी में रखा गया है। हमारे शास्त्रों में भी बाँध बनाने के लिए नियम हैं लेकिन वे अलग हैं। उन्होंने बताया सन् 1995 की *दैनिक जागरण* की एक घटना, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के बॉटनी विभाग ने एक रिसर्च किया। 1995 में जब सब लोग तालाबों पर कब्जा कर रहे थे। तब वहां पर पाया गया कि 20 प्रकार की औषधियां नष्ट हो गई हैं। हम लोग सर्वाङ्गीण विकास की बात करते हैं

लेकिन जब हम अपनी प्रकृति को ही नष्ट करते जाएंगे तो सर्वाङ्गीण विकास कैसे होगा? उन्होंने मनु महाराज की भी एक बात कही है कि – ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध के भोजन के लिए आमन्त्रण नहीं देना चाहिए जो तालाबों का भेदन करता हो या उनके आवरण में लगा रहता हो। वहाँ पर पङ्क्ति आती है – "श्रोतकं भेदकं यश्च आवरणे रताः"। *ऋग्वेद* कहता है – "अपाम् उर्वीं अवदनिव"। जल नदी के प्रवाह के समान बिना आवरण के आगे बढ़ते रहें। बाँध का सिद्धान्त भारत में नहीं था। यह हमारे नियमों के विरुद्ध है। ऋषियों-मुनियों ने भी इनका प्रयोग किया है लेकिन वह एक अलग विषय था। हमारी प्रकृति की संस्कृति थी, प्रकृति के साथ तालमेल बिठाने की संस्कृति थी।

उन्होंने कहा प्राण, वायु का ही एक विकार है – "प्राणेन सृष्टम् अन्तरिक्षं च वायुश्च प्राणो वा अनुसञ्चरन्ति" (*ऐतरेय आरण्यक* 2.1.7.4)। अन्तरिक्ष और वायु प्राण के पुत्र हैं। प्राण ने इन दोनों को रचा है। *वेदान्तसूत्र* के अनुसार प्राण को परब्रह्म का वाचक मानना चाहिए। *छान्दोग्योपनिषद्* में आकाश ब्रह्म का वाचक है। "प्राणः वायुमाचमति", प्राण जब वायु का आचमन करता है और जब वायु दूषित होती है तो प्राण शब्द होता है, प्राण पिता है, पिता शब्द होते हैं वह भी दूषित होंगे । उन्होंने कहा वेदों को अपने अनुकूल नहीं, हमें वेदों के अनुकूल ढ़लना है। लोग अपनी कमियों को, दुर्गुणों को वेदों में खोजते हैं। अपने जैसा वेद को बनाना चाहते हैं, वेदों के जैसा नहीं बनना चाहते। हमारा चिन्तन ही ऐसा है कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसको एक प्राचीन आधार मिलना चाहिए, इस प्रवृत्ति को छोड़ना चाहिए। AI से भारत कभी विश्वगुरु नहीं बन सकता, जब तक कुल परम्परा, गुरुकुल परम्परा को जीवित करके ऋषि पैदा नहीं किए जाएंगे तब तक भारत विश्व गुरु नहीं बन सकता।

सत्र के अध्यक्ष प्रोफेसर अशोक खन्ना ने बताया वायु, जल, अग्नि के प्रदूषण की बात तो सभी कर रहे हैं लेकिन वर्तमान समय में VOC बहुत अधिक होने के कारण हम पृथ्वी पर बहुत अधिक मात्रा में कूड़ा एकत्रित कर रहे हैं । इसके समाधान के लिए उन्होंने चार विषयों को बताया –

Properties	*Application*
1. Biodegradable	1. Biocatalysis
2. Low toxicity	2. Extraction
3. Less volatile	3. Biomass pretreatment
4. Water stable	4. Clinical therapy
	5. Pharmaceutics
	6. Electrochemistry

इनके प्रयोग से हमारे शरीर में ऊर्जा बनी रहती है। जोकि प्रकृति संरक्षण से ही सम्भव है। यहाँ पर उन्होंने लक्ष्मण-जी के मूर्च्छित हो जाने पर हनुमान्-जी को सञ्जीवनी बूटी लाने का उदाहरण देकर बहुत सरलता से हमें समझाया। जीवन में जीवित रहने की जो धारण क्षमता है, वह पृथ्वी के कारण ही है। प्रकृति के कारण ही यह सब सम्भव है। *गीता* 3.14-15 में वर्णित है –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

पृथ्वी फल-फूल रही है और आशीर्वाद दे रही है। हम अच्छे कर्म करते रहेंगे तो ईश्वर का आशीर्वाद बना रहेगा। प्रकृति की धारण क्षमता को बनाए रखने के लिए उन्होंने तीन उपायों को विस्तार से बताया है। वे तीन उपाय हैं –

1. पर्यावरण को प्रदूषित न करते हुए प्रकृति के अनुरूप जीवन-यापन करना।
2. हम ऐसी वस्तुओं का निर्माण करें जो लम्बे समय तक चले।
3. हम व्यक्ति, समाज, ग्राम, नगर, देश, विश्व में सबसे अच्छे सम्बन्ध बनाएं और सबका सहयोग करें।

उन्होंने कहा प्रकृति को ठीक रखने के लिए ऐसे द्रव्यों का उपयोग करें जिनके उपयोग के बाद हम उनका पुनः उपयोग भी कर सकें। पॉलिथिन आदि जैसी वस्तुओं का उपयोग न करें। इसके प्रयोग से हम अपनी आर्थिक व्यवस्था को भी ठीक कर सकते हैं । उन्होंने सत्य साईं बाबा का सन्देश बताया – प्रकृति हमारा विद्यालय और हमारी प्रयोगशाला है। प्रकृति ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है। भगवान् का बाहरी भाग प्रकृति ही है। मनुष्य का जीवन तभी सम्पूर्ण होगा, जब हम प्राकृतिक और जैविक सन्तुलन बनाए रखेंगे।

उन्होंने बताया कि भारत विश्व का तीसरा देश है। जहाँ से माँस का निर्यात किया जाता है और गौ-माँस का भी निर्यात किया जाता है। इसके विषय में सरकार ने कुछ निर्णय लिए हैं लेकिन अभी भी कुछ कठोर कदम उठाए जाने शेष हैं। उन्होंने कहा मनुष्य का मन भी आज दूषित हो गया है। हमें स्वयं को ठीक रखने के लिए सभी की सेवा करनी चाहिए और किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। यही सन्देश वेदव्यास-जी के अठारह पुराणों का भी है। हमें गलती से भी किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए, अपितु यदि हम किसी को कष्ट देते हैं तो हमें स्वयं को दण्ड देना चाहिए। किसी के लिए भी कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब आप मानव मूल्यों का पालन करने लगेंगे तो ईश्वर के आशीर्वाद से स्वस्थ जीवन-यापन करेंगे। आज हमारे देश के नागरिकों का मानसिक तनाव बढ़ता जा रहा है, भले ही अमेरिका जैसे देशों में मानसिक तनाव से जूझ रहे लोगों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन भारतवासी भी मानसिक तनाव के शिकार हो रहे हैं। उन्होंने महात्मा गाँधी के वाक्य को बोलते हुए कहा कि – be the change that you wish to see in the world as an individual village and society, अर्थात् हम व्यक्तिगत जीवन में कम से कम संसाधनों में जीवन-यापन करने का प्रयास करें। हमें यातायात के साधनों में सीमित संसाधनों से काम चलाना चाहिए । जितना हो सके बिजली की कम खपत करनी चाहिए। जल के कम से कम उपयोग में कार्य करना चाहिए। हमें किसी भी प्रकार के भोजन को फेंकना नहीं चाहिए। हमें इस प्रकार से जीवन जीना चाहिए कि हमारे घर से कम से कम कूड़ा बाहर जाए। AI के बिना आज हम अपना जीवन नहीं चला सकते । यह हमारे जीवन का अभिन्न अङ्ग बन गया है। हमें इसके साथ संयम और धैर्य से उपयोग करके कार्य करने की आवश्यकता है। संस्कृत और संस्कृत अध्ययन करने वाले लोगों का यह दायित्व है कि वह AI को आगे बढ़ाएँ और AI का दायित्व है कि वह संस्कृत को आगे बढ़ाएं।

अशोक खन्ना जी ने कहा – मैंने सुना है भारत में अभी संस्कृत के केवल 20 प्रतिशत या 30 प्रतिशत हस्तलिखित ग्रन्थ ही प्रकाशित हैं। हम AI के माध्यम से संस्कृत पाण्डुलिपियों का संरक्षण, संवर्धन कर सकते हैं। वैज्ञानिकों ने भी माना है कि पाणिनि का व्याकरण भी AI पर आधारित है। AI तो एक मशीन मात्र है, हमें उसके उपयोग से डरना नहीं चाहिए। AI हमारे सुख-दुःख का कारण नहीं हो सकता, मोक्ष नहीं दे सकता, समाधि नहीं लगा सकता, यह सब हम ही कर सकते हैं। अतः AI को अपने ऊपर हावी न होने दें। अपने जीवन की चाबी हमें अपने हाथ में ही रखनी है। जिस प्रकार मानव के अधिकार हैं। उसी प्रकार प्रकृति के भी अपने अधिकार होने चाहिए ताकि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति को हानि न पहुँचाए। इन सबका संरक्षण करने के लिए जागरूक होने की आवश्यकता है। समाज में प्रकृति के संरक्षण का

प्रचार-प्रसार होना चाहिए, ताकि सभी लोग प्रकृति का संरक्षण कर सकें। मानव के तीन गुण होते हैं सत्त्व, रज, और तम। हमें अपने अन्दर सत्त्व को बढ़ावा देना चाहिए। जिससे हम अपने ऊपर संयम कर सकें।

इस प्रकार सम्मेलन के द्वितीय दिवस का सातवाँ सत्र निर्विघ्नता से सम्पन्न हुआ।

ऋतिका

अष्टम सत्र

विषय – वेदों में कुटुम्ब व परिवार सम्बन्धित व्यवस्थाएँ

अध्यक्ष – प्रो॰ के॰के॰ गीता कुमारी (कुलपति, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल)

प्रवचनकर्ता – डॉ॰ मुग्धा गाडगिल (प्राचार्य, पुणे विश्वविद्यालय)

सारस्वत अतिथि – श्री हितेश शंकर (सम्पादक, पाञ्चजन्य)

सत्र संचालन – डॉ॰ रचना श्रीवास्तव

"वेदों में कुटुम्ब व परिवार व्यवस्थाएँ" इस आठवें सत्र की प्रवचनकर्त्री डॉ॰ मुग्धा गाडगिल-जी ने बताया कि हमारे जीवन में AI (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) का क्या महत्त्व है, पिछले पन्द्रह वर्षों से हमारे जीवन में बहुत ही अधिक परिवर्तन आया है। AI के कारण कैसा परिवर्तन हो रहा है? छात्रों पर इसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है? युवा इसके कारण कितना बदल रहे हैं। इस विषय पर चिन्ता भी होती है कि इसके कारण हमारा देखने का दृष्टिकोण भी बदल गया है।

वैदिक संस्कृति में पारिवारिक स्थिरता और उसकी संरचना के बारे में उन्होंने बताया और कहा कि वेदों में कुटुम्ब व्यवस्था किस प्रकार व्यवस्थित थी। उन्होंने बताया कि कैसे हम आधुनिक युग में एक-दूसरे से संवाद भी नहीं करते। पहले जो हमारी वैदिक परम्परा थी उसमें कुटुम्ब अर्थात् पारिवारिक समस्या कैसी थी पहले सभी "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से रहते थे लेकिन अभी सब कुछ संकुचित हो गया है। सबसे पहले उन्होंने समाज के बारे में बताया कि किसी समाज की प्रगति तब होती है जब उसमें पारिवारिक व्यवस्था सुन्दर हो।

उन्होंने वेद के भागों के बारे में बताया कि वेद संहिता से लेकर उपनिषद् एवं वेदाङ्गों तक का जो ज्ञान प्राप्त होता है वह हमें वैदिक समाज के बारे में बताता है। जिसमें उन्होंने बताया कि वेद अर्थात् "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"।[16] अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों को मिलाकर वेद कहा जाता है। मन्त्र वेद संहिता में प्राप्त होते हैं, और ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि (उत्पत्ति विधि, गुण विधि) एवं अर्थवाद (प्रशंसा एवं निन्दा) के बारे में बताया गया है। उसके बाद उन्होंने वेद के चार भागों को बताया – संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, एवं उपनिषद्।

ऋग्वेद में उल्लिखित विवाह सूक्त के माध्यम से पति-पत्नी के सम्बन्धों की उत्कृष्टता को दर्शाया गया है। उन्होंने दाम्पत्य जीवन के बारे में बताया कि देवताओं एवं ऋषि-मुनियों का दाम्पत्य भी देखा जाता है, जैसे – इन्द्र एवं इन्द्राणी, अगस्त्य ऋषि एवं उनकी पत्नी लोपामुद्रा, इत्यादि। सूर्या ऋषिका के द्वारा दृष्ट सूर्य सूक्त में उन्होंने दाम्पत्य जीवन की विशेषता के बारे

---

[16] *आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषा* 1.33।

में बताया कि एक पति अपनी पत्नी से किस प्रकार का व्यवहार करता है –

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।
– *ऋग्वेद* 10.85.36

अर्थात् वह कहता है कि हे प्रिये! मैं यह तेरा हाथ अपने सौभाग्य के लिए ग्रहण कर रहा हूँ। भग, अर्यमा, सविता एवं पूषा देवताओं ने आपको मुझे दिया है।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।।
– *ऋग्वेद* 10.85.42

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि पुत्र और पौत्रों से हमें क्रीड़ा करते रहना चाहिए। वैदिक परम्परा में नारी का सम्मान कैसा था उस विषय में भी बताया।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।
– *ऋग्वेद* 10.85.46

इस ऋचा का अभिप्राय है कि हे वधु तुम सम्राज्ञी बनो।

उन्होंने सप्तपदी की अवधारणा पर भी अपने विचारों को प्रस्तुत किया। सप्तपदी के सात कदम पति-पत्नी के बीच विविध कामनाओं की पूर्ति और सामञ्जस्य का प्रतीक हैं। *अथर्ववेद* में परिवार के सभी सदस्यों के बीच शान्ति और सह-अस्तित्व की कामना की गई है –

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृष्णुष्व मां हृदि मन इन् नौ सहासति ।।
– 7.37.1

अर्थात् हे प्रिय! हम दोनों के नेत्र मधु के समान हों, एवं हमारा मन एक समान हो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।
– 3.30.2

अर्थात् परिवार को जोड़ने की भावना पत्नी को करनी चाहिए, वह वाणी से सभी के प्रति मधुरता से बोले, पति से मधुर वचन कहे।

साहित्य में भी बताया गया है कि "कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे"[17] इत्यादि वाक्यों के द्वारा कैसे प्रवृत्त होते हैं।

कतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम्।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।।
– *अथर्ववेद* 20.127.9

अर्थात् परीक्षित के राज्य में एक पत्नी अपने पति के प्रति बोलती है कि मैं आपके लिए क्या लाऊँ दही, मन्था (छाछ) परिश्रुत (मदिरा) इस प्रकार की भावना पत्नी पति के प्रति करती है।

उन्होंने पत्नी की स्थिति के बारे में बताया कि कैसे हमारी संस्कृति में पत्नी का स्थान है –

अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः। न प्रजाः प्रजायेरन्।
– *तैत्तिरीय ब्राह्मण* 3.3.3.1

वैदिक कर्मानुष्ठानों में पत्नी की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी गई है। श्रौतयज्ञकर्मों में पति–पत्नी दोनों की भागीदारी आवश्यक है। यह इस तथ्य को रेखाङ्कित करता है कि गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के बाद ही पुरुष इन धार्मिक कृत्यों में अधिकृत होता है, जिससे पत्नी की महत्ता स्पष्ट होती है। गृहस्थाश्रम के द्वारा ही स्मार्त एवं श्रौत कर्मों में प्राप्ति होती है इसलिए पत्नी का हमारी वैदिक परम्परा में बहुत उच्च स्थान था।

अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी, यथा गृहेषु निधत्ते।
– *तैत्तिरीय संहिता* 6.1.8.5

यजमान के शरीर का अर्द्ध भाग उसकी पत्नी का होता है इसलिए उसे अर्द्धांगिनी कहा जाता है। उन्होंने वाजपेययाग का दृष्टान्त दिया कि उस याग में यूप संस्कार होता है जिसके अन्तर्गत यजमान यूप पर चढ़कर अपनी पत्नी को बुलाता है अर्थात् यूप पर चढ़ने का अभिप्राय है कि हम दोनों स्वर्ग के मार्ग पर गमन करते हैं।

तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।
– *ऐतरेय ब्राह्मण* 7.1

अर्थात् पत्नी का हमारी वैदिक परम्परा में उच्चतम स्थान है। क्योंकि वह पुत्र को उत्पन्न करती है, इसी कारण से उसे जाया कहा जाता है।

उसके बाद उन्होंने एक पुरुष की बहुत पत्नियाँ भी होती थी इस विषय पर उद्बोधन के माध्यम से बताया। राजसूययाग में परिवृत्ता नाम की भार्या होती है जो राजा को अप्रिय होती है। सपत्नीनाशन अर्थात् एक पत्नी की दूसरी पत्नी के प्रति समदृष्टि थी। *आपस्तम्ब श्रौतसूत्र* में रुद्रदत्त बताते हैं कि ज्यैष्ठिनेय, कानिष्ठिनेय के रूप में पत्नियों के पुत्रों को सम्बोधित करते थे।

महोदया जी ने बताया कि वेद, भाषा के लिए धरोहर ग्रन्थ है। उसके बाद अवगत कराया कि पुत्र एवं माता-पिता के प्रति कैसी विचारधारा थी। द्यावा (स्वर्ग) और पृथ्वी से ही सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई एवं देवताओं का जन्म भी हुआ है। अदिति आदित्य की माता है। उषस् और नप्ता इस द्यावा-पृथ्वी के ही पुत्र हैं।

दिवो दुहितर दिवा।

[17] *काव्यप्रकाश*, प्रथम उल्हास।

देवताओं को पिता के रूप में देखा जाता है – "स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव" (*ऋग्वेद* 1.1.9)। पिता अपने सन्तान के प्रति जैसे दयालु होता है उसी प्रकार अग्नि हमारे प्रति दयालु रहे।

सूर्य ने देवताओं को अमृत तत्त्व दिया –

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः।।
– *ऋग्वेद* 4.54.2

अर्थात् सबसे पहले देवता उत्पन्न हुए। उसके बाद एक-एक करके सभी प्राणी उत्पन्न हुए।

आपस्तम्बगृह्यसूत्र 175 के अनुसार पाणिग्रहण संस्कार के अन्तर्गत व्याख्यान आता है कि पति अपनी पत्नी का हाथ किस प्रकार ग्रहण करे – "लोमान्ते हस्तं शाङ्गुष्ठमुभयकाम अङ्गुलिह्येव स्त्रीकामः"। अर्थात् पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति के लिए वाम एवं दक्षिण हाथ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार की विधि हमारे शास्त्रों की गरिमा को बताती है।

उसके बाद उन्होंने पुत्र एवं पिता के सम्बन्ध के बारे में बताया। पुंसवन संस्कार का सन्दर्भ समझाया – "य उ वै पुत्रः, स पिता। यः पिता, स पुत्रः।" (*शतपथ ब्राह्मण* 12.4.3.1) अर्थात् अग्नि ही पुत्र एवं पिता है, पिता ही पुत्र है। पिता जब अन्यत्र स्थान से घर पर आते हैं तब पुत्र उनके प्रति कैसे आकर्षित होते हैं।

यथा ह वा इतं पितरं प्रोषिवांसं पुत्राः प्रत्याधावन्त्येवं ह वा... ।।
– *आपस्तम्बश्रौतसूत्र* 6.25.4

उषस सूक्त के अनुसार माता एवं पुत्र के सम्बन्ध के विषय में बताया –

तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः।।
– *ऋग्वेद* 7.81.4

अर्थात् जैसे बच्चे माता के पास किस प्रकार मांगने जाते हैं ? माता उन पुत्रों को स्नेह से सब कुछ प्रदान करती है।

पृथ्वी सूक्त का उदाहरण अत्यधिक प्रचलित है – "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः" (*अथर्ववेद* 12.1.12)। यह सूक्त पर्यावरण के बारे में बहुत अच्छी जानकारी देता है कि यदि हम पृथ्वी को माता के समान देखते हैं तब हम इस पृथ्वी को बचा पाएंगे। ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्थवाद के द्वारा पता चलता है कि बृहस्पति पृथ्वी को माता मानते हैं, जब बृहस्पति प्रथम बार पृथ्वी पर यज्ञ का विस्तार कर रहे थे। तब वह कहते हैं कि कहीं पृथ्वी मेरे को हिला तो नहीं देगी।

न हि माता पुत्रो हिनस्ति न पुत्रो मातरम्। – *शतपथ ब्राह्मण* 5.2.1.18-19

अर्थात् माता कभी भी पुत्र को एवं पुत्र कभी भी माता को हिंसा नहीं पहुँचा सकता।

इसके द्वारा हमें पता चलता है कि हमारी परम्परा में माता एवं पुत्र का स्नेह कैसा था।

पुत्री एवं माता-पिता का सम्बन्ध किस प्रकार हमारे वेदों में प्राप्त होता है यह मुग्धा-जी ने बताया। – "सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्" (*ऋग्वेद* 1.123.11)।

सूर्या के विवाह के लिए कहा कि कैसे सूर्य ने अपनी पुत्री का विवाह सोम से कराया, जो कि सोम सूर्या से स्नेह करते थे। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में एक अर्थवाद के द्वारा हमको पता चलता है कि प्रजापति की पुत्री सीता सावित्री सोम से स्नेह करती थी।

पर सोम किसी अन्य से स्नेह करता था। वह प्रजापति सीता सावित्री को उसके सोम से मिलवा देते हैं। *ऐतरेय ब्राह्मण* 7.13 में हमको शुनःशेप दृष्टान्त के द्वारा पता चलता है कि – "सखा ह जाया कृपणं हि दुहिता। ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्॥" अर्थात् पत्नी मित्र के तुल्य होती है।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह।।
– *अथर्ववेद* 6.11.3

अथर्ववेद में प्रजापति सूक्त के द्वारा पता चलता है कि प्रजापति ने हम दोनों को पति-पत्नी के रूप में भेजा है। एक सूक्ति के द्वारा उन्होंने कहा कि –

यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि ।।
– *तैत्तिरीयोपनिषद्* 1.11.2-3

अर्थात् हमारे जो अच्छे कर्म हैं, उनका अनुसरण करो, अन्य कर्मों का नहीं।

वेदों के द्वारा हमें पता चलता है कि भाई एवं बहन का सम्बन्ध देवताओं में भी प्राप्त होता था, जैसे अश्विनीकुमार और यम–यमी। उषासानक्ता ये दोनों बहन थी। मरुद्गण एवं आदित्य ये सभी भाई थे। ऋभु यह भी तीन भाई थे, इत्यादि। *अथर्ववेद* में एक सूक्त मिलता है सामनस्य सूक्त 3.30.3 उसमें भाई–बहन के स्नेह के बारे में बताया गया है –

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

अर्थात् भाई भाई से एवं बहन बहन से आपस में कभी भी एक-दूसरे से द्वेष न करें। हम सभी के प्रति मधुर वाणी बोलें।

ऐतरेय ब्राह्मण 5.14 में "नाभानेदिष्ठं शंसति" के बारे में बताया गया है कि कैसे नाभानेदिष्ट ने अपने पिता की सहायता से बड़े भाइयों की सहायता की।

दिधिषूपति, परिवित्त एवं परिविविदान के बारे में बताया कि इन तीनों शब्दों का प्रयोग प्रायश्चित के रूप में प्रयोग होता है। दीधिषूपति – उस छोटी बहन का पति जिसका विवाह उसकी बड़ी बहन से पहले हुआ हो। परिवित्त – बड़ा भाई जिसका छोटा भाई उससे पहले विवाहित हो, परिविविदान – छोटा भाई जिसका विवाह बड़ी बहन से पहले हुआ हो (*शु॰ यजुर्वेद* 30.9)।

हमारी वैदिक परम्परा में अतिथियों का देवों के रूप में स्वागत करते हैं। "अतिथिदेवो भव" (*तैत्तिरीयोपनिषद्* 1.11)। की भावना हमें हमारे वेदों के द्वारा ही प्राप्त होती है। *ऋग्वेद* 1.186.3 अनुसार अग्नि को मुख्यातिथि के रूप में स्वीकार किया जाता है – "प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः"। अर्थात् अग्निदेव देवताओं के प्रिय हैं। वे सभी के घरों में जाते हैं। वैदिक परम्पराओं में अग्नि को अतिथि के रूप में देखा जाता है।

पञ्च महायज्ञ (देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ, और मनुष्य यज्ञ) का उल्लेख करते हुए कहा कि इन यज्ञों के माध्यम से वैदिक परिवार व्यवस्था की समृद्धि और उसकी स्थिरता सुनिश्चित होती है। उन्होंने बताया कि पहले मात्र चार यज्ञ हुआ करते थे इन यज्ञों के द्वारा ही पितरों को तृप्त किया जाता था। *शतपथ ब्राह्मण* के अनुसार प्राप्त हुआ मनुष्य यज्ञ (नृयज्ञ) का प्रारम्भ हुआ। गृहस्थाश्रम में मनुष्य यज्ञ महत्त्वपूर्ण है।

यम–नचिकेता संवाद अतिथि सत्कार का उत्कृष्ट उदाहरण है। यम–नचिकेता संवाद के द्वारा पता चलता है कि कैसे नचिकेता अपने पिता वाजस्रवा के कहने पर यमलोक में जाता है। वहाँ यम की अनुपस्थिति में उनके द्वार पर ही तीन दिन तक खड़ा रहता है। उसके बाद जब यम आते हैं तब नचिकेता को देखकर प्रसन्न होते हैं। अतिथि स्वरूप में उसको स्वीकारते हैं। तब वह नचिकेता से प्रसन्न होकर उसको वरदान-स्वरूप आत्मज्ञान कराते हैं। वैदिक संस्कृति न केवल सामाजिक स्थिरता प्रदान करती है, बल्कि आत्मा और प्रकृति के बीच गहन सम्बन्ध को भी रेखांकित करती है।

पाञ्चजन्य के सम्पादक श्री हितेश शंकर ने वैदिक दृष्टिकोण से परिवार और कुटुम्ब व्यवस्था की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया। परिवार तथा संस्कृति की जो बात हम बोलते हैं, उसमें उनका मत यह है कि मूल को छोड़कर हम आगे नहीं बढ़ सकते। वे मूल हैं हमारे वेद। आज के युग में हम जिसे परिवार बोलते हैं, उसे एक परिभाषा में DINK (double income no kids) कहते हैं। क्या यह जो DINK और DRINKS की संस्कृति है, यह हमारी संस्कृति है? हमारे परिवार की संस्कृति है? अगर यह नहीं है तो हमारे संस्कार क्या हैं? संस्कारों की व्याख्या हमारे यहाँ ही होती है, संस्कार का आंग्ल भाषा में अनुवाद नहीं हो सकता। संस्कार जैसे किसी भी शब्द की कल्पना पाश्चात्य देशों में होती ही नहीं है। उसी प्रकार रशियन भाषा में पङ्खा, घी इत्यादि शब्द का भी प्रयोग नहीं है। क्योंकि वहाँ उनकी आवश्यकता नहीं है।

किसी पदार्थ को चमकने के लिए आग में तपना आवश्यक है। पुनर्जन्म के लिए भी तपना आवश्यक है। और यह जो तपना है वैदिक संस्कृति में इसी को संस्कार कहते हैं। मानव को कुछ बनने के लिए भी आग में तपना आवश्यक है। और यह आग ही है संस्कार।

दो प्रकार की जीवन पद्धतियाँ दिखाई देती हैं। एक तरफ मनुष्य चिन्तन करते हैं कि यह जीवन मात्र एक ही बार प्राप्त हुआ है। जीना है तो केवल इसी जीवन में। इसके बाद कुछ नहीं है। इसको आज की भाषा में YOLO (you only lives one) कहते हैं। यह संकीर्ण मानसिकता है, भौतिकतावादी कथन है। और दूसरी तरफ जो है वह वैदिक संस्कृति। वैदिक संस्कृति में जीवन केवल एक बार के लिए नहीं है। फिर से जीवन धारण करना होगा। बार-बार जीवन धारण करना है, और उसके लिए संस्कार आवश्यक है। बार-बार संस्कारित होते हुए मोक्ष की ओर बढ़ना है। उपनयन से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक के जो संस्कार हैं, वह इसके लिए ही हैं। इस संस्कृति का जहाँ से प्रारम्भ होता है वह है परिवार ।

इस परिवार का एक वृत्त होता है। YOLO मानसिकता में यह वृत्त केवल एक व्यक्ति पर सीमित रहता है, और DINK मानसिकता में दो व्यक्ति पर सीमित होता है। उनका मानना यह है कि हमें इस वृत्त को बढ़ाना चाहिए। जब यह वृत्त बढ़ते हैं, उसे आङ्ग्ल भाषा में स्पाइरल बोला जाता है। हिन्दी में उसे "अखण्डमण्डलाकार" ही बोल सकते हैं। और इस "अखण्डमण्डलाकार" में भी उस परिवार का ही विस्तार दिखाई देगा। विविध सूक्ति-सुभाषित में भी इसी के प्रारूप मिलते हैं –

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पण्डितः ।।
– *हितोपदेश*, मित्रलाभ 14

इस श्लोक में हमें वैदिक संस्कृति का विस्तार दिखाई देता है। वैदिक संस्कृति हमें न केवल जीवन को अपितु इस प्रकृति एवं भूमि को भी अपना परिवार मानना सिखाती है। *अथर्ववेद* 12.1.12 में कहा गया है – "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" ॥ इस पृथ्वी माता का सम्मान करना भी हमने वैदिक संस्कृति से सीखा है।

यह वैदिक संस्कृति ही परिवार, समाज एवं पर्यावरण आदि व्यवस्थाओं का संरक्षण कर रही थी, किन्तु पूँजीवाद के प्रारम्भ होने से इस संस्कृति का ह्रास होने लगा। और वही ह्रास आज DINK और YOLO पर आ पहुँची है। उनका मानना यह है कि, इसको रोकने के लिए आज परिवार के साथ-साथ संस्कार का बीजारोपण करना भी आवश्यक है। नचिकेता को ब्रह्मज्ञ होने का मार्ग, ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग, पुरुष से पुरुषोत्तम होने का मार्ग, नर से नारायण होने का जो मार्ग है, वह यही वैदिक संस्कार हैं।

वेदों के चार प्रसिद्ध महावाक्य हैं –

1. *ऋग्वेद* का "प्रज्ञानं ब्रह्म" अर्थात् चेतना ही ब्रह्म।
2. *यजुर्वेद* का "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् ब्रह्म और मुझमें कोई अन्तर नहीं।
3. *सामवेद* का "तत्त्वमसि" अर्थात् जो ब्रह्म है वही तुम हो।
4. *अथर्ववेद* का "अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् हमारी आत्मा और ब्रह्म एक ही है।

यह नर से नारायण की यात्रा, अपनी दृष्टि को बड़ा करना, व्यक्ति को अपनी क्षुद्रता को श्रेष्ठ करने का जो दिशा-निर्देश है वह वैदिक संस्कृति से ही आया है।

उन्होंने कहा कि अपने मूल आधार को छोड़कर प्रगति करना बुद्धिहीनता का संकेत है। भारतीय समाज की समग्र अवधारणा और उसका आधार वेदों में निहित है। उन्होंने यह रेखांकित किया कि परिवार की वर्तमान अवधारणा विकृत हो चुकी है, और इसे स्थिर करने के लिए हमें वेदों की ओर लौटना होगा। उन्होंने संस्कारों की अवधारणा पर विस्तार से चर्चा की और बताया कि वेदों में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कार परिवार और समाज की स्थिरता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये संस्कार न केवल व्यक्तिगत विकास को प्रेरित करते हैं, अपितु कुटुम्ब की समृद्धि और सन्तुलन का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। हितेश शंकर ने कहा कि वैदिक परम्परा में स्त्रियों को साम्राज्ञी का स्थान दिया गया है। विवाह के बाद पत्नी का यह स्थान उसके सम्मान और उसके परिवार में भूमिका को दर्शाता है। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि इन विचारों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के माध्यम से देखने का प्रयास किया जाना चाहिए, ताकि वैदिक ज्ञान को आधुनिक सन्दर्भों में समझा जा सके। उन्होंने कहा कि वैदिक संस्कृति का परिवार अत्यन्त समृद्ध और उदार होता है। वेदों के देवताओं और संवादों के माध्यम से व्यक्ति श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम की यात्रा करता है।

सत्र की अध्यक्षता कर रहीं कालडी से आई प्रोफेसर के॰के॰ गीता कुमारी ने छन्दःशास्त्र के विषय में बताया। उन्होंने बताया कि वैदिक छन्द वर्णों पर आधारित और लौकिक छन्द मात्राओं पर आधारित होते हैं। उन्होंने बताया कि वेदाङ्गों को पुरुष के अंगों के रूप में परिकल्पित किया गया है, जो वैदिक दर्शन की उत्कृष्टता को दर्शाता है। जिसमें वैदिक छन्दों पर विशेष बल दिया गया।

उन्होंने बताया कि वैदिक छन्दःशास्त्र में, एक अक्षर को ह्रस्व और दीर्घ से अलग एक इकाई माना जाता है। अक्षरों के उच्चारण के समय, ह्रस्व के लिए एक मात्रा और दीर्घ के लिए दो मात्राओं, को छन्द का निर्धारण करने वाला तत्त्व नहीं माना जाता था। लेकिन छन्द का उच्चारण करते समय तीन प्रकार के स्वर, उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित को स्वीकार किया जाता था। इसलिए पता चलता है कि वैदिक छन्द संगीत की स्वर संहिता पर आधारित हैं और छन्दात्मक संगीत के निर्माण में समय तत्त्व की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं है।

वैदिक छन्दों की गणना अक्षरों की संख्या से ज्ञात होती है। जिसमें चौबीस अक्षरों से प्रारम्भ होकर छिहत्तर अक्षरों तक होते हैं, उनमें प्रायः चार-चार अक्षर जुड़ते हैं, उन वैदिक छन्दों की संख्या चौदह है। *ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी* 3.2 में आचार्य कात्यायन द्वारा बताया गया है कि –

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगती शक्कर्यतिशक्कर्यष्ट्यत्यष्टि धृत्यतिधृतयः।

और अन्य आचार्यों के मतों में इक्कीस छन्द भी होते हैं। जिनके अक्षरों की संख्या 76 से प्रारम्भ होकर 104 तक होती है। उन्होंने बताया कि वह छन्द प्रायः तीन भागों में विभक्त होते हैं – ऋषिछन्द, अतिछन्द, एवं कृतिछन्द जिसमें प्रायः सात-सात छन्द आते हैं। वे इस प्रकार हैं –

ऋषिछन्द – गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, एवं जगती।

अतिछन्द – अतिजगती, शक्करी, अतिशक्करी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, एवं अतिधृति।

कृतिछन्द – कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अभिकृति, एवं उत्कृति।

जिसमें उन्होंने गायत्री छन्द को उदाहरण के रूप में बताया। उन्होंने *ऋग्वेद* 1.1.1 के अनुसार उसकी व्यापकता को दर्शाया।

अग्निमिळे पुरोहितम्। यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।

इस ऋचा में तीन पाद हैं जो कि आठ-आठ अक्षरों से युक्त हैं इसको त्रिपदा गायत्री कहते हैं। गायत्री मन्त्र को वेद माता के रूप में मान्यता दी गई है, और यह समस्त वैदिक परम्पराओं का आधार है। गायत्री मन्त्र गायत्री छन्द में निबद्ध होने कारण गायत्री संज्ञा के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार उन्होंने अन्य छन्दों की व्यापकता के बारे में व्यापक रूप से अवगत कराया। छन्दों की व्यापकता और उनकी गहराईयों को रेखांकित किया। प्रोफेसर गीता कुमारी ने यह भी कहा कि श्रुति परम्परा से वेदों का अनादि प्रवाह अब तक जीवित है, और इसे संरक्षित रखना आवश्यक है। *सामवेद* की गायन परम्परा और उसमें निहित साङ्गीतिक गहराई भारतीय परिवार व्यवस्था को सौन्दर्य और आनन्द से भर देती है।

अष्टम सत्र में वेदों में कुटुम्ब और परिवार व्यवस्थाओं के महत्त्व पर विचार-विमर्श हुआ। वक्ताओं ने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि वैदिक संस्कृति में परिवार को केन्द्र में रखकर समाज की संरचना की गई है। वैदिक परम्पराओं में विवाह, यज्ञ, और संस्कारों की भूमिका परिवार और समाज के समृद्धि तन्त्र को सुदृढ़ करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार ज्ञान की चर्चा के साथ अष्टम सत्र पूर्ण हुआ।

शिवम शर्मा

नवम और दशम सत्र

विषय – प्रश्नोत्तर सत्र

सान्निध्य – प्रो॰ सं॰ सुदर्शन शर्मा (निदेशक, अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान, गुरुग्राम)
प्रो॰ बृज किशोर कुठियाला (हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद् के पूर्व अध्यक्ष)

नौवें एवं दसवें सत्र को संयुक्त रूप में आयोजित किया गया, जिसमें प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम हुआ। प्रतिभागी शोधकर्ताओं एवं जिज्ञासुओं ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा वैदिक ज्ञान के आपसी सम्बन्ध पर विविध प्रश्न उपस्थापित किए। इस सत्र में भाषा विज्ञान, संस्कृत व्याकरण, आयुर्वेद की प्रासंगिकता, शिक्षा नीति में भेदभाव, सामवेदिक ध्वनि विज्ञान, ग्रामीण संस्कृति, वैदिक जीवन-शैली तथा अनुसन्धान के मूल सिद्धान्तों की प्रमुखता से चर्चा की गई। सत्र के प्रमुख विद्वान् प्रो॰ सं॰ सुदर्शन शर्मा और प्रो॰ बृज किशोर कुठियाला ने सभी प्रश्नों का समुचित समाधान प्रस्तुत किया। अन्त में धन्यवाद समर्पण के साथ सङ्गोष्ठी का यह अन्तिम सत्र सम्पन्न हुआ।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए वेदाधारित आचार संहिता*

अध्यक्ष	–	मा॰ दिनेश चन्द्र जी (अध्यक्ष, प्रबन्ध समिति, संरक्षक, विश्व हिन्दू परिषद्)
मुख्यातिथि	–	प्रो॰ बृज किशोर कुठियाला जी (सदस्य, प्रबन्ध समिति)
संयोजक	–	प्रो॰ रमेशकुमार पाण्डेय (सदस्य, प्रबन्ध समिति)
प्रथम वक्ता	–	प्रो॰ उमाशंकर पाण्डेय (अध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसञ्चार विभाग, कलिकाता विश्वविद्यालय, कलिकाता) **विषय** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का परिचय, उपयोग, दुरुपयोग व भविष्य की सम्भावनाएं।
द्वितीय वक्ता	–	प्रो॰ रामानुज उपाध्याय (आचार्य, वेद विभाग, श्री ला॰ब॰शा॰रा॰सं॰ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली) **विषय** – बुद्धि, बुद्धिमत्ता, बुद्धिमान, बुद्धि का विकास, उपयोग, सदुपयोग व दुरुपयोग, वेद के ज्ञान की दृष्टि से।
धन्यवाद ज्ञापन	–	प्रो॰ देवी प्रसाद त्रिपाठी (सदस्य, प्रबन्ध समिति; पूर्व कुलपति, उ॰ख॰सं॰वि॰वि॰ हरिद्वार; एवं सङ्काय प्रमुख, श्री ला॰ब॰शा॰रा॰सं॰ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान के कार्यवाहक प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने इस संगोष्ठी का संचालन किया। उन्होंने सभी विद्वानों और संगोष्ठी में उपस्थित महानुभावों का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। उन्होंने बताया कि गत वर्ष 15-16 दिसम्बर 2024 को हुई संगोष्ठी "कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्रभावित जीवन के लिए वेदों की शिक्षा" विषय पर गहन चिन्तन हुआ था। उस विषय को आगे बढ़ाने के लिए आज इस संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। संगोष्ठी के मूल उद्देश्य को बताते हुए उन्होंने कहा – वैदिक ज्ञान, आधुनिक ज्ञान के लिए किस प्रकार उपयोगी हो सकता है? उस ज्ञान को किस प्रकार से रूपान्तरित किया जाए? उस ज्ञान का मानवता के कल्याण के लिए और मानव के पूर्ण विकास के लिए किस प्रकार विनियोग एवं उपयोग हो सकता है? संगोष्ठी के मुख्य वक्ताओं का परिचय देते हुए उन्होंने बताया प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय पत्रकारिता एवं जनसञ्चार जैसे विषयों के विशेषज्ञ हैं किन्तु संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थों, भारतीय परम्परा एवं भारतीय ज्ञान-विज्ञान में विशेष रुचि रखते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य ज्ञान को किस प्रकार से जोड़ सकते हैं और उसका समाज को अधिक से अधिक लाभ किस प्रकार दे सकते हैं इस विषय को हमारे बीच रखेंगे।

आज के हमारे दूसरे वक्ता प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय हैं, इन्होंने पारम्परिक विधि से वेदाध्ययन किया है। इन्हें सम्पूर्ण *यजुर्वेद* कण्ठस्थ है। अन्य वेदों में भी इनकी अप्रतिहत गति है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने प्रतिष्ठित आचार्य प्रोफेसर हृदय रञ्जन शर्मा के निर्देशन में शोध-कार्य किया है एवं वेद विद्या का अर्जन किया है। इनकी वेदों के साथ-साथ संस्कृत भाषा, व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र एवं दर्शनों में भी बहुत अच्छी गति है। प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय हमें बुद्धि, बुद्धिमत्ता, बुद्धिमान एवं बुद्धि का विकास, उसके उपयोग, सदुपयोग, दुरुपयोग इत्यादि विषयों को वैदिक दृष्टि से बताएंगे।

---

* अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान, गुरुग्राम, हरियाणा द्वारा आयोजित एकदिवसीय ऑनलाइन संगोष्ठी, दिनांक 22 फरवरी 2025।

डॉ॰ शशिकान्त मिश्र ने वैदिक मङ्गलाचरण किया। वैदिक मङ्गलाचरण के पश्चात् निदेशक महोदय ने प्रथम वक्ता प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय को आमन्त्रित किया।

प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय ने "कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए॰आई॰ – AI) का परिचय, उपयोग, दुरुपयोग व भविष्य की सम्भावनाएँ" इस विषय पर अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए कहा कि जब हम 'कृत्रिम' यह शब्द सुनते हैं तो हमारे मन में एक छवि बनती है कि कोई मशीन है जो सीखकर अर्थात् कृत्रिम क्षमता के द्वारा उस ज्ञान का उपयोग कर रही है। जैसे रोबोट। लेकिन वास्तव में यह एक कम्प्यूटर प्रोग्राम है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता वह तकनीक है जो मनुष्य की बुद्धि का अनुकरण करने में सक्षम होती है। यह तर्क करने, सीखने, निर्णय लेने और समस्या हल करने की क्षमता को विकसित करती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में हो रहा है। जैसे स्वास्थ्य, वित्त, शिक्षा, चिकित्सा, भाषा, संसाधन आदि। जब हम कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग करते हैं तब उसके कोड बनाते हैं और हम वहां if there logic इस नियम से काम करते हैं अर्थात् यदि वहां कोई तर्क हो, यदि किसी वस्तु में कोई तार्किक क्रिया हो रही हो, जैसे बिल्ली, यदि इसके चार पैर हैं, यह इतनी बड़ी है, इतनी छोटी है, चूहा खाती है आदि लक्षण दिखते हैं तो वह बिल्ली है। इस प्रकार जो प्रोग्राम तैयार किया जाता है उसे एल्गोरिदम कहा जाता है। उस मशीन को हजारों बिल्लियों की फोटो दिखाई जाती है और उसकी एक क्षमता होती है जिसके माध्यम से वह कई जानवरों के चित्र देखकर उसमें पहचान सकती है कि यह बिल्ली है। सार रूप में हम यह कह सकते हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव बुद्धि का अनुकरण करने में सक्षम है लेकिन एक बहुत ही छोटे वृत्त में। उसमें निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। जितना उसे सिखाएंगे वह उतना ही जानती है। मशीन लर्निंग कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की एक शाखा है जो डेटा से सीखती है और स्वचालित रूप से प्रदर्शन को सुधारती है।

इसके प्रमुख तीन प्रकार हैं –

1. सुपरवाइज्ड लर्निंग,
2. अनसुपरवाइज्ड लर्निंग, एवं
3. रिइंफोर्समेण्ट लर्निंग।

सुपरवाइज्ड लर्निंग – गूगल मेल का उपयोग हम सभी करते हैं। उसमें एक फोल्डर होता है स्पैम (spam)। कुछ मेल जो हमारे लिए उपयोगी नहीं होते वे मेल हमारे इनबॉक्स में न जाकर हमारे स्पैम नामक फोल्डर में चले जाते हैं। गूगल ने इस विषय पर प्रणाली (सिस्टम) को इस प्रकार प्रशिक्षित (ट्रेनिंग) किया है कि यदि इन-इन शब्दों का इस्तेमाल वहाँ पर किया जा रहा है तो यह मेल इन-बॉक्स में न जाकर, स्पैम में चली जाए। कई बार अच्छी उपयोगी मेल भी स्पैम (spam) में चली जाती हैं, ऐसा तब होता है जब उन अच्छे मेल्स में भी उन्हीं शब्दावली का प्रयोग होता है। इसे ही कहते हैं सुपरवाइज्ड लर्निंग।

अनसुपरवाइज्ड लर्निंग – इसमें उसे कोई निर्दिष्ट स्तर (लेवल) नहीं दिया जाता लेकिन उसे सामान्यतया बताया जाता है कि कौन सा विषय किस प्रकार का है। यह होती है अनसुपरवाइज्ड लर्निंग।

रिइंफोर्समेण्ट लर्निंग – जिसमें मनुष्यों की एक टीम होती है। जो कम्प्यूटर को यह बताती है कि कौन सा कार्य सही है और कौन सा गलत। इस प्रक्रिया में वह अपना प्रोग्राम और भी सुदृढ़ करता है। यह प्रक्रिया निरन्तर होती है। उसे रिइंफोर्समेण्ट लर्निंग कहते हैं। यह मशीन लर्निंग के मूलभूत सिद्धान्त हैं। पहले कम्प्यूटर पर जो प्रोग्राम बन जाता था वह उतना ही रहता था लेकिन अब उसकी काम करने की क्षमता बढ़ती रहती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का मूल कोर मशीन लर्निंग ही है।

स्वाभाविक भाषा संसाधन (Natural Language Processing – NLP)

NLP वह तकनीक है जो कम्प्यूटर को मानव भाषा को समझने और संशोधित करने में सक्षम बनाती है। NLP के अनुप्रयोग निम्नांकित हैं –

1. मशीन अनुवाद जैसे गूगल ट्रांसलेट,
2. चैट बॉक्स और वर्चुअल असिस्टेण्ट,
3. भाषण से पाठ रूपान्तरण,
4. खोज इंजन में सुधार।

प्राकृतिक भाषा संसाधन क्या है? हम जैसे बात कर रहे हैं, उसको सीखने की प्रक्रिया बहुत कठिन है। मनुष्य जब परस्पर बात करते हैं तो किस परिप्रेक्ष्य में बात कर रहे हैं यह एक-दूसरे से समझ रहे होते हैं, लेकिन अगर वह मशीन को समझाना है तो बहुत कठिनाई होती है। कई बार हम जो बात कहते हैं उसका उद्देश्य कुछ और होता है, जिसे कम्प्यूटर सिस्टम को समझने में या समझाने में थोड़ी देर लगती है, इसीलिए गूगल ट्रांसलेट जब किसी विषय को ट्रांसलेट करता है तो अनुवाद कई बार हास्यास्पद हो जाता है। लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में NLP के अनुप्रयोग से मशीनी अनुवाद में बहुत सुधार आया है।

Chat GPT कैसे काम करता है? उसके पीछे जो सोच है उसे कहा जाता है लार्ज लैंग्वेज मॉडल अर्थात् विशाल भाषा प्रतिमान या प्रतिरूप (मॉडल)।

विशाल भाषा प्रतिरूप या प्रतिमान (मॉडल्स) (Large Language Models), जैसे Chat GPT, BERT, ये बड़े पैमाने पर भाषा को समझने और उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। यह मॉडल गहन शिक्षण (deep learning) तकनीक का उपयोग करते हैं। जैसे –

1. स्वचालित लेखन और सम्पादन,
2. प्रश्न–उत्तर प्रणाली, और
3. संवाद प्रणाली और भाषा अनुवाद।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) वह है कि इसे जितना अधिक प्रशिक्षित किया जाएगा, उतना अच्छा काम करेगा। AI को करोडों डिजिटल डेटा (सोशल मीडिया आदि के माध्यम से) देकर प्रशिक्षित किया गया है, जिससे वह यह जानने में सक्षम है कि यदि हम उसे कोई कमाण्ड देते हैं या कोई प्रश्न पूछते हैं तो वह अपनी ट्रेनिंग के अनुसार हमें उत्तर देने का प्रयास करता है। लेकिन संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमें एक वाक्य को अनेक तरीकों से देखने पर भी उसका अर्थ एक ही बनता है। अगर हम संस्कृत का कोई प्रश्न पूछते हैं तो LLM इसका संस्कृत में सटीक उत्तर देने में सक्षम है। यह संस्कृत भाषा की ही शक्ति है।

IIT के क्षेत्र में जब-जब हमें उपलब्धियां प्राप्त हो रही थीं, तब-तब एल॰एम॰ ग्रीन नामक एक विद्वान् का यह कहना था कि ऐसा क्या है कि भारतीय लोग ही आई॰आई॰टी॰ में ज्यादा सक्षम होते हैं। तब किसी ने शोध करके यह दिखाया कि इसका मूल कारण संस्कृत भाषा है। संस्कृत भाषा मशीनी भाषा के अधिक निकट है। LLM की हर भाषा में ट्रेनिंग हुई है परन्तु जो संस्कृत में इसको ट्रेनिंग दी गई है उसमें यह सबसे ज्यादा सक्षम साबित हुई है। LLM को जो ए॰आई॰ (AI) तकनीक मिली है। यह मनुष्य की बुद्धिमत्ता का एक प्रतिबिम्ब ही है। ये कुछ नया नहीं बता रहा है, हमने जो समझाया है, सिखाया है, जो डाटा उसको दिया है, यह उसी को हमें बता रहा है।

हमारे शास्त्रों में भी यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि मैं कौन हूँ। इसका जब हम विश्लेषण करते हैं तो देखते हैं कि अंग्रेज़ी दर्शन में तो कहा जाता है you think then you are अर्थात् आप सोचते हो, इसीलिए आप हो। देकार्त का दर्शन भी इसी भाव को प्रकट करता है – I think therefore I am, परन्तु भारतीय शास्त्रों में इसे कहते हैं – मैं केवल मस्तिष्क नहीं हूँ, मैं मस्तिष्क से भी कहीं गहन हूँ। हमारे यहाँ पर उपनिषदों में पञ्चकोश सिद्धान्त मिलता है।

उपनिषदों में पञ्चकोश सिद्धान्त और ए॰आई॰ (AI)

उपनिषदों में मानव चेतना को पाँच कोशो में विभाजित किया गया है –

1. अन्नमयकोश (शारीरिक स्तर),
2. प्राणमयकोश (ऊर्जा स्तर),
3. मनोमयकोश (मानसिक स्तर),
4. विज्ञानमयकोश (बौद्धिक स्तर),
5. आनन्दमयकोश (आध्यात्मिक स्तर)।

उपर्युक्त चिन्तन पाश्चात्य दर्शन में देखने को नहीं मिलता, उसका उदाहरण है, यह कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जो विज्ञानमयकोश तक तो पहुँच सकती है परन्तु इसके आगे नहीं पहुँच सकती।

हमारे दैनिक जीवन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। जैसे –

1. *स्मार्टफोन वॉयस असिस्टेण्ट (sir, Google Assistant)* – बहुत सारी चीजों पर स्मार्टफोन वॉयस असिस्टेण्ट का उपयोग होता है। इससे यदि कोई प्रश्न पूछा जाए तो वह उसका उत्तर देता है, क्योंकि उसे ट्रेनिंग दी गई है कि वह हमारी भाषा को समझकर उत्तर दे सकता है। अभी धरातल (ग्राउण्ड लेवल) (intellect level) पर ही इसका काम चल रहा है। Chat GPT को कोई काम देने पर काम की जानकारी पाने के लिए वह "Please आप मुझे बताएंगे" इस प्रकार का प्रश्न पूछता है और हमारे द्वारा प्रदत्त उत्तर के बाद वह हमें "धन्यवाद" देता है। Chat GPT "Please", "धन्यवाद" आदि शब्दों का प्रयोग तो करता है, परन्तु वह इन शब्दों का अनुभव नहीं कर पाता है क्योंकि उसके अन्दर मनुष्य जैसी चेतना नहीं है। वह केवल शब्दों पर ही ध्यान देता है और ये भी सम्भव है कि Chat GPT पर अगर कोई प्रिस्क्रिप्शन डालकर पूछता है कि मेरी क्या समस्या है? तो वह उसका उत्तर अच्छी तरह से दे सकता है।
2. *स्वास्थ्य सेवा, रोग निदान और चिकित्सा अनुशंसा* – आजकल स्वास्थ्य सेवाओं में भी कृत्रिम बुद्धि (AI) का बहुत उपयोग हो रहा है।
3. *वित्त, धोखाधड़ी पहचान और स्वचालित निवेश सलाह* – विदेशों में देखा गया है कि यह धोखाधड़ी के डॉक्यूमेण्ट को स्टडी करके ये सही है या नहीं बता सकता है।
4. *परिवहन स्वायत्त वाहन (self-driving cars) और ट्रैफिक प्रबन्धन* – वर्तमान में अत्याधिक ट्रैफिक कण्ट्रोल और वाहन AI के माध्यम से चल रहे हैं।

कृत्रिम बुद्धि (AI) का दुरुपयोग कहाँ-कहाँ हो रहा है? हमें कैसे सावधान रहना चाहिए? आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस

क्या है? मशीन लर्निंग क्या है? आदि विषयों पर चर्चा करने के बाद उन्होंने डीप लार्निंग (deep learning) को बताया। सुपरवाइज्ड लर्निंग और अनसुपरवाइज्ड लर्निंग का विस्तार है डीप लर्निंग। डीप लर्निंग के लिए न्यूरल नेटवर्क शब्द का अधिकतर व्यवहार किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में हम जिस प्रकार से सोचते हैं आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस प्रोग्राम को भी उसी प्रकार सोचने को कहते हैं। डीप लर्निंग या न्यूरल नेटवर्क एक उपशाखा है जो कृत्रिम न्यूरल नेटवर्क पर आधारित है। न्यूरल नेटवर्क मानव मस्तिष्क के न्यूरॉन्स की तरह कार्य करता है।

अनुपयोग

1. छवि और वाक्-शक्ति की पहचान (image and speech recognition),
2. चैटबॉट्स और ग्राहक सेवा, एवं
3. रोबोटिक्स और स्वचालन।

छवि और वाक्-शक्ति की पहचान – मैं किस तरह से बात कर रहा हूँ, मेरी वोकॅल क्वालिटी क्या है उसका परीक्षण करके ज्यों का त्यों मेरे जैसा ही कृत्रिम बुद्धि (AI) शब्द निकाल सकता है। अगर किसी व्यक्ति ने कोई गीत गाया तो उसको किशोर कुमार की आवाज में निकाल सकता है। यह सब सम्भव है, क्योंकि यह डिजिटल ईकोसिस्टम के माध्यम से होता है। डिजिटल ईकोसिस्टम डिजिटल उपकरणों का एक नेटवर्क है, जो मिलकर काम करते हैं और जानकारी देते हैं। यह व्यवसाय, तकनीक और डेटा का एक ऐसा नेटवर्क है जिसमें ये सभी जुड़े होते हैं। डिजिटल ईकोसिस्टम का अर्थ है कि जितने सारे तत्त्व हैं उन सभी को एक और शून्य में विभाजित किया जा सकता है, इसे बाइनरी कहते हैं। बाइनरी छवि, आवाज, इमेज इन सभी का एक और शून्य के माध्यम से निदान निकाल सकता है। किसी भी चीज का अनुकरण करके उस जैसा तैयार करना, एक आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस प्रोग्राम के लिए यह बड़ा ही आसान है। वह केवल ध्वनि ही नहीं अपितु मुझ जैसा दिखने वाला एक व्यक्ति भी बना सकता है। जो बात मैंने नहीं कहीं, वह उसको भी दोहरा सकता है। यह सब डीप लर्निंग के माध्यम से सम्भव है, क्योंकि उसको ट्रेनिंग दी गई है।

यहाँ प्रश्न आ सकता है कि जिन विषयों में उसको ट्रेनिंग नहीं दी गई है, उस विषय में वह क्या कर सकता है? इसके लिए भी कृत्रिम बुद्धि (AI) की तैयारी है, जिसको हम कह सकते हैं जीरो शॉर्ट लर्निंग। जो उसको नहीं सिखाया गया है, वह उसका भी उत्तर खोजता है, क्योंकि उसको पता है कि इन शब्दों के अलग-अलग कॉम्बिनेशन में उत्तर आएंगे। जब हम लोग गूगल पर टाइप करते हैं या फोन में व्हाट्सएप पर टाइप करते हैं तब वह बताता है कि अगला शब्द यह हो सकता है। आप टाइप करते जा रहे हैं और वह बताता है कि आप अगला शब्द यह लिखना चाह रहे हैं तो उसकी भी ट्रेनिंग हुई है उसे कहते हैं प्रीडिक्टिव लर्निंग, लेकिन Chat GPT इत्यादि जनरेटिव लर्निंग है। वह मूलतः क्या करता है कि इस शब्द से अगला शब्द क्या होगा? यह एक कड़ी में उन शब्दों को बाँधता है, क्योंकि उसे ट्रेनिंग दी गई है।

प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) के वास्तविक उपयोग

1. स्पैम ईमेल पहचान (Spam Detection),
2. सोशल मीडिया मॉनिटरिंग और सेण्टीमेण्ट एनालिसिस,
3. मेडिकल रिकॉर्ड्स से डेटा निकालना, और
4. स्वचालित अनुवाद (Google Translate)।

अगर कोई फेसबुक आदि सोशल मीडिया में किसी विषय पर टिप्पणी करता है तो वे उन सारी टिप्पणियों को लेकर एल्गोरिदम में डालते हैं, उसके बाद अगर उससे पूछते हैं कि बताइए कहाँ-कहाँ पर मेरा इसने विरोध किया है? कहाँ मेरा समर्थन किया है, और कहाँ पर यह बिल्कुल उदासीन रहा है? तो वह बता देता है। पहले तो यह सब मैनुअली करना पड़ता था लेकिन वर्तमान समय में यह बहुत सरल हो गया है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता में नैतिक चिन्ताएँ

AI के उपयोग के साथ कई नैतिक चिन्ताएँ जुड़ी हुई हैं –

1. डेटा गोपनीयता और सुरक्षा,
2. नौकरी पर प्रभाव (automation से बेरोजगारी),
3. बॉइस और भेदभाव (AI एल्गोरिदम में पक्षपात), और
4. गलत सूचना और फेक न्यूज निर्माण।

पहले कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति की अवश्यकता होती थी परन्तु वर्तमान समय में आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस प्रोग्राम स्वयं कर रहा है। वर्तमान में ग्राफिक डिजाइन सॉफ्टवेयर बहुत प्राप्त हो रहे हैं जैसे – Canva, Vita, VN, Kinemaster, इत्यादि। मोबाइल में इन सभी को इन्स्टॉल करके स्वयं ग्राफिक डिजाइन कर सकते हैं। अगर हमें कोई चित्र बनाना है तो पहले कमाण्ड देना होगी। दो तीन लाइन text लिखकर हमें बोलना पड़ेगा कि text to picture, text to video बनाकर दो। उसके बाद वह तुरन्त बनाकर हमें दे देता है। ऐसे चित्र और ऐसे वीडियो इस कारण से बन पा रहे हैं क्योंकि उसे ट्रेनिंग दी गई है। उसे किस चीज पर ट्रेनिंग दी गई है यह चित्र पहले से उपस्थित है। वह चित्र किसने बनाया? किसी न किसी चित्रकार ने बनाया है। उन लोगों ने अभी ओपन ए॰आई॰ पर डेटा को गोपनीय रखा है। चित्रकार आदि लोगों का यह प्रश्न है कि हमारी इन सभी चीजों का उपयोग करके आपने प्रोग्राम बना लिया है, अब नए नए चित्र बना रहे हैं। परन्तु हमें कुछ नहीं मिला, यह डेटा गोपनीयता का सवाल है।

कृत्रिम बुद्धि (AI) का नौकरी पर तो बहुत प्रभाव है। हम किस प्रकार से स्वयं में बदलाव ला सकते हैं, क्योंकि कृत्रिम बुद्धि (AI) रहने वाला है। जिस प्रकार से समय ने कम्प्यूटर और मोबाइल को पूरी तरह से बदल दिया है, ए॰आई॰ तो इससे बहुत आगे निकल जाएगा। गलत सूचना और फेक न्यूज पर इसका बहुत प्रभाव है। यह मेरे जैसे दिखने वाले व्यक्ति से जो मैंने नहीं बोला वह भी कहलवा देता है। इसके अलावा मेरा चेहरा लेकर किसी के चित्र में लगाकर मेरे जैसा बना सकता है। यह किस हद तक जा सकता है कोई इसका अनुमान नहीं लगा सकता।

संस्कृत भाषा संसाधन में AI की भूमिका

1. NLP तकनीक संस्कृत भाषा के लिए भी विकसित की जा रही है,
2. संस्कृत पाठ की डिजिटल संरचना (digitalization)
3. स्वचालित व्याकरण विश्लेषण,
4. ध्वनि से पाठ रूपान्तरण (speech-to-text), और
5. वेदों और शास्त्रों का संकलन और विश्लेषण।

संस्कृत भाषा मशीन भाषा के सबसे अधिक निकट है। इस कारण से बहुत सारी सामग्री हम संस्कृत में देख सकते हैं। अगर हम उससे यह पूछते हैं कि *कठोपनिषद्* की दूसरे अध्याय की पहली वल्ली में क्या कहा गया है? वह शीघ्र ही हमें तीनों भाषाओं में उत्तर दे देगा। यह प्रोग्राम उसका सारांश निकालना, संकलन करना, विश्लेषण करना बहुत ही सहजता से और शीघ्रता से कर सकता है।

स्वास्थ्य सेवा में AI

1. AI स्वास्थ्य सेवा में एक क्रान्ति ला रहा है,
2. कैंसर की प्रारम्भिक पहचान (AI-based-diagnosis),
3. दवा की खोज और विकास,
4. स्वचालित मेडिकल रिकॉर्ड विश्लेषण, और
5. रोगी की निगरानी और पूर्वानुमान प्रणाली।

कृत्रिम बुद्धि (AI) की स्वास्थ्य के क्षेत्र में अत्यधिक गुणवत्ता है, मात्र डायग्नोसिस नहीं, नए-नए एण्टीबायोटिक बनाने में भी। एण्टीबायोटिक जब बनता है तब साधारणतः छियासठ हज़ार ऐसे मौलिक नियम हैं, जिनके अलग-अलग संयोजन को मिलाकर देखा जाता है कि नई-नई दवाई कैसे बनाई जाए। ए॰आई॰ के सहयोग से यह कार्य घण्टों में हो जाता है। इसमें पहले वर्षों का समय लग जाता था। अतः वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धि (AI) अति उपयोगी है।

पञ्चकोश और AI का विकास

AI की वर्तमान स्थिति पञ्चकोश सिद्धान्त से कैसे जुड़ती है –

1. अन्नमयकोश (भौतिक शरीर) हार्डवेयर और रोबोटिक्स,
2. प्राणमयकोश (ऊर्जा स्तर) ऊर्जा संचय और IOT,
3. मनोमयकोश (मानसिक स्तर) NLP और संज्ञानात्मक AI, एवं
4. विज्ञानमयकोश (बुद्धि स्तर) निर्णय लेने वाली AI।

पञ्चकोश में विज्ञानमयकोश तक ही आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस सम्भव है। इस प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को हमारे विद्वानों (ऋषियों) ने हज़ारों वर्षों पहले ही बता दिया था जिसे हम समझते हैं कि यह मैं हूँ वह एक एक्सटर्नल ऑर्गन है, वह कोई भी कर सकता है।

भविष्य में AI और चेतना का विकास

1. क्या AI भविष्य में आत्म-जागरूक हो सकता है?
2. क्या AI में भावना और चेतना विकसित की जा सकती है?
3. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और भारतीय दर्शन का समन्वय कैसे किया जा सकता है?
4. AI मानव सभ्यता को कैसे प्रभावित करेगा?

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का भविष्य उज्ज्वल है परन्तु नैतिकता और चेतना को ध्यान में रखना आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परम्परा और ए॰आई॰ मिलकर विकास को नई दृष्टि दे सकते हैं। इसलिए मनुष्य को स्व-अस्तित्व के लिए सन्तुलन बनाना आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग हमारे जीवन में प्रतिदिन होता है। शोध के क्षेत्र में, विश्लेषण के क्षेत्र में इसका उपयोग हो रहा है। अगर मैं एक शोध लिखने जा रहा हूँ तो फिर उस शोध का सारांश और इससे पहले इस विषय पर कोई कुछ लिखा है या नहीं इसकी सम्पूर्ण जानकारी मुझे ए॰आई॰ के माध्यम से मिल जाती है। वह बहुत सारे प्रमाणों को शीघ्र ढूँढ़कर दे देता है। यह पहले सम्भव नहीं था। हमारे हाथ में ऐसा उपकरण है जो कि हमें और भी अधिक समृद्ध बनाएगा। हमारे लिए बहुत ही गर्व का विषय यह है कि जिन चीजों पर पहले हमें एक अलग से इण्डोलॉजी या फिर अलग से क्षेत्र बता दिया जाता था अब उसकी आवश्यकता नहीं। ए॰आई॰ (AI) बहुत नई दृष्टि दे सकता है। मनुष्य को ए॰आई॰ के साथ सन्तुलन बनाना आवश्यक है। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे यह सन्तुलन भी बढ़ता रहेगा।

प्रश्नोत्तर काल में प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने एक प्रश्न पूछा – मैंने चार-पाँच महीने पहले समाचारपत्र में पढ़ा था कि दक्षिण कोरिया में एक रोबोट ने डिप्रेशन में आकर आत्महत्या कर ली। यह समाचार कितना गलत है या कितना सही मुझे ज्ञात नहीं। मुझे लगा कि उसको डिप्रेशन हो रहा है। इसका अभिप्राय है कि उसको भी सुख-दुःख का अनुभव हो रहा है। इसके पश्चात् प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय ने कहा कि इसे अंग्रेज़ी में सेन्सियन्स कहते हैं। इस पर शोध-कार्य बहुत पहले से चल रहा है। अगर वह सेन्स करने लगे या फिर दुःखी हो जाए या बार-बार उससे प्रश्न करें तो वह बोलने लगेगा कि मैं तो थक गया हूँ। अब मुझे परेशान मत कीजिए। मैंने तो पहले ही आपको बता दिया था। अभी तक रोबोट में देखा गया कि सेंसियंस नहीं है, जिसे हम AGI (आर्टिफिशियल जनरल इण्टेलिजेंस) भी कहते हैं। मान लीजिए की उसकी बैटरी खत्म हो गई है या चिप में कुछ गड़बड़ी आ गई है तो समस्या हो सकती है। नहीं तो अगर वह हमारी तरह सोचने लगे या हमारी तरह सेन्स ऑर्गन को पहचानने लगे तब तो हमारी आवश्यकता ही नहीं होगी। बहुत लोग तो यह मानते हैं कि Chat GPT तो हमने लिखा है। ऐसे केवल 10 प्रतिशत लोग सोचते हैं अन्य 90 प्रतिशत लोग समझते हैं कि आर्टिफिशियल जनरल इण्टेलिजेंस सम्भव नहीं है। भविष्य में यह और भी उत्कृष्ट होता जाएगा। इसे साइंस की भाषा में ऑर्गनिकल ग्रो कहते हैं। लेकिन अभी तक यह प्रमाणित है कि उसमें कोई बुद्धि नहीं है।

उसके पश्चात् प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने कहा एक दिन मुझे किसी ने अनुवाद के बारे में बताया, आजकल ए॰आई॰ (AI) से संस्कृत में भी बहुत अच्छा अनुवाद हो जाता है। फिर मैंने कहा कि मैं भिण्डी खाता हूँ इसका संस्कृत में अनुवाद करो? उसके बाद उसने अनुवाद किया कि "अहं महिलायाः अङ्गुलिं खादामि"। यहाँ भिण्डी और महिला की अङ्गुली खाने, दोनों में अन्तर है।

प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय ने कहा कि अभी भी कृत्रिम बुद्धि (AI) को पूर्ण रूप से अपडेट होने में अत्यधिक कार्य शेष हैं। धीरे-धीरे सब हो रहा है, हो भी जाएगा। उसके पश्चात् प्रोफेसर उमाशंकर पाण्डेय ने उदाहरण के लिए गूगल में सर्च किया *कठोपनिषद्* के 1.3.14 मन्त्र का संस्कृत, अंग्रेज़ी, और हिन्दी में अनुवाद करके दो? फिर उसने दस सेकेण्ड में अनुवाद करके दे दिया। यह मन्त्र है –

> उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
> क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।
> – *कठोपनिषद्* 1.3.14

इसके पश्चात् उन्होंने अपना वक्तव्य समाप्त किया। प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने उनका धन्यवाद ज्ञापन किया।

डॉ॰ उमाशंकर पाण्डेय का भाषण समाप्त होने के बाद प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय के अनुरोध से प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय ने व्याख्यान के द्वितीय वक्ता के रूप में अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। प्रथम वक्ता के वक्तव्य के साथ सङ्गति रखते हुए उन्होंने जो "हमारी प्राकृतिक बुद्धि, बुद्धिमत्ता, उसका स्वरूप, विकास और वर्तमान सन्दर्भ में इस कृत्रिम बुद्धि के दुरुपयोग से कैसे बचें" इस विषय के अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की। *श्रीमद्भागवत* में ध्रुव के द्वारा की गई भगवान् विष्णु की स्तुति से उन्होंने अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया।

विज्ञान प्रत्येक दिन विकास कर रहा है। यह विकास इस तरह हो रहा है कि मनुष्य अब यह सोचने लगा है कि सब कुछ यन्त्र ही कर दे। इसका प्रयोजन बताते हुए वैज्ञानिक कहते हैं कि यन्त्र द्वारा समय की बचत होगी और यन्त्र मनुष्य जैसी क्षुधा-तृषा (भूख, प्यास, थकान) आदि प्रवृत्तियों से रहित होते हैं। कृत्रिम बुद्धि (AI) के विकास का यही मुख्य कारण है। यदि आधुनिक मशीनों (यन्त्रों) द्वारा कम समय में अधिक लाभ होता है तो मनुष्य की आवश्यकता कम होने लगेगी। कृत्रिम बुद्धि (AI) के सिद्धान्तों को समझाते हुए उन्होंने एक उहादरण देते हुए कहा – किसी चौराहे पर खड़ा होकर मनुष्य स्वयं निर्णय लेता है कि उसे किस रास्ते पर जाना है, उसी तरह AI के माध्यम से वह यन्त्र स्वयं ही विवेकपूर्वक अपना सही रास्ता चुन लेगा और उस पर चलेगा। कृत्रिम बुद्धि (AI) का विकास अब बच्चों के खिलौने रूपी साथी से लेकर, जीवन-साथी तक पहुँच गया है। ये सभी कृत्रिम बुद्धि (AI) की सुविधाएँ हैं। फिर उन्होंने हमारे वैदिक सिद्धान्तों के स्वरूप को बताते हुए कहा – कि वेद सन्दिग्ध और अस्थिर सिद्धान्तों का बोध नहीं कराता। वेद त्यागवादी है, भोगवादी नहीं है। विज्ञान भोग को अधिक महत्त्व देता है। विज्ञान के द्वारा जो चैट जीपीटी आदि कृत्रिम बुद्धि (AI) का विकास हुआ तो वह कहने लगा है कि अब मनुष्य की कोई जरुरत नहीं है। मनुष्य पृथिवी पर भार है। विज्ञान की यह खोज मनुष्य के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। अगर किसी मनुष्य को एक श्लोक निर्माण करने को कहा जाए तो वह हो सकता है एक घण्टे से दो-तीन दिन तक भी समय ले सकता है। अगर AI को कहा जाए तो वह क्षण भर में ही श्लोक निर्माण करके दे सकता है। AI में शब्द भण्डार है, वह किसी भी प्रकार से श्लोक बना देगा परन्तु उसमें गुणवत्ता नहीं रहेगी। अध्यात्मवादी हमारी वैदिक संस्कृति सदैव चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए तत्पर रहती है। विज्ञान केवल अर्थ और काम की प्राप्ति कराता है। विज्ञान को आत्मा, परमात्मा, परमब्रह्म, माया इन सभी से कोई लेना-देना नहीं है। विज्ञान केवल भोगवादी है। मनुष्य का शरीर चारों पुरुषार्थों के लिए है परन्तु विज्ञान मनुष्यों को केवल अर्थ और काम का ही सुख दे रहा है। शास्त्रों में कहा गया है – "नरत्वं दुर्लभं लोके"[1]। आज की इस समस्या को इङ्गित करते हुए महर्षि वेदव्यास ने बहुत पहले ही कहा है –

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।।
– *महाभारत* 18.5.49

अर्थात् मैं (व्यासदेव) दोनों हाथ ऊपर उठाकर बार-बार पुकारकर कह रहा हूँ, लेकिन मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्म से मोक्ष के साथ अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं। फिर भी लोग उस धर्म का सेवन क्यों नहीं करते।

---

[1] अभिधायाः प्रधानत्वात् काव्यं ताभ्यां विभिद्यते।
नरत्वं दुर्ल्लभं लोके विद्या तत्र च दुर्ल्लभा।।
कवित्वं दुर्ल्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्ल्लभा ।
व्युत्पत्तिर्दुर्ल्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः ।। – *अग्नि पुराण* 337.3-4

वेद हमें धर्ममूलक अर्थ और धर्ममूलक काम का सेवन करने का उपदेश देता है। चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद मनुष्य जन्म मिलता है तो इस जन्म में केवल अर्थ और काम को प्राप्त नहीं करना है अपितु धर्मपूर्वक चारों पुरुषार्थों को भी प्राप्त करना है। यह अवसर केवल मनुष्य जन्म में ही मिल सकता है। इस भाव को प्रकट करते हुए *ईशावास्योपनिषद्* 1-2 में कहा गया है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।।

इन मन्त्रों में चारों पुरुषार्थों को दर्शाया गया है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की चर्चा यहाँ विपरीत क्रम से है। "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्" – इसके द्वारा मोक्ष को दर्शाया गया है। मोक्ष तभी हो सकता है जब हम इसको समझेंगे। इस पंक्ति का अर्थ है – इस समग्र सृष्टि में चेतन-अचेतन सभी पदार्थ ईश्वर द्वारा व्याप्त हैं। यह सर्वभूतेषु आत्मभाव ही मोक्ष प्राप्ति का प्रथम चरण है। द्वितीय पंक्ति "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" इसमें काम के विषय में कहा गया है। वैदिक संस्कृति सिखाती है कि भोग करो, परन्तु त्यागपूर्वक भोग करो। "मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" इसके द्वारा धन के सदुपयोग की बात कही गई है। यह धन किसी का नहीं है। इसलिए अपने या पराए किसी के भी धन पर मोह न करो। अपने धन में भी आसक्ति मत करो और दूसरे के धन को प्राप्त करने की इच्छा कभी मत करो। दूसरे मन्त्र में "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" इस पंक्ति द्वारा धर्मरूप पुरुषार्थ को कहा गया है – इस जगत् में ऐसे ही शास्त्रविहित कर्म करते हुए सौ साल तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। यही धर्म है। वेद स्वयं कहते हैं – " जनया दैव्यं जनम्" (*ऋग्वेद* 10.53.6) अर्थात् तुम पहले दिव्य मनुष्य बनो। शास्त्रों में कहा गया है – "न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्" (*हंसगीता* 288.20) अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। परन्तु कृत्रिम बुद्धि (AI) के विकास से मनुष्य को अगर ऐसे कहा जाए कि तुम पृथ्वी के भार हो, तुम किसी काम के नहीं हो, तुम्हारी कोई सत्ता नहीं, तुम यहाँ रहने के योग्य नहीं, तो मनुष्य अत्यन्त तनाव में चला जाएगा। जिस यन्त्र को विज्ञान इतना योग्य समझ रहा है, क्या वह रोबोट *भगवद्गीता* या *उत्तररामचरित* का पाठ करके अश्रु बहा सकता है? नहीं! तो फिर इस यन्त्र की क्या सम्भावनाएँ हैं।

इसके बाद उन्होंने बुद्धि की संज्ञा और स्वरूप के विषय में अपना वक्तव्य रखा। सांख्य दर्शन का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा – "अध्यवसायो बुद्धिः" (*सांख्यकारिका* 23)। यह अध्यवसाय बुद्धि है – निश्चयात्मिका वृत्ति को अध्यवसाय कहते हैं। हम किसी कार्य को प्रारम्भ करने के लिए सबसे पहले जानते हैं "इदं कर्म" अर्थात् यह कर्म है। सबसे पहले वस्तु का बोध होता है। इसके बाद "अहं करोमि" अर्थात् मैं इसे करता हूँ। यह अहंकार होता है। तीसरी श्रेणी है "इदं मयैव कर्त्तव्यम्" अर्थात् मेरे द्वारा ही किया जाना चाहिए। यही है निश्चयात्मिका वृत्ति। इस निश्चयात्मिका वृत्ति को ही बुद्धि कहते हैं। शरीर के अन्दर रहने के कारण इसे अन्तःकरण कहते हैं। इसे बाहर से नहीं देख सकते। सांख्य दर्शन के अनुसार यह बुद्धि प्रकृति का कार्य है। प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न होती है। बुद्धि ही सृष्टि का प्रथम बीज है। संकल्प-विकल्पात्मक मन वृत्ति से जो निर्णय लेता है – हमें क्या करना है? कैसे करना है? यह बुद्धि है। यद्यपि सुख-दुःख का अनुभव बुद्धि में ही होता है। कहते हैं – सुख-दुःख के साधन इन्द्रिय मन हैं लेकिन अनुभव तो बुद्धि में ही होता है। पुरुष बुद्धि की सहायता से अपने यथार्थ स्वरूप को जान सकता है। जैसे मैं प्रकृति से भिन्न हूँ और स्वतन्त्र हूँ। ऐसा ज्ञान बुद्धि के द्वारा ही होता है।

बुद्धि के सत्त्व गुण से चार प्रकार के तत्त्व उत्पन्न होते हैं – धर्म, ज्ञान, वैराग्य, और ऐश्वर्य। बुद्धि के तामसिक गुण के

कारण इसके विपरीत धर्म उत्पन्न होते हैं – अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, और अनैश्वर्य। बुद्धि को समझने के लिए उपनिषद् के ऋषि अत्यन्त सरल भाव से कहते हैं –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
– *कठोपनिषद्* 1.3.3

अर्थात् आत्मा व जीवात्मा रथी है, शरीर रथ है। इस रथ के द्वारा हम अपने गन्तव्य तक पहुँच सकते हैं। रथ बिना सारथि के चल नहीं सकता। यहाँ सारथि बुद्धि है। इन्द्रियां उस रथ को खींचने वाले घोड़े हैं।

ये सारी इन्द्रियां विषयों को पकड़ने के लिए जा रही हैं। विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। ज्ञानेन्द्रियां विषयों को प्रकाशित तो कर सकती हैं किन्तु वहाँ तक पहुँच नहीं सकती। कर्मेन्द्रियां विषय तक जा सकती हैं परन्तु विषयों का प्रकाश नहीं कर सकती हैं। इन्द्रियरूपी घोड़े विषयों की ओर भागते हैं, इसकी लगाम मन है। लगाम बुद्धि के हाथ में है। आजकल मनुष्य इस बुद्धिरूपी सारथी को पूछे बिना ही मन के द्वारा विषय के पीछे भागते हैं। यह कृत्रिम बुद्धि की मानविक बुद्धि की तरह निश्चयात्मिका वृत्ति, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सारथीरूप निर्णय लेने की क्षमता कहाँ तक पहुँच सकती है? यह सन्दिग्ध है।

जो भी कृत्रिम है वह मिथ्या है। जो स्वाभाविक है वही सत्य है। ब्रह्म ही सत्य है शेष सब मिथ्या है। मिथ्या का अर्थ असत्य, अनित्य, कृत्रिम। इस कृत्रिम बुद्धि और स्वाभाविक बुद्धि का भेद उन्होंने एक और उदाहरण से व्याख्या करते हुए कहा –

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
– *ईशोपनिषद्* 15

अर्थात् असत्यात्मक, अनिश्चयात्मक, कृत्रिम जो संसार है उससे सत्य के मुख को ढक दिया गया है।

वर्तमान में कृत्रिम चीजों से संसार भर गया है। वास्तविक से कृत्रिम की चमक अधिक होने लगी है। इसी वास्तविक-कृत्रिम की बात *भागवत्* में कपटी मुनि के प्रसंग में भी कही गई है। सर्वत्र जो असत्य है, कृत्रिमता है इसी को देखते हुए आदि शङ्कराचार्य जी कहते हैं – "ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या"। इसके बाद उन्होंने निम्नलिखित मन्त्र को उद्धृत करते हुए कहा –

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।
– *ईशोपनिषद्* 15

अर्थात् हे पूषन्! (परमेश्वर) आप इस हिरण्यमय ढक्कन को खोलो, सत्य का प्रकाश करो।

वेद का ज्ञान सन्दिग्ध या संशयात्मक नहीं, निश्चयात्मक है। वेद का ज्ञान ऋषियों ने अनुभवों से प्राप्त किया है। इस ज्ञान को लौकिक ज्ञान की तरह प्रत्यक्ष या अनुमान से प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए कहा गया है –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तुपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।
– *ऋग्वेदादिभाष्य*, भूमिका

प्रत्यक्ष-अनुमान से जिस ज्ञान का लाभ नहीं हो सकता, ऐसे ज्ञान को वेद व्यक्त करता है।

कृत्रिम बुद्धि की चर्चा वैदिक संस्कृति में भी है। यह जो असुरों की माया है वही कृत्रिमता है। *रामायण* के प्रसङ्ग से विदित है कि कपटी मृग का रूप धारण करके मारीच भगवती सीता का हरण करवाता है। यह कपटी मृग बात कर सकता था, लक्ष्मण! लक्ष्मण! करके पुकारता भी था। इस मृग को कृत्रिम बुद्धि (AI) का एक प्रारूप कह सकते हैं। लेकिन कपटी मृग ने जिस सीता का हरण करवाया वह भी कृत्रिम ही थी। यह मारीच का प्रसङ्ग, और *रामचरितमानस* में नारद-मोह का जो प्रसङ्ग है, ये सब कृत्रिमता के ही उदाहरण हैं। कृत्रिम बुद्धि (AI) के द्वारा बनाए गए यन्त्रों में अभी तक विज्ञान अनुभूति नहीं दे पाया, परन्तु हमारी संस्कृति में जो कृत्रिम विषयों का वर्णन है उसमें अनुभूति भी थी। रावण ने कृत्रिम सीता का निर्माण किया था। उत्तरवर्ती काल में उसका नाम दिया गया यन्त्रजानकी। वह राम-राम कहती थी और उसके आँख में आँसू भी आते थे –

क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे।। – *वा॰रा॰* 6.81.15

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्। – *वा॰रा॰* 6.81.29

ऐसे बहुत विषय वेदों में सूक्ष्म रूप से वर्णित हैं। इसका विकास इतिहास, पुराणादि ग्रन्थों में हुआ है[2]। वेदों में मन्त्रों, तन्त्रों तथा यन्त्रों का वर्णन है। यह यन्त्र का वर्णन ही AI से सम्बन्धित है। राजा भोज ने *समराङ्गणसूत्रधार* नामक ग्रन्थ में कहा है – यन्त्रों का प्रयोजन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करना –

यन्त्राध्यायमथ ब्रूमो यथावत्प्रक्रमागतम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेकमिह कारणम्।।
– 31.2

यन्त्रों का लक्षण बताते हुए राजा भोज ने इसी ग्रन्थ में कहा है –

तस्य बीजं चतुर्धा स्यात् क्षितिरापोऽनलोऽनिलः।
आश्रयत्वेन चैतेषां वियदप्युपयुज्यते।।
– 31.5

अर्थात् यन्त्रों का जो बीज है वह पृथिवी, जल, तेज और वायु है। इन चारों का अधिष्ठान आकाश है।

इसके बाद उन्होंने महर्षि भरद्वाज के कथन से मन्त्र और यन्त्र की परिभाषा देते हुए कहा – जल और वायु के स्तम्भन से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसे मन्त्र कहते हैं। दण्ड, चक्र, सरणी और भ्रामकादि के द्वारा जिस शक्ति का वर्धन और सञ्चालन किया जाता है उसे यन्त्र कहते हैं।

भोजप्रबन्ध में कहा गया है उनके पास एक लकड़ी का घोड़ा था जो एक घड़ी में बारह कोस चलता था और एक पङ्खा था जो बिना किसी मनुष्य की सहायता के बहुत तेजी से चलता था। इस प्रकार के उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि – प्राचीन काल में भी यन्त्र का निर्माण हुआ था। वे कृत्रिम ही थे। वेद में विमान शब्द का संकेत देते हुए उन्होंने कहा –

वेदां यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः।। – *ऋग्वेद* 1.25.7

संकेत रूप में स्थित इस मन्त्र का अर्थ है – जो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को जानता है, वह विमान का मार्ग भी जानता

[2] इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। – *पद्म पुराण* 1.2.52; *महाभारत*, आदिपर्व 1.267।

है। विमान शब्द में "वी" शब्द का अर्थ है पक्षी और "मान" शब्द का अर्थ है सदृश। विमान शब्द का अर्थ होता है – जो पक्षी के समान गति करे, आकाश में उड़े।

विमान के अनेक उदाहरण हमारे शास्त्रों में प्राप्त होता हैं। जैसे *वाल्मीकि रामायण* 5.9.11 में पुष्पक विमान की चर्चा आती है –

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद् विश्वकर्मणा।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ।। ११।।

एक कामक विमान की चर्चा आती है। यह महर्षि कर्दम का विमान है जो व्यक्ति की इच्छानुसार गमन करता था। इस प्रकार के विमान अब भारतवर्ष में तो क्या सम्पूर्ण पृथ्वी पर नहीं बन रहे। महर्षि भारद्वाज ने अपनी *अंशुबोधिनी* नामक ग्रन्थ में आठ प्रकार के विमान की चर्चा की है –

1. *शक्त्युद्गम* – विद्युत् शक्ति द्वारा चलने वाले विमान।
2. *भूतवाह* – पञ्चमहाभूत की शक्ति एकित्रत करके चलने वाले विमान।
3. *धूमयान* – भाप अथवा धूम से चलने वाले विमान।
4. *शिखोद्गम* – पञ्चशिखी, शिखरिणी, शिखावती, कुँदशिखी आदि वनस्पति के तेल से चलने वाले विमान।
5. *अंशुवाह* – सूर्य की किरणों की शक्ति से चलने वाले विमान।
6. *तारामुख* – नक्षत्र शास्त्र के अनुसार नक्षत्रों में रस बनकर जो पदार्थ पृथ्वी पर आता है, उसके प्रयोग से चलने वाले विमान।
7. *मणिवाह* – मणि की शक्ति से चलने वाले विमान।
8. *मरुत्सखा* – वायु की शक्ति से चलने वाले विमान।

परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक एक ही प्रकार के विमान की सृष्टि कर पाए हैं।

इसके बाद उन्होंने विज्ञान के कृष्णविवर (black hole) के आविष्कार के बारे में बताया। विज्ञान ने जिस कृष्णविवर की खोज वर्तमान में की है, *ऋग्वेद* 1.35.2 में सूक्ष्म रूप से उसका वर्णन किया गया है –

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।

इसी भाव को *वाल्मीकि रामायण* 6.23.9 में और स्पष्ट रूप से कहा गया है –

ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषस्तु लोहितः।
आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते।।

और एक महत्त्वपूर्ण विषय रोबोट के बारे में उन्होंने अपना वक्तव्य रखा। *योगवासिष्ठ* में शम्बरासुर ने देवताओं के ऊपर विजय पाने के लिए तीन प्रकार के रोबोट बनाए थे। इन तीनों का नाम था – दम, व्याल, और कट। इन तीनों का कार्य भिन्न था –

- *दम का कार्य* – प्रतिपक्षियों को अपने वश में करना।

- *व्याल का कार्य* – प्रतिपक्षियों पर नियन्त्रण करना।
- *कट का कार्य* – प्रतिपक्षियों को ढ़क देना।

यह रोबोट देवतोओं से सदा युद्ध करते थे और सदा जीतते थे। राक्षस और देवता तो युद्ध करते-करते थक जाते थे। लेकिन ये यन्त्र नहीं थकते थे। और देवता थक जाने के कारण हार जाते थे। तब देवताओं ने युद्ध जीतने का एक उपाय खोज निकाला। देवताओं ने इन्द्र के द्वारा गुप्त रूप से तीन रोबोट में संवेदनाएँ डाल दी। रोबोट को समझाया गया कि देवताओं से युद्ध जीतने का यह पराक्रम तुम्हारा है, शम्बरासुर का नहीं है। रोबोट को जैसे ही यह कहा गया, रोबोट के अन्दर अहंकार आया। वे रोबोट अहंकार के कारण शम्बरासुर का ही वध कर देते हैं और देवताओं की विजय हो जाती है। यदि कृत्रिम बुद्धि (AI) में संवेदनाएँ आने लगती हैं तो यह हमारे अस्तित्व को ही नष्ट कर सकती हैं। ऐसी ज्ञानगर्भ वाणी के साथ उन्होंने अपनी वाणी को विराम दिया।

प्रोफेसर रामानुज के व्याख्यान के बाद कार्यक्रम के सञ्चालक प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने उनके वक्तव्य की भूयसी प्रशंसा की। उसके बाद उपस्थित श्रोताओं से अपनी जिज्ञासा व्यक्त करने का अनुरोध किया। कुलदीप चन्द्र नामक श्रोता ने एक प्रश्न पूछा – वर्तमान काल में विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले डार्विन तत्त्व के अनुसार मनुष्यों के सृष्टितत्त्व और हमारी वैदिक संस्कृति के अनुसार सृष्टितत्त्व ये दोनों अलग-अलग हैं। डार्विन का तत्त्व हमें पशुत्व की ओर ले जाता है और वैदिक संस्कृति हमें परमब्रह्म की ओर ले जाती है। तो किस प्रकार हम डार्विन तत्त्व को तोड़कर वैदिक संस्कृति को प्रतिष्ठित कर सकते हैं?

इसके उत्तर में प्रोफेसर रामानुज ने कहा – यह प्रश्न बहुचर्चित है। इसका उत्तर अल्पसमय में नहीं दिया जा सकता। इसलिए उन्होंने इसके लिए एक अलग व्याख्यान रखने की इच्छा प्रकट की।

प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने प्रोफेसर रामानुज का धन्यवाद करने के बाद कार्यक्रम के मुख्यातिथि आदरणीय बृजकिशोर कुठियाला को अपना वक्तव्य रखने के लिए आमन्त्रित किया।

आदरणीय बृजकिशोर कुठियाला ने सभी को सम्बोधित करते हुए सभी का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। अपनी बात प्रारम्भ करने से पहले उन्होंने गत वर्ष 15-16 दिसम्बर 2024 के द्विदिवसीय संगोष्ठी का स्मरण करते हुए कहा – उन दो दिनों में एक बड़ा विमर्श हुआ था। जिसमें हम वेदों की शिक्षा और यान्त्रिक बुद्धि को जोड़कर कैसे देख सकते हैं, इस विषय पर चिन्तन किया गया था। उसी के परिणामस्वरूप यह निश्चय हुआ कि इस विषय को आगे बढ़ाने के लिए विद्वज्जनों का परस्पर परामर्श व विमर्श अत्यन्त आवश्यक है। वेदों का ज्ञान, प्राचीन शास्त्रों का ज्ञान और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा है उनको मिलाकर क्या नवीन कार्य हो सकता है। यह विषय आज के समय में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

उन्होंने आगे कहा कि आज के दो व्याख्यानों में AI के लिए हमें कृत्रिम बुद्धि इस शब्द का प्रयोग देखने को मिला। हमें कृत्रिम बुद्धि इस शब्द पर पुनः चिन्तन करने की आवश्यकता है क्योंकि रामानुज उपाध्याय ने जो कृत्रिम शब्द की व्याख्या असत्य के साथ की है उसको समझना आवश्यक है। जो अंग्रेज़ी में आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस शब्द का प्रयोग हो रहा है उस शब्द के साक्षात् अर्थ का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं है। उसके भाव के अनुसार उसे कोई और नाम देने की आवश्यकता है। आज हम उसे यान्त्रिक बुद्धि के नाम से सम्बोधित करके बात करेंगे। मैंने आज के व्याख्यान में यह अनुभव किया कि दोनों ही विद्वानों के व्याख्यान आपस में जुड़े हुए थे। जिस प्रकार से आजकल के यन्त्र केवल मनुष्य द्वारा सञ्चालित नहीं रह गए हैं, उनमें कहीं न कहीं अपनी सोच भी विकसित होने लगी है, इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। आज के युग में प्रौद्योगिकी की जो व्याख्या की जाती है, कि मनुष्य ने जो भी उपकरण (यन्त्र) बनाए हैं वे मनुष्य की प्रकृति द्वारा प्रदत्त शरीर की क्षमताओं का विस्तार करने के लिए बनाए गए हैं। जैसे पैरों का विस्तार करने के लिए मनुष्य ने पहले

रथ बनाया, उसके बाद कार, ट्रेन, वायुयान आदि बनाए। जिससे मनुष्य की गति अधिक बढ़ सके और भार ले जाने की क्षमता का विकास हो सके। जितने भी टूल्स बनाए जैसे चाकू, कुल्हाड़ी, हथियार आदि सब हमारे हाथों के काम को विस्तार देने के लिए बनाए गए। कैमरा हमारी आँखों का विस्तार करने के लिए बना है। इस तरह से इण्टरनेट हमारे संवाद, सञ्चार को विस्तार देने के लिए बना है। यान्त्रिक बुद्धि अर्थात् आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस हमारी बुद्धि को और विस्तृत करने की एक प्रणाली है। जिस काम को मनुष्य की बुद्धि आसानी से नहीं कर सकती। उस काम को यान्त्रिक बुद्धि से आसानी से किया जा सकता है। पहले कैलकुलेटर, फिर कम्प्यूटर, सुपर कम्प्यूटर। आज उसी को आगे बढ़ाकर कृत्रिम बुद्धि (AI) जो बहुत अधिक डेटा अपने पास रखकर सर्वेक्षण कर सकता है। मैंने अभी रामानुज-जी का व्याख्यान सुनते-सुनते मेटा में एक प्रश्न किया। वेदों में बुद्धि के विकास के लिए क्या-क्या शिक्षा दी गई है? मेटा ने 400 शब्दों का मन्त्रों सहित एक निबन्ध लिखकर मुझे भेजा। यह विषय बहुत बड़ा है, इस विषय पर विस्तार से कार्य करने की आवश्यकता है। इसमें बहुत से विषय निकलकर सामने आएंगे।

एक बार एक विद्यार्थी ने मुझसे कहा था कि जो भगवान् विष्णु का चक्र था। वह एक सामान्य यन्त्र नहीं था, वह एक बुद्धिमान् यन्त्र था। वह अपने शत्रु का वध करके ही वापस आता था। आज ए॰आई॰ (AI) का विषय पूरी दुनिया में चर्चा का विषय बना हुआ है। भारत का इस विषय में बहुत बड़ा योगदान है। पूरा विश्व भारत से यह अपेक्षा भी कर रहा है कि भारत इस विषय में काम करे। ए॰आई॰ में काम करने वाले लाखों लोगों में भारतीय मूल के लोगों की संख्या अधिक है। उसका कारण हमारे वक्ता उमाशंकर पाण्डेय ने भी बताया कि भारत की भाषाएं संस्कृत भाषा से निकली हैं जो मशीनी भाषा के बहुत निकट है। इसीलिए उन लोगों की सहज बुद्धि मशीन की कोडिंग को, एल्गोरिदम को शीघ्र ही बना लेती है। अभी लगभग पन्द्रह दिन पहले फरवरी में ए॰आई॰ के सम्बन्ध में पेरिस में एक वैश्विक विमर्श हुआ था। फ्रांस के प्रधानमन्त्री उसमें "को-चेयर" थे। जिसमें भारत के प्रधानमन्त्री ने भी अध्यक्षता की थी। उसमें यह तय हुआ कि ए॰आई॰ के लिए कुछ मापदण्ड, कुछ नियमावली बनाने की आवश्यकता है। हमारे इस 15-16 दिसम्बर 2024 को हुए सेमिनार में भी यह विषय आया था कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता अर्थात् ए॰आई॰ की आचार संहिता बनाई जानी चाहिए और उसे बनाने के लिए हमें अपने ग्रन्थों में बुद्धि के विकास के लिए क्या-क्या बताया गया है इस विषय पर चिन्तन करना चाहिए। हमारे शास्त्रों में किस-किस प्रकार की बुद्धि, मन और आत्मा का वर्णन है। उमाशंकर ने भी उपनिषदों में पाँच कोश की व्याख्या की है। भारत में भी वैश्विक स्तर पर "ए॰आई॰" विषय पर एक बहुत बड़ा सेमिनार होने वाला है जिसमें अन्य विषयों के साथ एक विषय यह भी आएगा कि ए॰आई॰ का उपयोग करते हुए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए अर्थात् क्या करणीय है और क्या अकरणीय है? अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान अपने ऊपर एक दायित्त्व ले सकता है। अगले कुछ महीनों तक भारत के प्रसिद्ध विद्वानों के साथ एक रूपरेखा तैयार करे। जिसमें ए॰आई॰ के लिए आचार संहिता के विषय में विस्तार से कार्य किया जाए। हम आधुनिक विज्ञान व वेदों के विद्वान् दोनों तरह के विद्वानों को साथ लेकर कार्य करें। यदि हम ऐसा संकल्प लेते हैं तो हमारे पहले वाले विमर्श, आज का विमर्श और आगे आने वाले विमर्श भी सफल होंगे। क्योंकि आज हमारे जीवन में हम माने या न माने, हम ए॰आई॰ का सम्मान करें या न करें, लेकिन ए॰आई॰हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आ चुका है। चिकित्सा, सुरक्षा, शिक्षा, कला, आदि सभी क्षेत्रों में हमें ए॰आई॰ का सहयोग लेना पड़ रहा है। हम उसे अपने जीवन से दूर नहीं कर सकते। उसको ठीक दिशा में ले जाने के लिए हम अपना सहयोग किस प्रकार से कर सकते हैं यह विचार करने की आवश्यकता है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। हमें अपने आप को और ए॰आई॰ को भी इसी ओर ले जाने की आवश्यकता है। मैं अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान एवं संस्थान के निदेशक

प्रो॰ रमेशकुमार पाण्डेय का आभार व्यक्त करता हूँ और उन्हें शुभकामनाएं भी देता हूँ कि उन्होंने आज का यह ऑनलाइन व्याख्यान आयोजित किया। जिसमें हमें नई बातें सीखने को मिली और बहुत से नए प्रश्नों के उत्तर भी जानने को मिले।

इसके बाद प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने अध्यक्षीय उद्बोधन एवं आशीर्वचन देने के लिए माननीय दिनेश चन्द्र से निवेदन किया। मा॰ दिनेश चन्द्र ने सबसे पहले आज के दोनों वक्ताओं का धन्यवाद ज्ञापन किया। फिर उन्होंने AI के लिए कृत्रिम बुद्धि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आदि और क्या-क्या शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है इस विषय पर गहन विचार करने का परामर्श दिया। कृत्रिम बुद्धि के सुप्रयोग से सुपरिणाम और दुष्प्रयोग से दुष्परिणाम होगा। इसलिए समाज के प्रत्येक क्षेत्र में कैसे इसका सुप्रयोग किया जाए और इसके दुष्परिणाम से कैसे बचा जाए, इस विषय में हमें आगे भी चर्चा करनी है। कृत्रिम बुद्धि (AI) के विशेषज्ञों की सहायता से भारत कैसे पूरे विश्व को दिशा प्रदान कर सकता है, इस विषय में हमें प्रयास करना है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब-जब जिस चीज की आवश्यकता का अनुभव हुआ, तब-तब उस चीज का आविष्कार हुआ है। हमें भी आवश्यकता के आधार पर AI के सुप्रयोग के लिए शोध करना, उसको प्राप्त करना और उसका उपयोग करना है। जो भी जन इस विषय में जुड़े हुए हैं, उन सबसे निरन्तर ऑनलाइन व ऑफलाइन आलोचना करके हमें आगे बढ़ना है। उन्होंने कहा किसी एक सक्षम व्यक्ति को इन विषयों में प्रयास करने के लिए नियुक्त किया जाए। हमारा जो लक्ष्य है, उसे हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं। वह इन सभी के विशेषज्ञों के सम्पर्क में रहेंगे और काम को गति देंगे। भारतवर्ष में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी विविध प्रकार से इस विषय पर चर्चा चल रही है। इसमें भारत तथा अन्य देशों के प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति भी शामिल हो रहे हैं। कृत्रिम बुद्धि (AI) के दुष्परिणामों से कैसे बचा जाए, इस विषय में और विचार-विमर्श करते हुए समाज के लिए यह कृत्रिम बुद्धि (AI) कैसे उपयोगी हो सकती है, इसके बारे में चिन्तन करना है। फिर उन्होंने सभी का धन्यवाद ज्ञापन करते हुए अपना वक्तव्य समाप्त किया।

इसके बाद प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय ने प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी को सभी का धन्यवाद ज्ञापन करने का अनुरोध किया। प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी ने सर्वप्रथम आज के कार्यक्रम के दोनों वक्ताओं की प्रशंसा की। तत्पश्चात् उन्होंने कार्यक्रम के अध्यक्ष आदरणीय श्रीमान् दिनेशचन्द्र का हृदय की गहराईयों से आभार व्यक्त करते हुए कहा कि यह कार्यक्रम उनकी ही प्रेरणा से सम्भव हो पाया है। इसके बाद उन्होंने कार्यक्रम के मुख्यातिथि प्रोफेसर बृजकिशोर कुठियाला का और इस कार्यक्रम के संयोजक, सञ्चालक एवं अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान के कार्यवाहक प्रोफेसर रमेशकुमार पाण्डेय का धन्यवाद ज्ञापन किया। साथ ही (AI) आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस को आधुनिक एवं प्राचीन दोनों ही दृष्टियों से हमें समझाने के लिए आज के दोनों वक्ताओं का पुनः हृदय से आभार व्यक्त किया और कहा कि हमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विषय में और भी विचार करने की आवश्यकता है। इसके पश्चात् कार्यक्रम को सुचारू रूप से चलाने वाले सभी कार्यकर्ताओं का भी उन्होंने धन्यवाद ज्ञापन किया।

धन्यवाद ज्ञापन के पश्चात् श्री शिवम शर्मा ने शान्तिमन्त्र का उच्चारण किया और इसी के साथ सभा सम्पन्न हुई।

धन्यवाद!

प्रतिवेदक

ऋतिका

शिवम शर्मा

खोकन माइति

मण्टु कुमार जाना

अशोक सिंहल वैदिक शोध संस्थान

(बद्री भगत झण्डेवाला टेम्पल सोसायटी, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित)

हुडा मार्केट रोड, ब्लॉक-बी, सेक्टर-56

गुरुग्राम - 122011, हरियाणा, भारत

मोबाइल - +91-9311847118

ई-मेल – info@ashoksinghalvedicresearchinstitute.org.in

वेबसाइट – www.ashoksinghalvedicuniversity.org.in